देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115

August 2025

Vol.-22, Issue-2

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

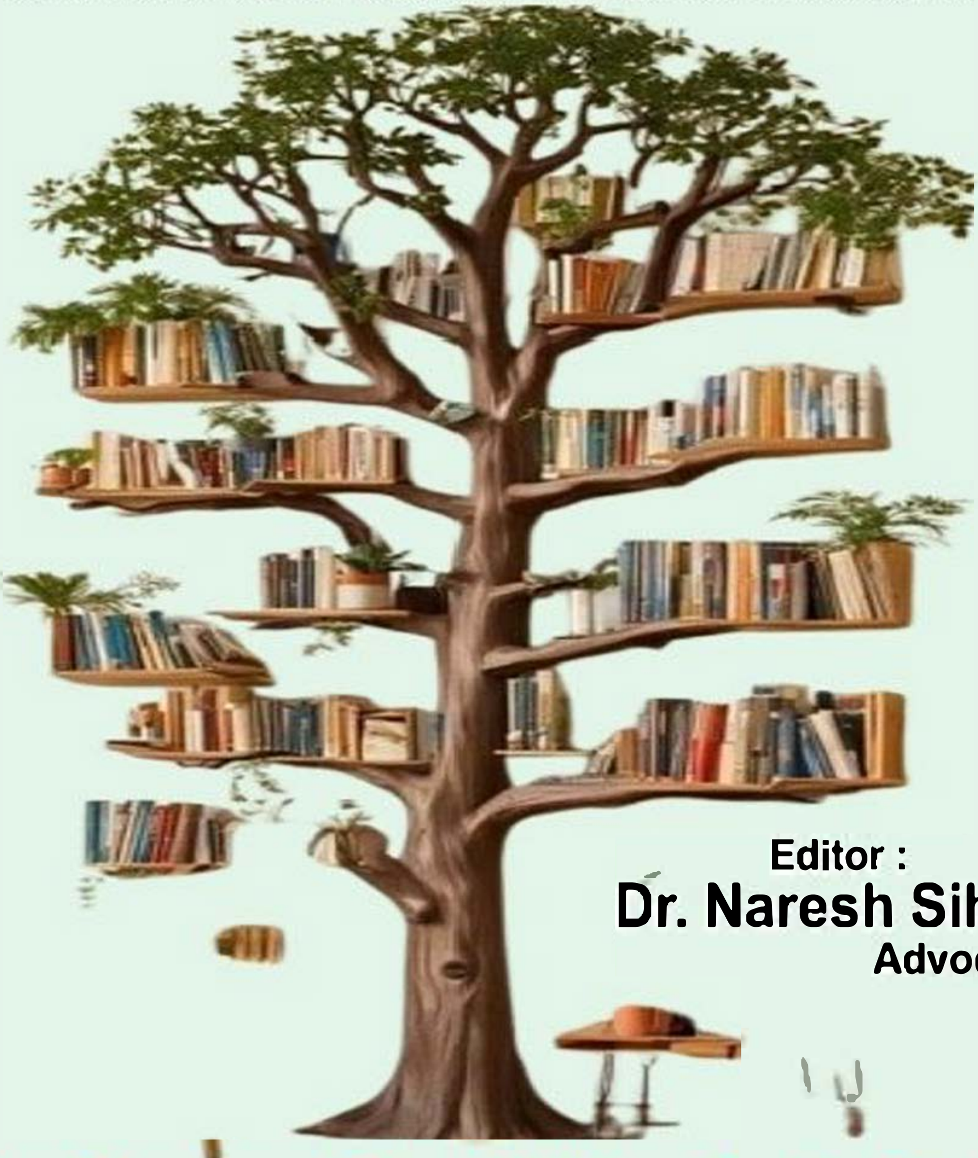

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-2 (अगस्त 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमणिका - अगस्त 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट के साहित्य में समकालीन समस्याएँ	शकुन्तला	11-14
3.	'वसुधैव कुटुंबकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की अवधारणा का वैश्विक मूल्य	डॉ० अरुण कुमार सिंह	15-19
4.	सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम: भारत के सपनों को साकार करने का इंजनँ	अनिल कुमार, डॉ० संगीता सिरोही	20-23
5.	मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में विद्रोह का स्वर	सौरभ कतरौलिया	24-26
6.	“गजल गायकी के प्रमुख उदीयमान घरान"	डॉ. राजेश कुमार मिश्रा	27-34
7.	Impact of social media on society: Sociological analysis	Dr. Punditrao C Dharenavar	35-40
8.	ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಹಾಗೂ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ	-ಪ್ರೊ|| ಪಂಡಿತರಾವ ಚಂದ್ರಶೇಖರ ಧರೆನ್ನವರ	41-46
9.	भाई तारू सिंह जी: सामाजिक पहचान और धार्मिक आजादी	डा. पंडितराव चन्द्रशेखर धरेनवर	47-54
10.	ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ : ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣ ਸਕਦੀ ਹੈ।	ਡਾ. ਪੰਡਿਤਰਾਓ ਚੰਦਰਸ਼ੇਖਰ ਧਰੇਨਵਰ	55-60
11.	गांधीवादी इतिहासकार धर्मपाल के योगदान का ऐतिहासिक अध्ययन	Shailesh bahadur singh, Dr. Arun Kumar Singh	61-62
12.	डॉ० भीमराव अम्बेडकर का महाड़ सत्याग्रह का समीक्षात्मक अध्ययन	DINESH KUMAR Dr. Shrikrishna Singh	63-64
13.	Multilingual and Professional Development	Ravi Singh	65-67
14.	डॉ सी. बी. भारती की कविता संग्रह “लड़कर छीन लेंगे हम” में मानवीय चेतना के स्वर	अंकित कुमार सरोज	68-72
15.	गीतांजलि श्री के कहानी संग्रह अनुगूंज में समाज के विविध दृष्टिकोण	ज्योती सिंह	73-76
16.	समकालीन हिन्दी कविता : सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में	श्रीमती कमला बाई दीवान, प्रो.(डॉ.) अनुसुइया अग्रवाल डी. लिट्.	77-81

17.	संभाजी महाराज की वैचारिक दृढ़ता और शहादत: एक ऐतिहासिक विश्लेषण	डॉ. हरीश कुमार सिंह	82-85
18.	न्यीशी लोकोक्तियों और कहावतों में न्यीशी समाज की पारम्परिक न्याय व्यवस्था	डॉ. मेमा चिरी	86-89
19.	दक्षिण भारत में हिंदी की भूमिका	ESWARI.A	90-97
20.	1857 की क्रांति में आगरा क्षेत्र की भूमिका का अध्ययन	Harsh kumar	98-99
21.	डॉ भीमराव अंबेडकर का बौद्ध धर्म के साथ संबंध का अध्ययन	Dinesh kumar	100-101
22.	Exploring the Influence of SHGs on Women's Development in Sonitpur District of Assam	Dr. Manali Upadhyay, Dr. Ravindra Pathak, Naimisha Saikia	102-106
23.	'पार्टिशन' कहानी में साम्प्रदायिकता के दुष्प्रभावों का सामाजिक विश्लेषण	मनीष कुमार	107-111
24.	ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ସାଂସ୍କୃତିକ ଐତିହ୍ୟ ସଂରକ୍ଷଣରେ ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟର ଭୂମିକା	Dr. Prahallad Khilla	112-126
25.	बहुभाषिकता और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020	डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा	127-130
26.	"अमरकांत का साहित्य सम- सामयिक परिवेश की सच्चाईयों का दर्पण है" एक विश्लेषण	डॉ. रेनू जोशी	131-134
27.	"उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के जीवन कौशलों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन"	किरण धारू, डॉ. अंतिम बाला पाण्डेय	135-139
28.	गालो लोकोक्तियों का सामाजिक दृष्टि से अध्ययन	डॉ. अरुणा गोगोई	140-143
29.	असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका का अध्ययन	Harsh kumar, Dr.Shrikrishna singh	144-146
30.	आषाढ़ का एक दिन : एक पुनः पाठ	चार्ल्स जे. जी	147-150
31.	बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय से जुड़े तत्वों का विश्लेषण	डॉ. सारंग तनय	151-154
32.	लोक संस्कृति: अवधारणा, स्वरूप एवं प्रसांगिकता	डॉ. राकेश रंजन	155-160
33.	भारत-पाकिस्तान की विदेश नीतियों के निर्धारित तत्व व उद्देश्य	विनोद कुमार, डॉ. एस.के. सिद्धार्थ	161-164
34.	भारत में मानवाधिकार	डॉ० विभा शर्मा	165-168
35.	प्रेमचन्द के उपन्यासों में यथार्थवाद	डॉ० सुमेधा शर्मा	169-174
36.	महाभारते आचारधर्ममहिमा	कल्पना, डॉ.बी.कामाक्षम्मा	175-180
37.	हिंदी सिनेमा : नारी का योगदान और बदलती छवि	कमलेश कुमार मीना	181-186

38.	भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में भ्रष्ट प्रशासन	मनीषा देवी	187-189
39.	THE CLIMATE CHANGE AND NATIONAL SECURITY	DR. RAM TIWARI	190-195
40.	“भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद और पंथनिरपेक्ष शब्दों को जोड़े जाने के कारणों का विधिक अध्ययन" (42 वें संविधान संशोधन 1976 के विशेष संदर्भ में)	डॉ. भूपेंद्र करवन्दे, रत्ना श्रीवास्तव	196-199
41.	किन्नर वेदना और स्त्री वेदना के सम्मिलित स्वर	डॉ० अनीता कुमारी	200-204
42.	प्रतिभा राय कृत 'आदिभूमि' उपन्यास में बोंडा समाज का यथार्थ चित्रण	डॉ० पुनीत कुमार	205-208
43.	‘यमदीप’ उपन्यास में किन्नर जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति	आशु प्रज्ञा	209-212

संपादकीय

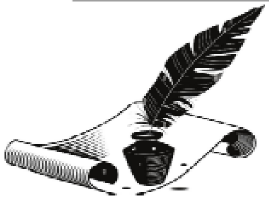

"शोध की दिशा में संवाद का सौंदर्य"

'बोहल शोध मंजूषा' के अगस्त 2025 अंक में आपका हार्दिक स्वागत है। **अगस्त का यह महीना** भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है — स्वतंत्रता, स्वाधीनता संग्राम की स्मृतियाँ, और साथ ही स्वतंत्र विचार की नींव रखने वाले विचारकों को याद करने का अवसर। यह अंक भी 'स्वतंत्र चिंतन', 'सृजनात्मकता' और 'संवाद की संस्कृति' को समर्पित है। जब हम राष्ट्र की स्वाधीनता की बात करते हैं, तब यह भी अनिवार्य हो जाता है कि बौद्धिक और वैचारिक स्वराज की भावना को हम अपने शोध और लेखन में प्रतिबिंबित करें।

इस अंक में जहाँ एक ओर साहित्य, समाजशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भाषा और संस्कृति पर सारगर्भित शोध आलेख प्रस्तुत किए गए हैं, वहीं दूसरी ओर समकालीन रचनाशीलता की कुछ ऐसी प्रस्तुतियाँ भी सम्मिलित हैं जो समय और समाज से सीधा संवाद करती हैं।

'बोहल शोध मंजूषा' का उद्देश्य केवल शोध पत्रों का संकलन करना नहीं, बल्कि एक ऐसी बौद्धिक चेतना को विकसित करना है जहाँ शोध, सोच और समाज के बीच एक सजीव पुल स्थापित किया जा सके। हम यह मानते हैं कि कोई भी शोध तब तक पूर्ण नहीं माना जा सकता जब तक वह समाज के किसी कोने में रोशनी न बन जाए।

आज के इस तकनीकी युग में जहाँ सूचनाओं की बाढ़ है, वहाँ शोध की वास्तविकता और प्रामाणिकता की कसौटी और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इसलिए इस पत्रिका में प्रकाशित प्रत्येक लेख, प्रत्येक पंक्ति, एक विशेष चयन और संपादन प्रक्रिया से गुज़रकर ही आप तक पहुँचती है।

हमें यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि इस बार हमें देश के विभिन्न राज्यों से ही नहीं, विदेशों से भी शोधार्थियों एवं प्राध्यापकों की सहभागिता प्राप्त हुई है। यह न केवल 'बोहल शोध मंजूषा' की स्वीकार्यता का प्रमाण है, बल्कि शोध संवाद के अंतरराष्ट्रीय विस्तार की ओर भी संकेत करता है।

इस अंक के विशेष आकर्षण हैं –

- समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ की पड़ताल
- भारतीय संविधान की मूल भावना और आधुनिक संदर्भ
- आर्य समाज का साहित्यिक प्रभाव
- आधुनिक मीडिया और जनचेतना का स्वरूप
- हिंदी आलोचना की समकालीन प्रवृत्तियाँ

हम अपने पाठकों, लेखकों और समीक्षकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने शोध से न केवल इस अंक को समृद्ध किया, बल्कि पत्रिका के उद्देश्य को भी पुष्ट किया।

अंत में, मैं यही कहना चाहूँगा कि शोध केवल डिग्री या पद की नहीं, दृष्टि और दिशा की यात्रा है। आइए, इस यात्रा को और भी सार्थक, उपयोगी और मानवीय बनाएँ।

आप सभी पाठकों को स्वतंत्रता दिवस और रक्षा बंधन की अग्रिम शुभकामनाएँ।

सादर,

डॉ.नरेश सिहाग 'एडवोकेट'

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 11-14
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट के साहित्य में समकालीन समस्याएँ

शकुन्तला
शोधार्थी हिंदी विभाग,
विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन

शोध सार
डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट एक यथार्थवादी साहित्यकार हैं। वर्तमान समाज में तेजी से सामाजिक आर्थिक बदलाव हो रहे हैं। इन्होंने अपने लेखन में सामाजिक विद्रूपताओं को केंद्र बनाया। इन्होंने आदर्शों, पात्रों और विषयों को वास्तविक समाज से प्राप्त किया। इनका मत है कि मूल रूप से मानव नेक और अच्छा होता है, परंतु उसका वातावरण उसे प्रभावित करता तथा भ्रष्ट करता है। इनके साहित्य मे समकालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। इन्होंने जातिवाद, नारी की स्थिति, किसानों की दुर्दशा, बेरोजगारी, मूल्यहीनता, सांप्रदायिकता, न्यायव्यवस्था व वैश्वीकरण की समस्याओं को अपने साहित्य मे उजागर किया है। यदि हम इन समस्याओं को देखकर भी अनदेखा करते हैं तो एक दिन समस्त मानवता विनाश के मुख में समा जाएगी। इसलिए समय रहते इन समस्याओं पर ध्यान देकर इनका समाधान कर लेना चाहिए ताकि एक विकसित और सभ्य समाज का निर्माण हो सके।
बीज शब्द- सामाजिक चेतना, बेरोजगारी, लैंगिकता, मूल्यहीनता, किसान, आम आदमी, सांप्रदायिकता, पर्यावरण, आरक्षण, सांस्कृतिक ह्रास

प्रस्तावना

वर्तमान भारतीय समाज जटिलताओं, अंतर्विरोधों और संघर्षों का समुच्चय बन चुका है। आर्थिक असमानता, सामाजिक भेदभाव, राजनीतिक स्वार्थ, बेरोज़गारी, स्त्री असुरक्षा, नैतिक पतन और पर्यावरण संकट जैसे मुद्दे आज न केवल हमारी दिनचर्या में घुले हुए हैं, अपितु साहित्य का विषय भी बन चुके हैं। डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट, जो एक सजग साहित्यकार, समाजचिंतक और वकील हैं, अपने काव्य-संसार और लघु कथाओं में समकालीन भारतीय समाज की इन्हीं समस्याओं को सूक्ष्म संवेदना, यथार्थबोध और विद्रोही चेतना के साथ प्रस्तुत करते हैं।
उनकी रचनाएं केवल कलात्मक सौंदर्य का नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का वाहक बनकर पाठक के अंतर्मन को झकझोरती हैं।

1. सामाजिक विषमता और वर्गीय संघर्ष

डॉ. नरेश सिहाग की रचनाओं में वर्गीय अंतर्विरोध प्रमुखता से उभरता है। उनका कवि जनपक्षधरता के साथ व्यवस्था की विसंगतियों पर चोट करता है:

यह पंक्ति एक पूरी व्यवस्था की विफलता को उजागर करती है। समाज के वंचित वर्ग, किसानों और श्रमिकों की दशा पर सिहाग की कलम आक्रोश के साथ करुणा को भी समाहित करती है।
उनकी कहानियों में निम्नवर्ग की त्रासदी केवल वर्णन नहीं है, बल्कि प्रतिरोध का स्वर भी है।

2. बेरोज़गारी और युवा पीढ़ी का मोहभंग

नरेश सिहाग का साहित्य बेरोज़गार युवाओं की मानसिक वेदना को प्रमुखता से उठाता है। वे लिखते ᐤ

"हर सुबह उठते हैं हम उम्मीदों के साथ,
और लौटते हैं शाम को अस्वीकारों के साथ।
डिग्रियाँ दीवार पर टंगी हैं,
पर घर में रोटियाँ गिनती हैं।"

यह महज़ एक कविता नहीं, आज के शिक्षित, बेरोज़गार युवाओं का वास्तविक चित्रण है। लेखक के लिए युवा पीढ़ी केवल आशा का प्रतीक नहीं, बल्कि व्यवस्था से ठगा गया वर्ग है।

3. स्त्री विमर्श और लैंगिक असमानता

सिहाग का साहित्य स्त्री चेतना को विशेष स्थान देता है। उनकी कविताओं में स्त्री केवल प्रेम या सौंदर्य की मूर्ति नहीं, संघर्षशील आत्मा है। वे लिखते हैं—

"अब न गहनों में ढूँढो मुझे,
न साड़ी के पल्लू में।
मैं हूँ उस किताब में,
जो अदालत में सबूत बनी खड़ी थी।"

यह स्त्री की उस पहचान की ओर संकेत करता है जो आधुनिक समाज में बराबरी का अधिकार माँगती है। उनकी कहानियों में घरेलू हिंसा, बाल विवाह, शिक्षा से वंचना जैसी समस्याएं संवेदनशीलता के साथ उठाई गई हैं।

4. नैतिक पतन और मूल्यहीनता

समकालीन भारतीय समाज में नैतिक मूल्य हाशिए पर जा चुके हैं। इस गिरावट को सिहाग तीखी व्यंग्यात्मक शैली में उकेरते हैं—

"अब रिश्तों की नापजोख होती है एटीएम कार्ड से,
और संस्कार गूगल में सर्च करने से मिलते हैं।"

उनकी एक लघु कथा में एक पिता अपने बेटे को सिखाता है कि रिश्वत देना 'सिस्टम' का हिस्सा है। यह प्रस्तुति पाठक को चौंकाती है, विचारने को बाध्य करती है कि क्या हम एक ऐसा समाज बना चुके हैं जहां आदर्श केवल पुस्तकों तक सीमित हैं?

5. किसान और ग्रामीण जीवन की पीड़ा

एक किसान के संघर्ष को जिस गहराई और तीव्रता से नरेश सिहाग चित्रित करते हैं, वह हिंदी कविता को जनपदीय चेतना के निकट लाती है—

"हल जोतता है पिता
और बेटा फ़ार्म भरता है फौज में,
यह वही देश है जहाँ
खेतों से ज़्यादा युद्ध की तैयारी होती है!"

कृषक आत्महत्याओं, कर्ज के बोझ, और सरकारी उपेक्षा की त्रासदी उनके लेखन का अभिन्न हिस्सा है। वे किसानों की समस्याओं को केवल आँकड़ों के रूप में नहीं, मानवीय पीड़ा के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

6. न्याय व्यवस्था और आम आदमी

चूंकि डॉ. सिहाग स्वयं एक अधिवक्ता हैं, उनका साहित्य न्याय व्यवस्था की जटिलताओं से भी टकराता है। एक जगह वे लिखते हैं—

"न्याय की देवी आँखों पर पट्टी बाँधे खड़ी थी,
और वकील उसकी जेब में तराजू रख आए थे।"

उनकी कहानियों में अदालतें केवल न्याय का स्थल नहीं, बल्कि प्रतीक्षा और छल का पर्याय बनकर आती हैं। 'फैसला' नामक उनकी एक कहानी में एक गरीब मजदूर वर्षों मुकदमे में फँसा रहता है और अंततः बिना न्याय पाए मर जाता है।

7. सांप्रदायिकता और सामाजिक समरसता का ह्रास

सामाजिक समरसता के टूटते ताने-बाने पर भी उनकी कलम बोल उठती है। वे सांप्रदायिक तनावों को गहराई से समझते ैं और लिखते हैं—

"मंदिर की मूरत मुस्कुराई नहीं वर्षों से,
मस्जिद का इमाम अकेले में रोता है।
और इंसान?
वो अब धर्म का नकाब पहनकर चलता है।"

ये पंक्तियाँ सांप्रदायिकता के विरुद्ध एक गहरा सांस्कृतिक प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं।

8. पर्यावरण और प्रकृति का दोहन

डॉ. नरेश सिहाग के काव्य में प्रकृति केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि चेतावनी का स्वर भी है:

"वृक्ष कट रहे हैं
और लगाई जा रही है उम्मीदों की नर्सरी,
जबकि साँसों में धुआँ भर चुका है—
हम फिर भी जश्न मना रहे हैं विकास का!"

यह 'विकास बनाम पर्यावरण' की बहस में उनके पक्ष को स्पष्ट करता है। वे विकास की उस अंधी दौड़ के आलोचक ैं जो प्रकृति के विनाश से होकर गुजरती है।

9. आरक्षण, जातिवाद और पहचान का संकट

सिहाग की दृष्टि जातिवादी शोषण पर भी पैनी है। वे पूछते हैं—

"क्या मेरी योग्यता मेरा सरनेम तय करेगा?
या मेरी मेहनत?
या फिर मैं बस एक आँकड़ा हूँ सरकार की सूची में?"

उनकी रचनाएं उस वर्ग के दर्द को अभिव्यक्त करती हैं जिसे आज भी 'आरक्षण समर्थक या विरोधी' की संकीर्ण बहसों में बाँट दिया गया है।

10. वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संकट

वे वैश्विक बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद से उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं—

"अब माँ का अचार नहीं,

चाइना का केचप चाहिए बच्चों को।
और कहानियाँ?
वो मोबाइल की स्क्रीन पर स्क्रॉल होती हैं।"

यह सांस्कृतिक विघटन का करुण हास्य है, जो पाठक को अपने समय के आईने में झाँकने पर विवश करता है।

उपसंहार

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट का साहित्य महज शब्दों का संकलन नहीं, बल्कि युगीन चेतना का प्रवाह है। वे साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज को झकझोरने का औज़ार मानते हैं। उनकी कविताएं और कहानियाँ दोनों ही 'सच को सच कहने' का साहस रखती हैं। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों माध्यमों से समकालीन भारत की समस्याओं को न केवल उकेरा है, बल्कि समाधान की तलाश का संकेत भी दिया है।

आज जब अधिकांश साहित्यकार सुविधा के साथ समझौता कर लेते हैं, डॉ. सिहाग का स्वर असहमति का, प्रतिरोध का और परिवर्तन का स्वर बनकर सामने आता है। उनका साहित्य वर्तमान समाज का दर्पण है, जिसमें हम सबका चेहरा प्रतिबिंबित होता है—कभी सच्चा, कभी कड़वा, लेकिन आवश्यक।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नरेश सिहाग बोहल – **बोध कथाएँ हैं,** 2024
2. नरेश सिहाग – **न्याय की प्रतीक्षा में** (लघुकथा संकलन), 2023
3. फेसबुक पृष्ठ: **Naresh Sihag Bohal** और **Bohal Shodh Manjusha** पर प्रकाशित कविताएँ
4. "समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ" – डॉ. मधु सक्सेना
5. "हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास" – डॉ. रामबचन राय

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 15-19
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ और ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ की अवधारणा का वैश्विक मूल्य

डॉ० अरुण कुमार सिंह
प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
डी.ए.वी.पी.जी. कालेज आजमगढ़, उ०प्र०

सारांश–
‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ और ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ जैसे प्राचीन भारतीय सूत्र सम्पूर्ण विश्व के लिए शांति, एकता और सार्वभौमिक कल्याण का संदेश देते हैं। ये अवधारणाएं मानव मात्र को एक परिवार मानने और सभी के सुख की कामना करने का भाव प्रस्तुत करती हैं। आज के वैश्विक परिवेश में, जहाँ युद्ध, भेदभाव, सामाजिक असमानता और पर्यावरण संकट जैसी समस्याएं बढ़ रही हैं, इन मूल्यों की प्रासंगिकता और भी अधिक हो गई है। यदि समस्त मानवता इन्हें अपने जीवन और नीतियों में अपनाए, तो विश्व में स्थायी शांति, सहयोग और समरसता स्थापित हो सकती है। इन आदर्शों के माध्यम से हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं जहाँ भौगोलिक, सांस्कृतिक और वैचारिक सीमाओं के परे सभी एक साथ सुखपूर्वक रह सकें। यह भारतीय दर्शन न केवल हमारे पारंपरिक सांस्कृतिक बोध का हिस्सा है, बल्कि समकालीन वैश्विक चुनौतियों का भी सबसे सकारात्मक समाधान प्रस्तुत करता है, जिसे अपनाकर हम सच्चे अर्थों में ‘एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य’ की ओर बढ़ सकते हैं।

मुख्य शब्द– वसुधैव कुटुम्बकम्, ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः, लोक कल्याण, संसार, विश्व शांति, वैश्विक एकता, सामाजिक समरसता, मानवतावाद, विश्वबन्धुत्व आदि।

प्रस्तावना–

भारतीय संस्कृति और दर्शन ने प्राचीन काल से ही सम्पूर्ण मानवता को एकता, शांति और कल्याण का मार्ग दिखाया है। ‘वसुधैव कुटुम्बकम’ और ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ जैसी अवधारणाएँ इस सांस्कृतिक चेतना का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ये दोनों विचार न केवल भारत के सांस्कृतिक वैचारिक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं, बल्कि विश्व के समक्ष एक ऐसी मानवतावादी विचारधारा प्रस्तुत करते हैं, जिसकी प्रासंगिकता आज के वैश्विक परिदृश्य में और भी अधिक बढ़ गई है। संकीर्ण राष्ट्रीयता, युद्ध, आतंकवाद, पर्यावरण संकट और सामाजिक विषमता से जूझ रहे वर्तमान विश्व को यदि कोई सच्चा मार्गदर्शन मिल सकता है तो वह इन्हीं भारतीय मूल्यों में निहित सार्वभौमिक प्रेम और करुणा के सिद्धांतों से मिल सकता है। प्रस्तुत लेख में ‘वसुधैव कुटुम्बकम’ और ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ की अवधारणाओं के वैश्विक मूल्य का गहन विश्लेषण किया गया है। ‘वसुधैव कुटुम्बकमस’ भारतीय संस्कृति का एक प्राचीन, किन्तु अत्यंत आधुनिक सन्देश है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–‘समस्त पृथ्वी एक परिवार है।’ इसी प्रकार ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ भारतीय संस्कृति का एक अत्यंत प्राचीन और सर्वप्रिय मंगलकामना मंत्र है, जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि के सुख और शांति की अभिलाषा निहित है।

‘वसुधैव कुटुम्बकम’ की अवधारणा का अर्थ और मूल स्रोत

‘वसुधैव कुटुम्बकम‘ भारतीय सांस्कृतिक चेतना की वह अत्यंत विशिष्ट अवधारणा है, जो सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देती है। इस संस्कृत वाक्य का शाब्दिक अर्थ है–‘वसुधा एव कुटुम्बकम’ अर्थात् ‘यह सम्पूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है।’ यह विचार किसी सीमित

भौगोलिक सीमा, जाति, धर्म, भाषा या सांस्कृतिक पहचान में नहीं बंधता, बल्कि समस्त मानव जाति के बीच सहयोग, करुणा, सह–अस्तित्व और बंधुत्व की भावना को स्थापित करता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मूल श्लोक महाउपनिषद् में प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है–'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसामस। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम॥'[1] अर्थात् यह मेरा है और वह पराया हैकृइस प्रकार का भेदभाव संकीर्ण दृष्टि वाले लोग करते हैं, किंतु जिनका हृदय विशाल होता है, उनके लिए सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार के समान होती है।

'वसुधैव कुटुम्बकम' का तात्पर्य यह है कि मानव मात्र को राष्ट्र, जाति, सम्प्रदाय और भाषा की सीमाओं से ऊपर उठकर एक–दूसरे के प्रति पारिवारिक भाव का व्यवहार करना चाहिए। यह केवल एक दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि भारतीय जीवन–दृष्टि की व्यावहारिक परंपरा का मूल मंत्र है। भारतीय संस्कृति ने प्रारंभ से ही इस सार्वभौमिक दृष्टि को आत्मसात किया है। इस अवधारणा का मूल तत्व यही है कि सम्पूर्ण मानव समाज के लिए समान अधिकार, समान आदर और समान कल्याण की कामना की जाए। महात्मा गांधी ने भी अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में इसी दृष्टि को अपनाते हुए कहा था कि ष्मेरा धर्म मुझे न केवल अपने देशवासियों से प्रेम करना सिखाता है, बल्कि समस्त मानव जाति से प्रेम करना भी सिखाता है।[2] गांधीजी का अहिंसा का सिद्धांत और उनकी वैश्विक दृष्टि इसी वसुधैव कुटुम्बकम् की व्यवहारिक अभिव्यक्ति थी। स्वामी विवेकानंद ने भी अपने ऐतिहासिक शिकागो भाषण में इस अवधारणा को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हुए भारतीय संस्कृति की इस महान परंपरा का परिचय दिया। उन्होंने कहा था कि ''भारत वह भूमि है जिसने सम्पूर्ण विश्व को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति का पाठ पढ़ाया है। उनके अनुसार, वसुधैव कुटुम्बकम् केवल एक वैचारिक आदर्श नहीं, बल्कि मानवता की मूल आवश्यकता है।''[3] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भी इस अवधारणा को भारतीय जीवन–दर्शन की आत्मा बताते हुए कहा था कि 'भारतीय चिंतन सदा से संपूर्ण सृष्टि के कल्याण की कामना करता रहा है, जिसमें व्यक्ति और राष्ट्र की सीमाएं गौण हो जाती हैं।' आज के वैश्विक परिदृश्य में जब विश्व अनेक प्रकार की समस्याओंकृजैसे युद्ध, आतंकवाद, धार्मिक संघर्ष, पर्यावरण संकट, आर्थिक असमानता और मानवाधिकार हननकृसे जूझ रहा है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की यह प्राचीन भारतीय अवधारणा अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। यदि समकालीन वैश्विक नीतियों में इस विचार को स्थान मिले, तो निश्चय ही एक शांतिपूर्ण, सहयोगमूलक और समरस समाज की स्थापना संभव हो सकती है। हेनरी किसिंजर जैसे अंतरराष्ट्रीय विद्वान भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि विश्व में स्थायी शांति तब ही संभव है जब राष्ट्र अपने संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर वैश्विक कल्याण की दिशा में सोचें।[4] यही भारतीय संस्कृति की व्यापक दृष्टि है जो 'अहिंसा परमो धर्मः जैसी शाश्वत अवधारणाओं से गहराई से जुड़ी हुई है, जिसके निमित्त हम सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानते हुए उसके कल्याण की कामना करते हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः का कल्याणकारी संदेश

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' भारतीय सांस्कृतिक चेतना का वह अमर संदेश है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के सुख, शांति और समृद्धि की कामना करता है। इस श्लोक का उल्लेख यजुर्वेद और बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है,

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत॥"[5]

---

1. महाउपनिषद, अध्याय–6, श्लोक–72.
2. महात्मा गांधी : माई रिलीजन, पृष्ठ–14, नवजीवन प्रकाशन मण्डल, सं. 1927.
3. स्वामी विवेकानन्द : Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड–1, शिकागो भाषण, 1893.
4. Kissinger, Henry. *World Order*, Penguin Books, Page-38, 2014,
5. यजुर्वेद, अध्याय–36, श्लोक–17, वृहदारण्य उपनिषद, अध्याय–1, श्लोक–4.

अर्थात 'सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सभी मंगलमय दृष्टि से संसार को देखें और कोई भी दुःख का भागी न बने।' यह श्लोक न केवल एक धार्मिक प्रार्थना है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता के लिए एक सार्वकालिक कल्याणकारी संदेश है। इसमें किसी भी प्रकार की सीमाएं, भेदभाव अथवा संकीर्ण स्वार्थ नहीं हैं। इसका भाव यह है कि व्यक्ति केवल स्वयं के लिए न सोचे, बल्कि सम्पूर्ण जगत के सुख और मंगल की कामना करे। यह दृष्टि एक ऐसी विश्व–परिकल्पना प्रस्तुत करती है जिसमें सभी प्राणी एक समान हैं और उनके कल्याण की कामना मानव का सबसे बड़ा धर्म है। भारतीय चिंतन में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश केवल आध्यात्मिक प्रार्थना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक दृष्टि और वैश्विक कूटनीति में भी लागू हो सकता है। स्वामी विवेकानंद ने भी इसी भावना को अपने भाषणों में बार–बार दोहराया। उन्होंने कहा कि 'यदि कोई धर्म सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का संदेश नहीं देता, तो वह धर्म नहीं है, मात्र संकीर्ण विचार है।' उनके अनुसार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना मनुष्य को वैश्विक नागरिक बनाती है, जो संकीर्ण राष्ट्रवाद या जातिवाद से ऊपर उठकर सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति करुणा रखता है।[6] इसी प्रकार महान समाज सुधारक डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी अपने जीवन में सामाजिक समानता और आर्थिक न्याय की जो लड़ाई लड़ी, उसका मूल यही था कि कोई भी दुःखी न रहे, कोई भी उपेक्षित न हो। अम्बेडकर ने कहा था कि ''सच्चा धर्म वही है जो समाज के अंतिम व्यक्ति के सुख और अधिकार की गारंटी दे।''[7] अम्बेडकर का यह दृष्टिकोण भी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना का ही विस्तार है।

इस भारतीय सोच के साथ जब हम पश्चिमी विचारकों की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि अरस्तु (Aristotle) ने अपने 'Common Good' (सामूहिक भलाई) के सिद्धांत में यही कहा कि 'सच्चा मनुष्य वह है जो सबके सुख के लिए कार्य करता है।' इसी प्रकार इमैनुअल कांट (Immanuel Kant) ने नैतिकता की सबसे ऊँची कसौटी यह मानी कि 'ऐसा आचरण करो जैसे तुम्हारा हर कार्य एक सार्वभौमिक नियम बन जाए।[8] कांट के इस सिद्धांत में भी मानव मात्र के हित की भावना अंतर्निहित है। नेल्सन मंडेला ने अपने जीवन दर्शन में Ubuntu की भावना को अत्यधिक महत्व दिया। 'उबुन्टू' एक अफ्रीकी जीवन–दृष्टि है, जिसका सार्थक अर्थ है–'मैं हूं क्योंकि हम हैं। अर्थात किसी व्यक्ति का अस्तित्व, उसकी पहचान, और उसकी सम्पूर्णता समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। मंडेला के अनुसार, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जो अकेले पूर्ण नहीं हो सकता। उसका सुख, उसकी उन्नति और उसका जीवन समाज से ही अर्थ पाते हैं। इस प्रकार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' न केवल प्रार्थना है, बल्कि एक जीवन दर्शन है, जो बताता है कि सच्ची मानवता वही है जो दूसरों के सुख में अपना सुख देखे। आज जब पूरी दुनिया युद्ध, आतंक, गरीबी और पर्यावरणीय संकट से जूझ रही है, यह प्राचीन भारतीय विचार विश्व समुदाय को शांति, सहयोग और करुणा का स्थायी मार्ग दिखा सकता है।

वैश्विक समस्याओं के समाधान में भारतीय अवधारणाओं की भूमिका

आज का विश्व भौतिक प्रगति के शिखर पर पहुँचकर भी युद्ध, आतंकवाद, पर्यावरण संकट, असमानता, धार्मिक कट्टरता, और सामाजिक विखंडन जैसी जटिल समस्याओं से जूझ रहा है। इन चुनौतियों का समाधान केवल राजनीतिक या आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि ऐसी मानवीय और सांस्कृतिक दृष्टियों से संभव है जो शांति, सहयोग, सहिष्णुता और समग्र कल्याण का मार्ग दिखा सकें। भारतीय सांस्कृतिक धारा, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'अहिंसा परमो धर्मः' और 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जैसी जीवनदर्शी अवधारणाओं से सिंचित है, इन वैश्विक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' यह सिखाता है कि पूरी पृथ्वी एक परिवार है, इसलिए किसी एक राष्ट्र, जाति या धर्म की सीमाओं में बंधकर समाधान की अपेक्षा करना तात्कालिक और अधूरी सोच है। जब तक वैश्विक स्तर पर सह–अस्तित्व और पारस्परिक सम्मान को स्वीकार नहीं किया जाएगा, तब तक संघर्ष समाप्त नहीं हो सकते। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना यह संकेत देती है कि समाज, राष्ट्र या विश्व के

6. स्वामी विवेकानन्द : Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड–1, शिकागो भाषण, 1893.
7. डॉ. भीमराव अम्बेडकर : एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृष्ठ–44, नवयुग प्रकाशन, सं. 1936.
8. Immanuel, Kant : *Groundwork of the Metaphysics of Morals*, Cambridge University Press, 1997.

किसी कोने में यदि कोई दुःखी है, तो हमारी जिम्मेदारी है कि हम उसके दुःख को भी समाप्त करने का प्रयास करें। इस विचार में मानवाधिकार, समानता और न्याय की वह गहरी चेतना अंतर्निहित है जो आज के समय में अत्यधिक प्रासंगिक है।

'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धांत न केवल हिंसा की निंदा करता है, बल्कि विचार, व्यवहार और नीति में भी अहिंसा की स्थापना पर बल देता है। महात्मा गांधी ने इस सिद्धांत को अपने जीवन में पूर्णतः उतार कर यह दिखा दिया कि राजनीतिक, सामाजिक और वैश्विक परिवर्तन शस्त्रों से नहीं, बल्कि सत्य और अहिंसा की शक्ति से लाए जा सकते हैं। गांधी के बाद इस अवधारणा को आधुनिक भारतीय चिंतक डॉ. राममनोहर लोहिया ने भी वैश्विक समस्या समाधान के उपकरण के रूप में स्वीकार किया था। लोहिया के अनुसार, 'अहिंसा केवल विचार नहीं, बल्कि यह क्रियाशील संघर्ष की पद्धति है, जो सामाजिक असमानता और राजनीतिक अन्याय को भी शांतिपूर्ण तरीके से चुनौती देती है।'[9] इसी प्रकार भारतीय उपनिषदों में प्रतिपादित 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' का भाव यह सिखाता है कि सत्य एक है, केवल उसके मार्ग और अभिव्यक्तियाँ भिन्न हो सकती हैं। यह विचार धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक विविधता के सम्मान का आधार है, जो वर्तमान समय के धार्मिक संघर्षों और असहिष्णुता की समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकता है।

भारतीय अवधारणाएं हमें यह भी सिखाती हैं कि पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाकर रहना चाहिए। 'पृथ्वी माता' और 'नदियों को देवी' मानने की भारतीय परंपरा प्रकृति के प्रति एक कृतज्ञ और संवेदनशील दृष्टि का उदाहरण है। वैश्विक समस्याओं के इस युग में भारतीय अवधारणाएं एक ऐसी सांस्कृतिक शक्ति के रूप में उभरती हैं, जो विश्व शांति, मानव कल्याण, सामाजिक समरसता, और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता की नई राह दिखा सकती हैं।

'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का समकालीन महत्व

आधुनिक विश्व में जहां सीमाएं भौगोलिक रूप से सिकुड़ गई हैं, वैश्वीकरण ने देशों को भले ही आर्थिक और तकनीकी रूप से जोड़ दिया हो, लेकिन सांस्कृतिक संघर्ष, धार्मिक असहिष्णुता, युद्ध, आतंकवाद, पर्यावरण संकट और सामाजिक विषमता जैसी समस्याएं दिन–प्रतिदिन गंभीर होती जा रही हैं। ऐसे समय में 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे भारतीय दर्शन अपने अप्रतिम समकालीन महत्व के साथ हमें एक वैश्विक जीवन दृष्टि महसूस होती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना आज के सामाजिक और राजनीतिक विघटन को जोड़ने वाली कड़ी बन सकती है। यह विचार न केवल राष्ट्रों को जोड़ने का माध्यम है, बल्कि यह हमें सिखाता है कि नस्ल, धर्म, जाति, भाषा और भूगोल की सीमाओं से ऊपर उठकर हमें एक वैश्विक नागरिक के रूप में कार्य करना चाहिए। जब हम सभी को एक परिवार मानने लगते हैं, तो वैश्विक समस्याओं जैसे युद्ध, शरणार्थी संकट, जलवायु परिवर्तन और सामाजिक भेदभाव का समाधान अधिक मानवीय और टिकाऊ हो सकता है।

इसी प्रकार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश आज के उपभोक्तावादी और स्वार्थ केंद्रित समाज के लिए एक आवश्यक सुधार है। यह विचार केवल प्रार्थना नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक नीतियों के केंद्र में 'सभी के सुख' की अवधारणा रखने की प्रेरणा देता है। आज जब विश्व अनेक स्तरों पर असमानता से जूझ रहा है, यह भावना हमें समता, सह–अस्तित्व और समान अवसर के सिद्धांत पर आधारित समाज के निर्माण के लिए प्रेरित करती है।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती जलवायु संकट है, जो इस विचारधारा से गहराई से जुड़ती है। जब हम पूरी पृथ्वी को परिवार मानेंगे, तभी हम पर्यावरण संरक्षण के लिए गम्भीर कदम उठा पाएंगे। यह दृष्टि केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समस्त जीव–जगत, वनस्पतियों और प्रकृति के हर घटक के साथ गहन जुड़ाव को स्वीकार करती है। भारत की विदेश नीति में भी 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा विशेष रूप से उभर कर सामने आई है। जैसे G–20 शिखर सम्मेलन 2023 में भारत ने

---

9. डॉ. राममनोहर : लोहिया, मार्क्स, गाँधी और सोशलिज्म, पृष्ठ–140, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, सं. 1963.

'One Earth, One Family, One Future' का नारा देकर यह स्पष्ट कर दिया कि भारत की वैश्विक सोच इस प्राचीन भारतीय दर्शन से ही प्रेरित है। आचार्य विनोबा भावे ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मर्म को रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से प्रतिपादित करते हुए कहा था कि जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति के जीवन में सुख और शांति नहीं पहुँचती, तब तक सभ्यता अधूरी है।[10] इस प्रकार, 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' न केवल भारत के सांस्कृतिक मूल्य हैं, बल्कि आज की विश्व–व्यवस्था के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत हैं। ये दोनों अवधारणाएं हमें यह सिखाती हैं कि एक समरस, शांतिपूर्ण, समतामूलक और पर्यावरण–संवेदनशील समाज की स्थापना ही मानवता का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए।

निष्कर्ष

'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' भारतीय संस्कृति की ऐसी सार्वकालिक अवधारणाएं हैं जो सम्पूर्ण विश्व को शांति, एकता और सह–अस्तित्व का मार्ग दिखाती हैं। आज के संघर्षपूर्ण, उपभोक्तावादी और स्वार्थ प्रधान युग में इन मूल्यों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। यदि हम इन आदर्शों को न केवल वैचारिक स्तर पर, बल्कि जीवन के व्यवहारिक पक्ष में भी अपनाएं, तो सामाजिक असमानता, धार्मिक संघर्ष, पर्यावरणीय संकट और वैश्विक विघटन जैसी समस्याओं का समाधान सहजता से संभव हो सकता है। यही वह दृष्टि है जो सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में बाँध सकती है और एक समरस, सुखद एवं टिकाऊ भविष्य की आधारशिला रख सकती है।

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

1. महाउपनिषद, अध्याय–6, श्लोक–72.
2. महात्मा गांधी : माई रिलीजन, पृष्ठ–14, नवजीवन प्रकाशन मण्डल, सं. 1927.
3. स्वामी विवेकानन्द : Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड–1, शिकागो भाषण, 1893.
4. Kissinger, Henry. *World Order*, Penguin Books, Page-38, 2014-
5. यजुर्वेद, अध्याय–36, श्लोक–17, वृहदारण्य उपनिषद, अध्याय–1, श्लोक–4.
6. स्वामी विवेकानन्द : Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड–1, शिकागो भाषण, 1893.
7. डॉ. भीमराव अम्बेडकर : एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, पृष्ठ–44, नवयुग प्रकाशन, सं. 1936.
8. Immanuel, Kant : *Groundwork of the Metaphysics of Morals*, Cambridge University Press, 1997.
9. डॉ. राममनोहर : लोहिया, मार्क्स, गाँधी और सोशलिज्म, पृष्ठ–140, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, सं. 1963.
10. आचार्य विनोबा भावे : सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ विनोबा भावे, पृष्ठ–87, पब्लिकेशन डिविजन, भारत सरकार, सं. 1963.

10. आचार्य विनोबा भावे : सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ विनोबा भावे, पृष्ठ–87, पब्लिकेशन डिविजन, भारत सरकार, सं. 1963.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 20-23
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम: भारत के सपनों को साकार करने का इंजन

अनिल कुमार
शोध छात्र भूगोल विभाग,
डॉ० संगीता सिरोही
असोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष भूगोल,
दयानंद गर्ल्स पी० जी० कॉलेज, सिविल लाइंस, कानपुर
(संबद्ध : छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उ० प्र०)

सारांश
सपनों का भारत, जो 2047 तक एक विकसित, आत्मनिर्भर और टिकाऊ राष्ट्र बनने की राह पर है, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) की ताकत पर खड़ा है। ये उद्यम न केवल अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, बल्कि संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को प्राप्त करने और विकसित भारत की परिकल्पना को मूर्त रूप देने में भी अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं। यह लेख MSMEs के योगदान को एक रचनात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, जिसमें रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण, पर्यावरणीय स्थिरता और नवाचार शामिल हैं। साथ ही, यह चुनौतियों को उजागर करता है और प्रेरक केस स्टडीज के माध्यम से MSMEs की शक्ति को दर्शाता है।

परिचय: सपनों का आधार

कल्पना करें, एक ऐसा भारत जहाँ हर गाँव, हर शहर की गलियों में छोटे-छोटे उद्यम सपनों को पंख दे रहे हों। ये हैं MSMEs—भारत की अर्थव्यवस्था का धड़कता दिल। लगभग 6.3 करोड़ MSMEs देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 30% और निर्यात में 49% का योगदान देते हैं। ये उद्यम ग्रामीण कारीगरों से लेकर शहरी स्टार्टअप्स तक, हर क्षेत्र में बदलाव की कहानी लिख रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (SDGs) और विकसित भारत 2047 की परिकल्पना, जो भारत को 30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने का लक्ष्य रखती है, MSMEs की मेहनत और नवाचार पर निर्भर करती है। आइए, इस लेख में देखें कि कैसे ये छोटे उद्यम बड़े सपनों को साकार कर रहे हैं।

MSMEs और सतत विकास लक्ष्य (SDGs): छोटे कदम, बड़ा प्रभाव

SDG 1: गरीबी उन्मूलन

MSMEs भारत के 11 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार देते हैं, जो ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में गरीबी से जूझ रहे परिवारों के लिए आशा की किरण हैं। ये उद्यम स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके छोटे व्यवसायों को बढ़ावा देते हैं।

केस स्टडी:बिहार के मिथिलांचल क्षेत्र में मधुबनी पेंटिंग बनाने वाली महिलाएँ, उद्यमी भारत पहल के तहत डिजिटल मार्केटप्लेस जैसे GeM (गवर्नमेंट ई-मार्केटप्लेस) के माध्यम से अपने उत्पादों को वैश्विक बाजार तक ले जा रही हैं। इनके प्रयासों से न केवल उनकी आय दोगुनी हुई, बल्कि स्थानीय समुदायों में गरीबी भी कम हुई।

SDG 5: लैंगिक समानता

MSMEs ने महिलाओं को उद्यमिता के नए अवसर प्रदान किए हैं। मुद्रा योजना ने 2024 तक 68% से अधिक ऋण महिलाओं को प्रदान किए, जिससे छोटे व्यवसायों में उनकी भागीदारी बढ़ी है।

उदाहरण: सात महिलाओं से शुरू हुआ लिज्जत पापड़ आज 45,000 से अधिक महिलाओं को रोजगार देता है। यह MSME न केवल आर्थिक सशक्तिकरण का प्रतीक है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि कैसे छोटे कदम लैंगिक समानता की दिशा में बड़ा बदलाव ला सकते हैं।

SDG 8: सभ्य कार्य और आर्थिक विकास

MSMEs भारत में सबसे बड़े रोजगार सृजनकर्ता हैं, जो कुशल और अकुशल दोनों श्रमिकों को अवसर प्रदान करते हैं। ये उद्यम नवाचार को बढ़ावा देते हैं और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करते हैं।

केस स्टडी: उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में पीतल हस्तशिल्प उद्योग ने 20,000 से अधिक कारीगरों को रोजगार दिया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और मेक इन इंडिया पहल के समर्थन से, यह उद्योग अब वैश्विक बाजार में अपनी चमक बिखेर रहा है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बल मिला।

SDG 9: उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचा

MSMEs डिजिटल क्रांति को अपनाकर वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में शामिल हो रहे हैं। डिजिटल इंडिया और भारतनेट जैसी योजनाओं ने ग्रामीण MSMEs को ऑनलाइन बाजारों तक पहुँच प्रदान की है।

उदाहरण: राजस्थान के जयपुर में ब्लू पॉटरी कारीगरों ने वोकल फॉर लोकल अभियान के तहत ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स का उपयोग करके अपने उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाया है। यह नवाचार उनकी आय में 35% की वृद्धि का कारण बना है।

SDG 13: जलवायु कार्रवाई

MSMEs पर्यावरण-अनुकूल प्रथाओं को अपनाकर भारत के नेट-जीरो लक्ष्य में योगदान दे रहे हैं। MSE-GIFT और MSE-SPICE जैसी योजनाएँ MSMEs को हरित प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

केस स्टडी: तमिलनाडु में सनलाइट सोलर सॉल्यूशंस नामक एक MSME ने सौर पैनल निर्माण शुरू किया, जिससे न केवल 500 स्थानीय लोगों को रोजगार मिला, बल्कि 2024 में 10,000 टन कार्बन उत्सर्जन भी कम हुआ। यह इकाई ग्रीन क्लाइमेट फंड के समर्थन से संचालित है।

विकसित भारत 2047: MSMEs का योगदान

विकसित भारत 2047 का सपना एक समृद्ध, समावेशी और टिकाऊ भारत का है, और MSMEs इस सपने का इंजन हैं। यहाँ बताया गया है कि MSMEs इस दृष्टिकोण को साकार कर रहे हैं:

- आत्मनिर्भर भारत: मेक इन इंडिया और वोकल फॉर लोकल जैसी पहलें MSMEs को स्थानीय उत्पादन बढ़ाने और आयात पर निर्भरता कम करने के लिए प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए, ओडिशा का संबलपुरी साड़ी उद्योग स्थानीय बुनकरों को सशक्त बनाता है और वैश्विक बाजार में भारत की सांस्कृतिक विरासत को प्रस्तुत करता है।

- ग्रामीण सशक्तिकरण: MSMEs ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देकर शहरी-ग्रामीण असमानता को कम करते हैं। वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट (ODOP) पहल ने 760 से अधिक जिलों में स्थानीय उत्पादों को बढ़ावा दिया है।
- डिजिटल क्रांति: डिजिटल इंडिया के तहत UPI और ONDC (ओपन नेटवर्क फॉर डिजिटल कॉमर्स) जैसे प्लेटफॉर्म्स ने MSMEs के लिए लेनदेन और बाजार पहुंच को आसान बनाया है।
- युवा और नवाचार: MSMEs स्टार्टअप्स और उद्यमिता को बढ़ावा देकर भारत को एक ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में बदल रहे हैं। स्टार्टअप इंडिया ने 2024 तक 1 लाख से अधिक स्टार्टअप्स को समर्थन दिया, जिनमें से कई MSMEs हैं।

चुनौतियाँ: सपनों के रास्ते की बाधाएँ

MSMEs के सामने कई चुनौतियाँ हैं, लेकिन हर चुनौती एक अवसर भी लाती है:

1.वित्तीय बाधाएँ: केवल 16% MSMEs को बैंकों से ऋण मिलता है बाकी अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर हैं | समाधान: TReDS (ट्रेड रिसीवेबल्स डिस्काउंटिंग सिस्टम) और CGTMSE (क्रेडिट गारंटी फंड ट्रस्ट फॉर MSMEs) को डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के साथ जोड़कर ऋण प्रक्रिया को सरल बनाना।

2.तकनीकी कमी: 84% MSMEs को डिजिटल तकनीकों का मूल्य समझने में कठिनाई होती है। समाधान: इंडस्ट्री 4.0 प्रशिक्षण और क्षेत्रीय टेक्नोलॉजी अपग्रेडेशन हब्स स्थापित करना, जो AI और क्लाउड-आधारित समाधानों को बढ़ावा दें।

3.बाजार पहुंच: वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में MSMEs की सीमित भागीदारी। समाधान: FTA (फ्री ट्रेड एग्रीमेंट्स) और GeM जैसे प्लेटफॉर्म्स को और सुलभ बनाना।पर्यावरणीय अनुपालन: MSMEs भारत के 15% कार्बन उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं। रचनात्मक समाधान: ग्रीन क्लाइमेट फंड और MSE-SPICE जैसी योजनाओं के तहत हरित प्रौद्योगिकियों को प्रोत्साहन देना।

निष्कर्ष: एक नया भारत, MSMEs के साथ

MSMEs भारत के सपनों का आधार हैं। वे न केवल सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद कर रहे हैं, बल्कि विकसित भारत 2047 के सपने को साकार करने के लिए भी कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। मधुबनी की महिलाएँ, मुरादाबाद के कारीगर, जयपुर के पॉटरी निर्माता, और तमिलनाडु की सौर ऊर्जा इकाइयाँ—ये सभी कहानियाँ MSMEs की ताकत और संभावनाओं को दर्शाती हैं। सरकार, निजी क्षेत्र और समाज के सहयोग से MSMEs को वित्त, तकनीक और वैश्विक बाजार तक पहुँच प्रदान करके भारत को एक समावेशी, नवाचारी और टिकाऊ राष्ट्र बनाया जा सकता है। आइए, इन छोटे उद्यमों के बड़े सपनों को सलाम करें और एक ऐसे भारत का निर्माण करें, जो 2047 में विश्व पटल पर चमके।

संदर्भ

- 1.MSME मंत्रालय, भारत सरकार. (2024). उद्यमी भारत: MSME वार्षिक रिपोर्ट.
- 2.संयुक्त राष्ट्र. (2023). सतत विकास लक्ष्य प्रगति रिपोर्ट.
- 3.The Indian Express. (2024). How MSMEs Can Benefit by Adopting Sustainable Practices.

- 4. Entrepreneur. (2024). How India's MSMEs are Driving Towards a Sustainable Future.
- 5. Indiastat.com. (2024). MSMEs Strengthen India's Journey towards Viksit Bharat.

Email ID :- anilchaudhary0000@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 24-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में विद्रोह का स्वर

सौरभ कतरौलिया
शोधार्थी
हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली–110007

शोध संक्षेपः– दलित साहित्य के क्षेत्र में मोहनदास नैमिशराय का अभूतपूर्व योगदान है। मोहनदास नैमिशराय ने हिंदी कथा साहित्य में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। इसका मुख्य कारण यह है कि नैमिशराय जी ने बड़ी ही निडरता व साहस के साथ अपने साहित्य में शोषित, पीड़ित, वंचित वर्गों का यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है। इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से निम्न व हीन समझे जाने वाले दलितों को इस जीर्ण–शीर्ण अमानवीय वर्णवादी व्यवस्था से बाहर निकलने की चेतना प्रदान की तथा समता एवं सम्मान दिलाने का प्रयास किया है। उन्होंने दलितों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। उन्होंने खुली आंखों से जो देखा जो महसूस किया तथा भोगे हुए सच को अपने साहित्य के माध्यम से लोगो के समक्ष रखा।

मुख्य शब्दः मोहनदास नैमिशराय, उपन्यास, दलित, विद्रोह, अत्याचार, शोषण, पीड़ित।

प्रस्तावनाः– मोहनदास नैमिशराय को हमेशा इस बात की शिकायत थी कि हिन्दी कथा साहित्य में दलित चरित्रों का प्रभावशाली चित्रण क्यों नहीं है? अगर है भी तो सिर्फ उनकी यातना, दुर्दशा, अपमान और हीनताबोध इसके अलावा और कुछ नहीं है । हिन्दी कथा साहित्य में पहली बार मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यासों के माध्यम से दलित जीवन का यथार्थ, दलितों में पैदा हो रही चेतना एवं विद्रोह की भावना का प्रभावशाली चित्रण किया। उनके उपन्यासों में दलित मानव की वेदना, उनका संघर्ष, सुविधाभोगी लोगों के प्रति उनका विरोध एवं अपने अधिकार प्राप्ति हेतु आत्म सजगता आदि का प्रभावपूर्ण चित्रण हुआ है। उनकी उपन्यासों के पात्र ऊर्जावान है एवं अन्याय के विरूद्ध उठ खड़े होते हैं।

दलित समाज जितना शोषित, पीड़ित तथा शिक्षा से उपेक्षित रहा उतना ही दलित साहित्य को भी उपेक्षा का सामना करना पड़ा। दलितों ने अपने अस्तित्व, अस्मिता तथा सम्मान के लिए निरंतर संघर्ष किया। मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया तथा शोषण के विरुद्ध विद्रोह की चेतना जगाई। हरि नारायण ठाकुर कहते है "अन्याय तब तक दूर नहीं होगा जब तक उसे सहन करने वाला खुद–ब–खुद उठ कर खड़ा न हो, जब तक गुलामी से मुक्त होने की भावना प्रज्ज्वलित नहीं होती, वह गुलामी के विरुद्ध लड़ने, मरने मिटने को तैयार नहीं होगा, गुलामी जाने बाली नहीं, गुलाम को यह अहसास करा दो कि वह गुलाम है, वह क्रांति कर देगा।"[1]
सामाजिक क्रांति के प्रयास एवं जाति प्रथा का विरोध तब से हो रहा है, जब अन्याय अत्याचार हुए तब से महापुरुषों ने संतो ने समाज में सामाजिक समता स्थापित करने के लिए विद्रोह किया।

भूमिकाः

उपन्यासों में अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर

सदियों से चली आ रही प्रथाओं, रूढ़ियों, अंधविश्वास, सामाजिक अव्यवस्थाओं, जातिभेद, छुआछूत, स्त्री शोषण, ब्राह्मणी क्रिया– कर्म, रूढ़ियाँ आदि का इनके उपन्यासों में जमकर विरोध किया गया हे। इतना ही नहीं इन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में एक चेतना, जागृती, विद्रोह, क्रांति की शुरूआत की है। इनके उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की समस्याओं के विरोध में विद्रोह दिखाई

देता है। उपन्यासों में अंतर्जातीय विवाह के प्रति विद्रोह दिखाई देता है। जातियता की जड़े आज भी समाज में है। भगवान के नाम पर उनका शोषण हो रहा है। धर्म व्यवस्था ने दलितों को अछूत माना है।

स्त्री शोषण के प्रति विद्रोह का स्वर

पुरूष प्रधान संस्कृति में नारी को भोग की वस्तु मान लिया गया है। नारी अब घुटन और शोषण के खिलाफ आवाज उठा रही है। अब वह इस गुलामी के पिंजरे में बंद रहना नहीं चाहती। 'आज बाज़ार बंद है' उपन्यास में नारी पात्रों ने व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया है। इस उपन्यास में एक दिन की बात है। जब शबनम बाई बैठी थी तभी एक दल्ला आता हे। और उसे धमकार कहता है, "मैंने सुना है शबनम बाई तू इन रंडीयो की नेता बन गई है।"[2]

तभी शबनम बाई ने आक्रोश के स्वर में कहा था। "नेता तो गू के कीड़े की तरह नालियों में भी पैदा होने लगे है आजकल मैं तो इनकी अच्छी माँ बनने की कोशिश कर रही हूँ। "[3]

इसी प्रकार से 'क्या मुझे खरीदोगे' उपन्यास में नीलम सरिता से कहती है । "देख सरिता, महिलाओं पर शोषण करने के पुरूष के पास सौ बहाने हैं। इतिहास में क्या हुआ ? हम सभी जानते है। वर्तमान में क्या हो रहा है, हमें हर तरह के शोषण का सामना करना चाहिए। "[4]

इस प्रकार से स्त्री शोषण के खिलाफ आक्रोश एवं विद्रोह का स्वर उभरा हुआ दिखाई देता है। इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा उद्घाटित हुई है।

जातिभेद के प्रति विद्रोह का स्वर

समाज में फैली छुआछूत और जातिभेद जैसी कुप्रथाओं को लेखक ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। नैमिशराय जी जातिभेद का विरोध कर के एक सामाजिक बदलाव लाना चाहते है। मुक्तिपर्व उपन्यास में लेखक कहते है आजादी के साठ साल बाद भी दलितों को सताया जा रहा है। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में जब बंसी के साथ जाति के नाम पर भेदभाव होता है तो वह सोचता है । "यह सब क्यों होता है? आजादी के बाद भी क्यों लोग जातियों की बात करते हैं। जात–पात छुआछूत का आखिर अंत कब होगा।"[5]

दलित समाज सदियों से शिक्षा से दूर रहा है। लेकिन बंसी शिक्षा के महत्व को जान कर अपने बेटे सुनीत को पढ़ाना चाहता है। सुनीत को पाठशाला में जाते ही जातिभेद का अहसास हो जाता है। यह जातिभेद सुनीत को एक कांटे की तरह चुभता है। इसी संदर्भ में रामशरण शर्मा अपनी पुस्तक में लिखते है कि "मनुस्मृति के नियमों के अनुसार जब वेद की पढ़ाई हो रही हो, तब वहाँ शूद्रों को कभी नहीं रहने देना चाहिए। "[6]

'वीरांगना झलकारी बाई' उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह की समस्या को उठाया है। जाति को मिटाने के लिए अंतर्जातीय विवाह होना आवश्यक है जिससे जाति तोड़ो समाज जोड़ो, यह आंदोलन आगे बढ़ सकता है। इस उपन्यास में शास्त्री ब्राह्मण समाज से है उसने भंगी समाज की लड़की मछरिया से शादी कर ली। इसी कारण इनका विरोध हुआ है। लेखक कहते है "मछरिया और शास्त्री का प्रेम न राजा को रास आया था और न दरबारियों को हालांकि सिपहसालार औरत की देह पर मर मिटते थे।"[7]

स्पष्ट है अंतर्जातीय विवाह का प्राचीन काल से विरोध हुआ है। संविधान में भी जातिभेद को मिटाने के लिए अंतर्जातीय विवाह को महत्व दिया गया है।

गुलामी के प्रति विद्रोह का स्वर

सवर्णों ने दलितों को गुलाम बनाया उस गुलामी से दलितों का जीवन नरक समान हुआ था, लेकिन पीड़ित दलित समाज में चेतना जगाने का काम समाज सुधारकों ने किया, जिससे गुलामी के प्रति दलित समाज में भी बदलाव आया। जैसे ही दलितों को गुलामी का एहसास हुआ वैसे ही दलितों ने गुलामी के प्रति विद्रोह किया जैसे 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में बंसी कहता है "जनाबे अली हम न गुलाम थे, न गुलाम है, और न गुलाम रहेंगें ।"[8]

इस प्रकार गुलामी के प्रति विद्रोह व्यक्त किया गया।

अमानवीयता के प्रति विद्रोह का स्वर

वर्तमान समाज में दलितों की स्थिति को अखबार के माध्यम से देखा जा सकता है। दलित समाज में शोषण, अन्याय, अत्याचार की घटनाएं बढ़ती ही जा रही है। दलितों के साथ दोयम व्यवहार किया जा रहा है। इसी दोयम व्यवहार के प्रति दलित समाज अब विद्रोह कर रहा है। मुक्तिपर्व उपन्यास

में सुनीत को नलकी से पानी पिलाया जाता है उससे वह विद्रोही बन गया है। सुनीत नलकी को फेंक देता है। वह कहता है, "पंडित जी इस नलकी को क्या जनेउ बनाकर गले में लटका ओंगे।"[9]

इस प्रकार से दलित समाज सदियों से अमानवीय व्यवहार के प्रति विद्रोह कर रहा है।

वेश्यावृत्ति के प्रति विद्रोह का स्वर

समाज में दलितों पर अन्याय और अत्याचार तो होते ही है इसके साथ ही दलित स्त्रियों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। उन्हें अंधविश्वास के माध्यम से देवदासी से वेश्यावृत्ति में कैसे धकेला जाता है इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास में किया गया है। अब शिक्षा के कारण स्त्रियों में जागृति पैदा हुई है। 'आज बाजार बंद है' उपन्यास में लेखक कहते है "अंधेरे से उजाले की ओर वेश्याओं के कदम बढने लगे थे। सेक्स वर्कर्स के बीच चेतना आने लगी थी ।"[10]

इस प्रकार से वेश्यावृत्ति के प्रति विद्रोह का स्वर उभरने लगा था ।

यौन शोषण के प्रति विद्रोह का स्वर :

आज भी भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म एवं भगवान के नाम पर स्त्रियों के साथ अन्याय, अत्याचार हो रहा है। उनको देवदासी के नाम पर वेश्या बनाया जाता रहा है। कितनी दर्दनाक कहानी है। हमारे समाज का स्त्रियों को दखने का नजरिया कब बदलेगा। उन्हें देवदासी से भोगदासी बनाया जा रहा है। उनके साथ पंडे, पुजारी भी नाजायज संबंध बनाते आ रहें है।

'आज बाजार बंद है' इस उपन्यास में पत्रकार अखबारों में स्त्री–मुक्ति के लिए उनको शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए एक प्रधान समाचार छपा था "हिंदुस्तान की तावायफें आइए, हम शोषण के खिलाफ एकजुट हो ।"[11]

निष्कर्षः–

भारतीय समाज पुरातन काल से वर्ण व्यवस्था के अधीन समाज रहा है। युग बदलने के साथ–साथ संघर्ष के स्वर भी मुखर होते रहे। इसी कड़ी में मोहनदास नैमिशराय अपने उपन्यासों के द्वारा साहित्यिक क्षेत्र में अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं। मुख्य रूप से दलित चेतना एवं विद्रोह को साथ लेकर उपन्यासों के विभिन्न पात्रों के जीवंत इतिहास को आगे बढ़ाया है। इनके उपन्यास दलित जीवन के आस–पास की होने वाली घटनाओं एवं दुर्घटनाओं को लेकर लिखे गये है । कथाकार इस बात को बहुत ही सूक्ष्म रूप से चित्रित करता है कि दलितों के साथ कैसा व्यवहार होता है। वह पूजा–पाठ के ढोंग–ढकोसलों से अलग हटकर दलित को एक विवेकपूर्ण जीवन जीने को कहता है। दलित समाज में विद्रोह करने के लिए लेखक ने उपन्यासों के माध्यम से चेतना जगाने का कार्य किया है। जातिभेद, अंधविश्वास, रूढ़ियों, गुलामी के प्रति, वेश्यावृत्ति के प्रति विद्रोह का स्वर उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है।

संदर्भ सूचीः–

1. हरि नारायण ठाकुर, भारत में पिछड़ा वर्ग आंदोलन और परिवर्तन का नया समाज शास्त्र, संस्करण 2009, कल्पज प्रकाशन, दिल्ली। पृ.सं 106
2. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, (प्रथम संस्करण) 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। पृ.सं 34
3. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, (प्रथम संस्करण) 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। पृ.सं 34
4. मोहनदास नैमिशराय, क्या मुझे खरीदोगे, संस्करण 1990, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली। पृ.सं 46
5. मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिपर्व, (प्रथम संस्करण) 1999, अनुराग प्रकाशन, दिल्ली। पृ.सं 63
6. रामशरण शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, संस्करण 2008, राजकमल प्रकाशन पृ. सं 200
7. मोहनदास नैमिशराय, वीरांगना झलकारी बाई, संस्करण 2005, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली। पृ. सं 43
8. मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिपर्व, (प्रथम संस्करण) 1999, अनुराग प्रकाशन, दिल्ली। पृ.सं 28
9. मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिपर्व, (प्रथम संस्करण) 1999, अनुराग प्रकाशन, दिल्ली । पृ.सं 54
10. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, (प्रथम संस्करण) 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। पृ. सं 136
11. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, (प्रथम संस्करण) 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। पृ. सं 12

मो. 7982812340 sauravsingh3224@gmil.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 27-34
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"ग़ज़ल गायकी के प्रमुख उदीयमान घरान"

'डॉ. राजेश कुमार मिश्रा'
जी.के. मेमोरियल कालेज ऑफ एजुकेशन चाकघाट रीवा (म.प्र.)

सारांश : संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ संगीत उपस्थित न हो, संगीत संसार में हर जगह समाहित है, फिर चाहे वह झरनों की कलकल हो, पशु—पक्षियों के चहकने की आवाज हो, या हवा की सरसराहट हो, सभी में संगीत समाहित है। संगीत न केवल मनुष्य को ब्लकि पशु—पक्षी, पेड़—पौधों सभी को प्रभावित करता है। संगीत सभी मानव भूतियों का सफल प्रदर्शन होने के कारण आदिकाल से मानव जीवन के हर क्षण में समाहित है। प्रारम्भ में जब भाषा का विकास नहीं हुआ था, उस समय भी संगीत के द्वारा मन के भावों की अभिव्यक्ति की जाती थी।

मुख्य शब्द : रचना ग़ज़ल, ग़ज़ल गायिकी

प्रस्तावना : संगीत कला एक साधना हैं तथा सभी ललित कलाओं में श्रेष्ठतम है। संगीत के भीतर मानव जीवन से जुड़ी सभी भावनाओं को उजागर करने की शक्ति बहुत ही सरल व मार्मिक रूप में विद्यमान है। चाहे फिर वह दुःख के क्षण हो या सुख के।

इसलिए कहा जाता हैं कि संगीत के द्वारा भावाभिव्यक्ति बहुत ही सहज होती हैं तथा यह कहा गया है कि वही कला श्रेष्ठ है, जिसमें भावों की अभिव्यक्ति शीघ्र होती है।

संगीत कला के कई रूप है। जब इसे शास्त्रों में बांध के गाया जाता हैं तो यह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। जब इसे शास्त्र के नियमों में थोड़ी शिथिलता से गाते हैं, तो यह उपशास्त्रीय संगीत कहलाता है। वहीं जब इसे लोक (समाज) के अनुसार गाया जाता है तो वह लोकगीत कहलाता है।

संगीत स्थान व स्थिति के अनुसार स्वयं को ढालने की अपूर्ण क्षमता रखता है। शास्त्रीय संगीत की कई विधाएँ है जैसे— टप्पा, ठुमरी, ख्याल, तराना, ध्रुपद, धमार आदि। ये सभी गायन शैलियाँ एक दूसरे से भिन्न गायी जाती हैं तथा एक ही गायन शैली को भी कलाकार भिन्न तरीके से गाता है क्योंकि जब भी कोई गायक गाता है तो प्रत्येक गायक की गायिकी का अंदाज, तरीका अलग—अलग होता है। यह गायक भिन्नता ही इन्हें घराने का रूप देती है।

इसी तरह यदि हम उपशास्त्रीय संगीत की बात करते हैं तो इसमें शास्त्रीय संगीत तो विद्यमान होता है। क्योंकि बिना शास्त्रीय संगीत के हम किसी भी प्रकार के संगीत की कल्पना नहीं कर सकते है, सिर्फ इसमें शास्त्रों के नियमों को थोड़ा शिथिल करके जनरूचि के अनुसार परिवर्तित कर के, समय—समय पर नवीन प्रयोग कर के प्रस्तुत किया जाता है।

इन्हीं उपशास्त्रीय विधाओं में से एक नाम वर्तमान में बेहद लोकप्रिय हैं वह है 'ग़ज़ल गायकी' जो वर्तमान में जन समुदाय के द्वारा खूब सराई जा रही है। लोग इसको सुनना, सीखना और गुनगुनाना पंसद कर रहे है।

वर्तमान में ग़ज़ल गायिकी के क्षेत्र में इज़ाफा होने का मुख्य कारण यह रहा क्योंकि कई मशहुर ग़ज़ल गायकों ने अपनी गायकी के करिश्में से इसे लोकप्रिय बनाया और लोगों तक पहुँचाया, जैसे—

बेगम अख़्तर मेहदी हसन, गुलाम अली, जगजीत सिंह। इन सभी ग़ज़ल गायकों कि गायिकी के अंदाज में, प्रस्तुतीकरण के अंदाज में, ग़ज़ल को कहने के अंदाज में जमीं आसमा का अंतर है।

इसी अंतर के कारण किसी को बेगम अख़्तर जी की गायिकी पंसद हैं तो किसी को मेहदी हसन साहब की तो किसी को गुलाम अली साहब की गायिकी। यह गायिकी का अलग–अलग अंदाज ही इन्हें एक दूसरे से अलग पहचान दिलाता है। इसी विभिन्नता के कारण हम इस उपशास्त्रिय सांगितिक विधा को घराने के रूप में तब्दील कर सकते हैं। चाहे फिर गायन हो, वादन हो, या नृत्य हो सभी में घराने मौजूद है।

दो गया है कि कला की सभी विधाओं में घराने मौजूद हैं चाहे फिर गायन हो, वादन हो या नृत्य। इसी प्रकार हम ग़ज़ल में भी ऐसा कह सकते, बेशक इन सभी गायकों की मूलजड़े किसी न किसी रूप से शास्त्रीय संगीत के किसी घराने से जुड़ी हुई हैं, लेकिन इनकी सृजनात्मकता व निजी विशेषताओं ने इन्हें 'ग़ज़ल गायिकी' के क्षेत्र में अलग पहचान दिलायी
है।

इन सभी की गायिकी के अंदाज को तल्फ्फुज कहने के अंदाज, अदायगी के अंदाज की भिन्नता को देखते हुए 'ग़ज़ल में घराने' बनाए जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसी छिपे तथ्य को संगीत समाज व श्रोताओं व विद्यार्थियों के समक्ष अपने शोध कार्य द्वारा उजागर करने की कोशिश की है। इस उपशास्त्रीय संगीत की विधा को घराने के रूप में प्रस्तुत करने की मेरी चेष्ठा थी। त्रुटि होना स्वाभाविक है जिसके लिये में ह्रदय से क्षमाप्रार्थी हूँ।

ग़ज़ल की उत्पत्ति व विकास

"हिंदी, उर्दू में कहो या किसी भाषा में कहो"
बात का दिल पे असर हो तो ग़ज़ल होती है।"

विजय वातें

"भारतीय संस्कृति देशी तथा विदेशी ताने–बाने से निर्मित बहुरंगी वस्त्र है। भारतीय संगीत का इतिहास ऐसी ही समन्वयकारी प्रवृत्तियों की विराट चेष्टा है। भारतीय संस्कृति के समान ही ललित कलाओं की भी यह प्रकृति हैं कि वे बाह्रय कलाओं को शीघ्र ही आत्मसात कर लेती है। फिर चाहे गीत हो, वाद्य हो, नृत्य हो। भारतीय इतिहास में मध्यकाल से संगीत
की प्रत्येक विधा हिंदू–मुस्लिम सामंजस्य की प्रतीक हैं, इसी सामंजस्य का एक रूप है, "ग़ज़ल गायिकी"

ग़ज़ल का सामान्य अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाएँ –

"भारतीय काव्य जगत एवं संगीत जगत को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली रचना ग़ज़ल है।" सामान्यतया ग़ज़ल को हुस्न, इश्क और जवानी का हाल बया करने वाली अभिव्यक्ति का माध्यम कहा जाता रहा है। 'ग़ज़ल' का अर्थ 'कातने–बुनने' से भी लिया गया है। कहा जाता हैं कि ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति "ग़जाल" शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है "हरिण", ग़ज़ल मूलतः एक आत्मनिष्ठ व व्यक्तिपरक काव्य विधा है। ग़ज़ल मूलतः फारसी भाषा की काव्यगत शैली है, तथा महोब्बत के जज़्बातों की अभिव्यक्ति है। महोब्बत का अर्थ केवल इंसानी प्रेम से ही नहीं हैं, बल्कि सर्वशक्तिमान ईश्वर जो इस सृष्टि के पालनकर्ता है, उनके प्रति असीम प्रेम से भी है। फारसी साहित्य में इस बात की पुष्टि मिलती हैं कि फारसी साहित्य में "इश्के हकीकी" "आलौकिक प्रेम" के नाम से जाना जाता है, वहीं "इश्के मज़ाजी" को लौकिक प्रेम के नाम से जाना जाता है तथा ग़ज़ल एक फारसी भाषा की काव्यगत शैली है, जिसका प्रयोग लौकिक व परलौकिक दोनों ही प्रेम को दर्शाने के लिए किया गया है। अरबी–फारसी की परम्पराओं को मान्यता देने वाले ग़ज़ल को 'सुखन–बज़ना' अर्थात् स्त्रियों के बारे में बात करना या आशिक, माशूक की बातचीत मानते है। वस्तुतः ग़ज़ल पढ़ने की चीज है। शायर इसे तरन्नुम में पढ़ते है। संगीत में अलग से ग़ज़ल नाम की कोई विधा नहीं है। सिर्फ एक अंदाज है उसको गाने का भाव के अनुकूल धुन बनाकर उसे गा लिया जाता है। धुन राग पर आधारित हो सकती हैं और नहीं भी किंतु यह स्पष्ट हैं कि तरन्नुम में पढ़ने की अपेक्षा जब ग़ज़ल स्वरबद्ध होकर किसी गायक के मधुर कंठ से निकलती है, तब उसके आनंद में असीम वृद्धि हो जाती है। "ग़ज़ल प्रतिकूल व अनुकूल हर तरह के मानवीय अनुभवों की बारिकीयों को बहुत ही उम्दा तरीके से बयान करती है। गजल एक ज़रिया हैं, जो जिंदगी के हर रंग को बया करती है। चाहे दुख हो या सुख, संयोग–वियोग आदि।" ग़ज़ल के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने कई परिभाषाएँ दी है। जो कि ग़ज़ल का स्वरूप स्पष्ट करने में निश्चित तौर पर सहायक सिद्ध होगी, जिनका विवरण निम्न प्रकार है। "मिर्जा गालिब" – ने ग़ज़ल के बारे में कहा था।

"मतलब हैं नाम औ गंध वाले गुफतगु में काम चलता नहीं है। दश्न ओ खंजर कहे बगैर, हर चन्द हो मुशहिदु–ए–हक की गुफतगु बनती नहीं हैं बाद सागर कहे बगैर" अर्थात् ग़ज़ल को जवानी का हाल बयान करने वाली और माशूक की संगति व इश्क का जिक्र करने वाली अभिव्यक्ति कहा गया है। महाकवि शंकर ने ग़ज़ल को **"राजगीत"** कहकर सम्बोधित किया है। मशहूर शायर फिराक गोरखपुरी जी लिखते है **"ग़ज़ल महबूब से बातचीत करने कोकहते है।**बशीर बद्र जी ने बहुत ही सुंदर अंदाज में ग़ज़ल को परिभाषित किया है। **"ये शबनमी लहजा है आहिस्ता ग़ज़ल पढ़ना, तितली की कहानी है फूलों की जुबानी हैं"** यह शे'र ग़ज़ल के नूर को बया कर रहा है।"

शरतचंद्र परांजपेय जी के शब्दों में ग़ज़ल मूलतः फारसी भाषा की काव्यगत शैली है। इसमें प्रणय प्रधान गीतों का समावेश होता है। **"गुलहा–ए–परीशाँ"** में खुर्शीद नबी अब्बासी ने कहा हैं कि ग़ज़ल उर्दू शायरी का हीएक रूप है।" पससंतक साहब ने ग़ज़ल के लिए कहा है। डॉ. अस्थाना ने अपनी पुस्तक **"ग़ज़ल उद्‌भव व विकास"** में परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि ग़ज़ल वह गेयात्मक काव्य विधा है, जिसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं को शब्द, चित्र शेरों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

दुर्गेश नंदिनी ने अपनी पुस्तक **"भारतीय काव्य शास्त्र के ग़ज़ल की संकल्पना"** में परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि ग़ज़ल ऐसे शेरों के संकलन को कहते हैं जो किसी शायर द्वारा एक छंद में तथा एक रदीफ में बोले गये हो तथा एक शायर द्वारा पेश किए जाए।"उपरोक्त लिखित परिभाषाओं से ग़ज़ल के स्वरूप को ओर अधिक समझने में सहायता मिलती है।

ग़ज़ल की उत्पत्ति –

"ग़ज़ल का समारम्भ ईरान की भूमि पर हुआ, ईरान में फारस नामक एक प्रांत है। अतः फारस के नाम पर इस देश की भाषा को फारसी कहा जाने लगा।" ग़ज़ल मूलतः फारसी शब्द है जिसका सामान्य सा अर्थ हैं **"मुहब्बत के जज़्बातों को व्यक्त करने वाली काव्य विधा।"** ऐसा माना जाता हैं कि ग़ज़ल की उत्पत्ति फारस के लोक–संगीत से हुई है। फारस से ही इसका प्रसार फिर अरब, मिश्र, तथा भारत आदि देशों में हुआ है। कालान्तर में ईरान पर अरब शासकों का अधिकार हो जाने से फारसी पर अरबी शब्दों का सम्मिश्रण हो गया। अरबी भाषा में ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ 'कातना–बुनना' होता है। अरबी साहित्य में प्रेम अवश्य मिलता है, किंतु ग़ज़ल के नाम से नही बल्कि तशबीब अथवा नसीब के नाम से , जो वास्तव में कसीदे का ही अंश है। अरबी भाषा में "कसीदा" काव्य की एक विधा थी जो किसी की प्रशंसा से संबंधित होती थी तथा तशबीब व नसीब का अर्थ ग़ज़ल के समान ही यौवन और प्रेम की बातें करना होता था। ग़ज़ल के उद्‌भव के संबंध में एक ऐतिहासिक तथ्य मिलता हैं, जिसे कई विद्धानों ने मान्यता दी है, तकरीबन चौदह सौ वर्ष पहले अरब के सामन्ति समाज में तत्कालीन बादशाहों और अमीरों की विरूदावली बखान के लिए अवतरीत काव्य रूप, तशबीब या कसीदा से प्रेम और श्रृंगार संबंधी शेरों को निकालकर एक जगह इक्कठा कर देने के परिणामस्वरूप ही ग़ज़ल का प्रादुर्भाव हुआ। अरबी में 'कसीदा' नाम की एक विधा थी, जो किसी की प्रंशसा से संबंधित होती थी। कसीदे के तशबीब, गुरेज, मदह, दुआ यह चार भाग होते थे। कसीदा की शुरूआती पक्तियों को तशबीब कहा जाता था। तशबीब का अर्थ **"ग़ज़ल के समान ही यौवन और प्रेम की बाते करना होता था।"** कसीदाकार (राजाओं के मनोरंजन के लिए यह पक्तियाँ लिखते थे) जिनका आशयः प्रायः प्रेम और प्रंशसा की बात करना होता था। इसलिए **"तशबीब"** को प्रणयगीत कहा गया है। डॉ. वजीर आगा ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा हैं कि ग़ज़ल के प्रारंभ के बारे में आम धारणा यह हैं कि उसने अरबी कसीदे के उस प्रारम्भिक भाग से जन्म लिया, जिसे तशबीब, नसीब या कौल (कसीदे में शुरू के शेर, जिनमें किसी घटना का वर्णन होता है।) ग़ज़ल नाम मिला। इससे स्पष्ट होता हैं कि ग़ज़ल अरबी कसीदे से उपजी है। अरबी कसीदा जब ईरान में पहुँचा तब ईरान के कवियों ने **"तशबीब"** को कसीदे से अलग कर दिया और एक नया काव्य रूप निर्माण किया, जिसे ग़ज़ल नाम दिया। 10वीं शताब्दी में ईरान में रौदकी नामक कवि हुआ। रौदकी को फारसी का 'बाबा आदम' भी कहते है। कहा जाता हैं कि रौदकी ने कसीदे से तशबीब के हिस्से को अलग करके। उसको अपने तौर पर एक स्थायी विधा की हैसियत दी है, और उसका नाम ग़ज़ल रखा है। रौदकी से पहले भी शायद ग़ज़ल विधा का जन्म हुआ होगा, परन्तु इस संबंध में रौदकी के महत्व को अधिकतर विद्धानों ने स्वीकार किया है। रौदकी ने अपनी ग़ज़लों में प्रेम परक विषयों को ही स्थान दिया, इसलिए लम्बे अर्से तक ग़ज़ल में हुस्न, और इश्क का

समावेश रहा होगा। ईरान में ग़ज़ल को सम्मान रौदकी ने दिलाया। फारसी में रौदकी से लेकर सादी, शीराजी तक ग़ज़ल की विशाल परम्परा मिलती है। रौदकी की ग़ज़ल में अरबी भाषा का सम्मिश्रण था। उस समय लिखी गयी ग़ज़लों की भाषा अरबी–फारसी की जटिलता का सम्मिश्रण था। ग़ज़ल भले ही अरब में उत्पन्न हुई लेंकिन उसे सजाने संवारने का कार्य ईरान मेंहुआ। ग़ज़ल के उद्भव के संबंध में कुछ विद्वानों का मानना हैं कि अरबी कसीदे और उसकी तशबीब से ग़ज़ल की उत्पत्ति नहीं हुई। उनका कहना हैं कि ईरान में (यानी फारसी में) जो ग़ज़ल का दौर शुरू हुआ उसमें काफी समय पहले से काव्य का एक गीत रूप प्रचलित था। जिसे 'चीमा' कहते थे। और उसका गठन व ढाँचा ही नहीं बल्कि उसकी भाव–वस्तु भी ग़ज़ल से मिलती जुलती थी। वे मानते थे कि ग़ज़ल उसी 'चीमा' की देह से निकली। वहीं कुछ विद्वानों की ग़ज़ल की उत्पत्ति के संबंध में मान्यता हैं कि उर्दु शायरी, फारसी शायरी का अनुकरण हैं और फारसी शायरी अरबी का अनुकरण है। और अरबी शायरी में कसीदों (प्रंशसा गीत) को तशबीब (आरंभ) में ग़ज़ले अर्थात् कसीदों के आरंभ में आंशिकाना (प्रेमपरक) विषय भी लिखे जाते थे। इसकों ग़ज़ल तथा तग़ज़ल कहा जाता था। यह तम्हीद (आरंभ या भूमिका) फारसी कवियों ने इस अंश को ग़ज़ल का एक स्थायी काव्यरूप बना दिया। स्पष्ट हैं कि अरबी के अनुकरण से ग़ज़ल फारसी से उर्दु में आई जो प्रेम भाव को व्यक्त करनेका स्थायी काव्य बन गयी। विभिन्न विद्वानों की मान्यताओं को परिलक्षित कर इस बात को स्वीकारना होगा कि ग़ज़ल की उत्पत्ति ईरान में हुयी, लेकिन ग़ज़ल स्वतंत्र रूप से फारसी काव्य की एक विधा है। अरब में कसीदे की तशबीब के रूप में ग़ज़ले अस्तित्व में थी। इस तशबीब को ग़ज़ल से अलग करने का काम शायद ईरान में हुआ होगा, लेकिन यह कहा जा सकता हैं कि ईरान की भूमि पर आने के बाद ही फारसी कवियों ने ग़ज़ल का स्वतंत्र रूप गढ़ा होगा। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता हैं कि ग़ज़ल की उत्पत्ति के बारे में कोई भी मान्यता रही हो लेकिन यह कहना गलत न होगा कि ग़ज़ल एक शुद्ध भावात्मक व संप्रेषणात्मक अभिव्यक्ति है। प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम जितना अच्छा ग़ज़ल हो सकती हैं
उतनी अन्य कोई विधा नहीं हो सकती।

भारत में ग़ज़ल गायिकी का विकास –

ग़ज़ल ईरान से विकास यात्रा तय कर भारत तक पहुँची "ग़ज़ल भारत की मिट्टी में उगाया हुआ वह ईरानी पौधा है, जिसका बीजारोपण मुस्लिम काल में हुआ और जिसकी जड़े यहाँ जमती गयी, शाखे फैलती गयी और यहाँ की आबो–हवा में ग़ज़ल के रंग–बिरंगे फूल खिलते गये।" भारत में ग़ज़ल शैली का प्रसार करनें में सूफी संतों का बड़ा योगदान रहा है, इन सूफी संतों ने विभिन्न धर्मों तथा पंथों के बीच ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया। भारत में ग़ज़ल तथा कव्वाली के प्रर्वतन का श्रेय 13 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को है। उन्होंने हिंदी व फारसी में कई ग़ज़ले लिखी। ग़ज़ल को प्रतिष्ठित करने में खिलजी और तुगलक साम्राज्य के राज कवि 'अमीर खुसरो' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे राजकवि होने के साथ–साथ अच्छे ग़ज़ल गायक भी थे। अमीर खुसरो को उर्दु, हिंदी **ग़ज़ल के बाबा आदम** या **आद्य ग़ज़लकार** का सम्मान प्राप्त हुआ है। खुसरो ने (ई. स. 1243 से 1324) संवत तक उर्दु छंदों व शब्दों का तथा हिंदी छंदों एवं शब्दों का प्रयोग किया है।

"घी के दियाना बारो
हमरे घर मुहम्मद आये
चंदा सा मुखडा, नूर सा चेहरा दमके
कुतुब तारा माथे पे चमके"

खुसरों रचित कव्वालियों में खुसरों निजाम के **बलि–बलि जइहौं** जैसे हिंदी शब्द मिलते है, खुसरो स्वंय फारसी के कवि थे लेकिन उतना ही अधिकार ब्रजभाषा और भारतीय संगीत पर भी था। वे यहीं की मिट्टी में पैदा हुये थे। उनका जन्म (उत्तर प्रदेश) के ऐटा जिले के पटियाला ग्राम में हुआ था इसलिए हिन्दी का तो ज्ञान होना स्वाभाविक था। "सईद नफीज़" द्वारा संपादित 'दीवाने–ए–कामिल' अमीर–खुसरो में देहलवी की फारसी ग़ज़लों की संख्या 1726 बतलाई गयी है। खुसरो की भाषा 'देहलवी' थी। कवि ने अपना परिचय देते हुये लिखा हैं कि वह तुर्की हिन्दुस्तान है, हिंदवी उसकी भाषा है। खुसरों अरबी–फारसी, तुर्की और हिंदी के बहुज्ञाता कवि थे उनकी पहेलियाँ, मुर्कीया,दोहे और ग़ज़ले प्रसिद्ध है। "प्रोफेसर सिराजुद्दीन आजर के संग्रह में सुरक्षित 13वीं हिजरी के प्रारंभ में लिखी गयी ग़ज़ल को 'हिंदी की प्रथम' ग़ज़ल होने का गौरव प्राप्त हुआ है इस ग़ज़ल के शोधकर्ता महमूद शीरानी है।" भारतीय इतिहास का दिल्ली सल्तनत काल इसका प्रवेश काल माना जाता है। मुगल काल संगीत व

ललित कलाओं का अगस्टन युग माना गया है। मुगल काल में ग़ज़ल को विकसित होने का पूर्ण अवसर मिला। बाबर, हुमाँयू, अकबर, शाहजँहा आदि मुगल सम्राट संगीत प्रेमी थे। अकबर के दरबार में सैयद खाँ, नोहार तथा दौलत आफजू माने हुये ग़ज़ल गायक थे। इसी प्रकार शाहजहाँ के समय ग़ज़ल गायकों में रोजा और अकबर प्रमुख थे। औरंगजेब के

समय संगीत के विकास की गति एकदम धीमी हो गयी। गायक–वादक दिल्ली से चलकर लखनऊ, रामपुर, हैदराबाद आदि प्रादेशिक शासकों के आश्रय में चले गए। इन शासकों के राज दरबारों का आलम विलासपूर्ण था। दादरा, ठुमरी जहाँ गाए जा रहे थे वहीं ग़ज़ल ने भी प्रवेश किया। नृत्य के भाव प्रदर्शन के साथ ग़ज़ल गान पसंद किया जाने लगा। दिल्ली और लखनऊ

ग़ज़ल गायिकी के प्रमुख केन्द्र बन गये। वाजिद अली शाह अवध के नवाब के समय दो महिला गायिकायें प्रसिद्ध थी घूमन और हसीना। वाजिद अली शाह के वंशज प्यारे साहब भी अच्छे ग़ज़ल गायक थे। 18वीं सदी के प्रारंभ में दिल्ली उर्दु साहित्य का केन्द्र हो गया था। अंतिम मुगल बहादुर शाह जफ़र और उनके आश्रित गालिब और जौक ग़ज़ल के मशहूर शायर थे। आगे चलकर 19वीं सदी के मध्य में अवध के नवाब वाजिद अली शाह की रंगीन रूचियों से, ठुमरी व ग़ज़ल को बढ़ावा मिला। धीरे–धीरे घराने के गायक भी ग़ज़ले गाने लगे जैसे– उस्ताद फैयाज खाँ भी ग़ज़ल गाते थे। पटियाला घराने के स्वर्गीय उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ ने भी कई ग़ज़लें गाई हैं, धीरे–धीरे भारत में ग़ज़ल का विकास फिल्मी जगत में भी होने लगा। राजा मेहदी अली खाँ, साहिर लुधियानवी मशहुर शायर थे। तलत महमूद, के. एल. सहगल, नूरजहाँ, लता मंगेशकर, ने अपने भावपूर्ण गायन से इस शैली को लोकप्रिय बनाया। बाद में कुछ स्वतंत्र गायक हुये जिन्होंने ग़ज़ल गायिकी का प्रचार–प्रसार कर प्रसिद्धी दिलायी जैसे– मेहदी हसन, जगजीत सिंह, बेगम अख्तर, गुलाम अली, पंकज उदास, हरिहरन, तलत अज़ीज जिन्होंने ग़ज़ल गायिकी को अपना पेशा बनाकर श्रोताओं तक पहुँचाया।

स्वतंत्रता से पूर्व ग़ज़ल गायिकी का स्वरूप –

कला एक सामाजिक क्रिया है, और समाज से उसका अलग कोई अस्तित्व नहीं है। यह तो समाज की मानसिकता से निर्धारित होती है, और मानसिकता समाज की भौतिक स्थिति से तय होती है, कला समाज के अंदरूनी आर्थिक संबंधों और उससे पैदा हुए कई वर्गों के आपसी रिश्तों का नतीजा होता है, समाज का आर्थिक ढाँचा हमेशा एकसा नहीं रहता। अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए कलाकार लगातार संघर्ष करता रहता है, और अपनी कला में प्रगति लाने की कोशिश करता है। इसी प्रगतिशीलता के कारण कला के विकास में परिवर्तन होता जाता है। यहीं बात ग़ज़ल के विकास के पक्ष में भारत में स्वतंत्रता पूर्व व स्वतंत्रता के बाद के स्वरूप, गायिकी की रीति, प्रचार–प्रसार के संबंध में भी लागू होती है। स्वतंत्रतापूर्व गज़ल गायिकी के स्वरूप में भी काल, परिस्थिति, जनरूचि के अनुसार कुछ परिवर्तन आए जिसका विस्तृत अध्ययन निम्न प्रकार – स्वतंत्रता से पूर्व ग़ज़लें केवल मुशायरों में ही पढ़ी जाती थी और मुशायरे ज्यादातर दरबारों में हुआ करते थे। जहाँ आम जनता एक तरह से नहीं हुआ करती थी। इसके अतिरिक्त पहले जो शायर हुआ करते थे, वे ही अपनी ही लिखी ग़ज़ल पढ़ते थे। आज–जैसा माहौल नहीं था कि दूसरों की लिखी ग़ज़ल कोई और भी गा रहे हैं। ज्यादा से ज्यादा शायरों की ग़ज़लें कोठों पर सुनी जा सकती थी। क्योंकि वे ख्याति प्राप्त शायर हुआ करते थे, जैसे गालिब, सौदा, मोमिन, ज़फर, अनीस या दबीर इत्यादि। ग़ज़लों में प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक रहा करती थी, लेकिन वे ऊँचे स्तर की हुआ करती थी, उनमें छिछलापन नहीं था, कुछ वज़न था और जीवन का तथ्य भी हुआ करता था। स्वतंत्रता पूर्व की गायकी भावप्रधान होते हुए भी परम्परागत थी। सूफी संतों के आश्रमों से निकली ग़ज़ल गायकी, जिसकी परवरिश पवित्र आध्यात्मिकता के बीच हुई थी, धीरे–धीरे राज दरबारों में आ गई और वातावरण के मिजाज़ में भी अंतर आया, जो ग़ज़लें कभी ईश्वर की महिमा में गाई जाती थी, वही बादशाह, राजा, महाराजाओं की महिमा में उनको प्रसन्न करने के लिए गायी जाने लगी। धीरे–धीरे ग़ज़ल का रंग बदलता गया, कही–कही तो यह अश्लीलता की सीमाओं को भी पार करने लगी। ग़ज़ल की गायकी अति शुद्र प्रकृति की होने के कारण गायक लोग इसे गाने में हिचकते थे। शायद यही सोचकर कि कहीं उनकी प्रतिष्ठा पर आँच न आए। कई तथ्यों से तो यह भी पता चला हैं कि अधिकांश गायिकाएँ तवायफें थी। जो कोठों पर रहकर लोगों का संगीत से मनोरंजन करती थी। अतः उन्होंने उसी प्रकार का गायन सीखा होगा, जो जनसाधारण में अधिक लोकप्रिय रहा होगा, इन्हीं ग़ज़लों को गाकर तवायफें अपनेउस्तादों की खिदमत करती थी और अपना जीवन निर्वाह करती थी। यही कारण है कि इस काल में ग़ज़ल गायन स्त्री कंठ से सुनने को अधिक मिलता है।

निम्नलिखित गायिकाएँ इस काल में हुई।
जैसे– (1) जद्दन बाई (2) मुमताज बेगम (3) मिस सत्यवती (4) जोहरा बाई (5) आगरे वाली
(6) बेनजीर बाई लखनऊ वाली (7) मिस उषा रानी (8) मल्लिका पुखराज
स्वतंत्रता से पूर्व काल की ग़ज़ल गायकी पर बहुत कुछ ठुमरी, दादरा, टप्पा और कव्वाली शैलियों का प्रभाव रहा। इस काल में ग़ज़ल की बंदिश अंधिकाशतः किसी एक गायन शैली से प्रभावित तथा रागों पर आधारित होती थी। मुख्यतः कहरवा, दादरा, रूपक और कभी–कभी दीपचंदी तालों का भी प्रयोग किया जाता था। ग़ज़ल अधिकांशतः स्त्री कंठ से मुखरित होती थी। यदा–कदा तफरीह के बतौर पर पुरूष ग़ज़ल गा लिया करते थे। ग़ज़ल की बंदिशें लगभग एक सुनिश्चित ढांचे में ढली होती थी, और उनकी बंदिशों के अन्तर्गत आलाप–तानों का प्रयोग भी करीब–करीब एक ही पैटर्न को लिये होता था। अधिकांशतः ताल वाद्य का प्रयोग स्थायी की प्रस्तुति के साथ किया जाकर, अंतरे के साथ कम ही होता था। संगत वाद्यों में हारमोनियम, सारंगी, तबले का ही प्रयोग अधिक प्रचलित था। अंतराल संगीत लगभग नहीं के बराबर होता था। ग़ज़ल के शब्दों के शुद्ध और सहीं उच्चारण के प्रति गायक–गायिकाएँ अधिक सावधान नहीं रहते थे। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व ग़ज़ल गायिकी केवल राजदरबारों में ही रही, उसके बाद कोठों पर तवायफों के द्वारा आजिविका कमाने के उद्देश्य से गायी जाने लगी।

स्वत्रंत्तोतर काल में ग़ज़ल गायिकी का स्वरूप –

हिन्दुस्तानी संगीत की हर विधा में स्वतंत्रता के पश्चात् काफी कुछ परिवर्तन हुए है, जिसका एक मुख्य कारण राजदरबारों का समाप्त हो जाना और वहाँ लगने वाली संगीत की महफिलों का लगभग बंद हो जाना था। दूसरा स्वतंत्रता के बाद तवायफों के कोठों पर लगनेवाली संगीत की महफिलों का समाप्त हो जाना। स्वतंत्रता के बाद गायी ग़ज़लों में हुस्नों, इश्क और शराब के साथ–साथ ऐसी भी ग़ज़ले गायी जाने लगी, जिनमें आम आदमी की दैनिक जरूरतों, परेशानियों, हँसी–खुशी, आपसी रिश्तों और जीवन के दर्शन के बारे में भी भरपूर जिक्र किया गया है। आम बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग बहुतायत से हुआ। ग़ज़ल की भाषा क्लिष्ट नहीं रही। इस समय जनमानस भी खुले तौर से संगीत के संपर्क में आने लगा था और जनमानस की समग्र सामाजिक व सांगितिक धारणा का परोक्ष प्रभाव हिन्दुस्तानी संगीत की सभी विधाओं पर पड़ने लगा था।
सांगितिक बंदिशों में शुद्ध रागों के प्रयोग के साथ–साथ, चयनित रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग भी बड़ी खूबी से किया जाने लगा। ग़ज़ल की सांगितिक बंदिशें पहले ठुमरी, दादरा, टप्पे तथा कव्वाली से प्रभावित रहती थी, परन्तु इस नये दौर में रागों के शुद्ध स्वरूप को ध्यान में रखते हुए भी ऐसी बंदिशें बनायी जाने लगी जो दादरा, ठुमरी, ख्याल, टप्पा, कव्वाली की तरह नहीं होकर सीधी–सीधी किंतु सांगितिक तत्वों से युक्त बंदिश होती थी। ग़ज़ल की बंदिश करते समय अथवा धुन बनाते समय गायक शब्दों को उनसे उत्पन्न भावों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त राग का चयन करता है, जिससे उसकी भावाभिव्यक्ति उचित रूप में हो। स्वतंत्रता के बाद निर्मित ग़ज़लें अधिकतर यमन, तोड़ी, भैरवी, बागेश्री, दरबारी, भीमपलासी, पहाड़ी आदि रागों में हुई। ताले कहरवा, दादरा प्रयुक्त होती है। मूल ताल के परिवर्तित रूप ज्यादातर इस काल की ग़ज़लों के साथ बजाये जाने लगे। इस काल की ग़ज़लों में शब्दों के उच्चारण पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया। संगत वाद्यों में विभिन्न प्रकार के देशी तथा विदेशी वाद्य यंत्रों का प्रयोग बहुतायत से होने लगा। शेर व मतले के बीच अंतराल संगीत बजाया जाने लगा, जिससे गायक व गायिका सांस ले सके। स्वतंत्रता के बाद ग़ज़ल गायन शैली बहुत विकसित हुयी। स्वतंत्रता के बाद की ग़जलों में एक नया प्रयोग यह भी हुआ, कि सांगितिक प्रस्तुति स्त्री और पुरूष दोनों की आवाजों में की जाने लगी अर्थात् ग़ज़ल भी फिल्मी गीतों की तरह दो आवाजों में पेश की जाने लगी।

"बेगम अख़्तर घराना"

शीर्षक अध्याय में ग़ज़ल की मल्लिका के नाम से जानी जाने वाली शख्सियत के जीवन से जुड़े कई तथ्यों को संकलित कर शोध में सम्मिलित करने का प्रयास किया जैसे– जीवन परिचय, संगीत सफर, पारिवारिक जीवन आदि तदोपरान्त बेगम अख़्तर जी की गायिकी की विशेषताओं को उजागर कर लिखा जो उन्हें सबसे अलग बनाती है। उनकी ग़ज़ल गायिकी की विभिन्नता के आधार पर 'बेगम अख़्तर घराना' बनाया जिसमें बेगम अख्तर घराने की गायिकी की विशेषताएँ तथा कुछ प्रमुख शिष्यों के जीवन परिचय को सम्मिलित कर 'बेगम अख़्तर घराने' को श्रृंखलाबद्ध रूप में लिपिबद्ध किया।

"मेंहदी हसन घराना"

शीर्षक अध्याय में ग़ज़ल के शहनशाह कहलाने वाले मेहदी हसन, जिन्होंने ग़ज़ल गायकी को देश–विदेश में पहचान दिलायी उनके व्यक्तित्व कृतित्व को कुछ सहायक बिंदुओं की सहायता से लिखने का प्रयास किया है। उनके जीवन से जुड़े हर पहलु संघर्ष से हर्ष तक के पलों को शोध कार्य के माध्यम से विवेचित एवं विश्लेषित करने का प्रयास किया। जैसे जन्म संबंधी जानकारी, संगीत शिक्षा संबंधी जानकारी, पारिवारिक जीवन संबंधी आदि को समावेशित करते हुए उनकी गायकी की विशेषतओं को लिखा तथा वर्तमान में कौन–से शिष्य उनकी गायकी का अनुसरण कर उनकी गायकी को प्रसारित कर रहे हैं, उन सभी को सम्मिलित करते हुए 'मेंहदी हसन घराने' को श्रृंखलाबद्ध रूप में लिपिबद्ध कर सकी।

"गुलाम अली घराना"

शीर्षक अध्याय में मैंने ग़ज़ल की एक ऐसी हस्ती के जीवन से जुड़े तथ्यों को संकलित कर शोधकार्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जिसने ग़ज़ल के परम्परागत रूप में परिवर्तन करके समाज को ग़ज़ल का नया रूप दिया। वे ग़ज़ल गायिकी के नये दौर हैं तथा उनके जीवन से जुड़ी सभी जानकारियों को संकलित कर उनकी गायिकी की प्रमुख विशेषतओं पर एक खास अध्ययन कर समाहित किया तथा प्रमुख शिष्यों का जिक्र कर के गुलाम अली घराने का श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत किया।

"जगजीत सिंह घराना"

शीर्षक अध्याय में ग़ज़ल सम्राट "जगजीत सिंह" गज़ ़ल गायकी का वह नायाब सितारा है जिसकी चमक संपूर्ण विश्व में व्याप्त थी। उसी तरह उनके द्वारा गायी ग़ज़लें भी संपूर्ण विश्व में चांदनी के समान फैली हुई है। जो कार्य उन्होंने ग़ज़ल के क्षेत्र में किया उन्हें संकलित कर लिपिबद्ध करना बेहद ही मुश्किल काम है। इतनी सी उम्र में उन्होंने वह कार्य कर दिखाया जिसे न कोई कर सका है और न ही आगे कर सकेगा। उनका कार्य समुद्र की तरह अथाह कार्य है। सिर्फ मेरी कोशिश रही कि मैं अपने कार्य के द्वारा उस शख्शियत के जीवन से जुड़े कुछ पहुलओं को बता संकू। इस अध्याय में मैंने उनके आम आदमी से ग़ज़ल सम्राट बनने तक के सफर में किन–किन संर्घषों से गुजरना पड़ा आदि का जिक्र किया, साथ ही उनकी गायिकी जो, आम साधारण जन की गायिकी कहलाने के पीछे क्या कारण रहे, उनकी गायिकी की विशेषताओं को संकलित कर तथा प्रमुख शिष्य जो उनके बेहद करीब थे उनके परिचय को लिखा तथा 'जगजीत सिंह घराने' को श्रृंखलाबद्ध रूप दे सकने में समर्थ रही।

उपसंहार

शीर्षक अध्याय में मैंनें संपूर्ण शोध कार्य का सांराश प्रस्तुत करते हुए, उन सभी तथ्यों को सम्मिलित करने का प्रयास किया, जिन्हें मैंने अपने शोधकार्य के अन्तर्गत निष्कर्ष स्वरूप पाया, ग़ज़ल गायिकी के चार स्तम्भ बेगम अख़्तर, मेहदी हसन, गुलाम अली, जगजीत सिंह जो अपने–अपने समय के बादशाह हैं जिनकी गायिकी संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। उनके जीवन से जुड़े कुछ आवश्यक तथ्यों को सम्मिलित कर उनकी ग़ज़ल गायन शैली की भिन्नता के आधार पर 'घरानों' का निर्माण कर इस शोध कार्य को ईश्वर की कृपा से पूर्ण करने की कोशिश की है। साथ ही शोध प्रंबध में प्रयुक्त साम्रगी के स्त्रोत, पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाओं का विवरण प्रत्येक अध्याय के अंत में किया गया है। साथ ही विस्तृत जानकारी सहायक सामग्री के संबंध में शोध के अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची में समाहित है।

साक्षात्कार – शोधकार्य की पुष्टि व उत्कृष्ठता हेतु कुछ गुणीजनों से जो मेरे शोध शीर्षक से संबंधित थे, उनसे फोन व व्यक्तिगत रूप से मिलकर साक्षात्कार के जरिये प्राप्त जानकारियाँ व उनकी व्यक्तिगत राय को अपने शोध कार्य में सम्मिलित किया।

गजलों का लिपिबद्ध रूप – शोध वर्णित ग़ज़ल गायकों के द्वारा एक ही शायर की ग़ज़ल को भिन्न–भिन्न तरीके से प्रस्तुत करने के ढ़ंग को लिपिबद्ध कर उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. डॉ. श.सी. पंराजपे, ग़ज़ल अंक पृष्ठ 9
2. डॉ. प्रेम भण्डारी हिन्दुस्तानी संगीत में ग़ज़ल गायकी, पृष्ठ 1
3. रूद्र कशिकेश, गजलिका, पृष्ठ 3

4. अब्बासी नूरनवी ग़ज़ल एक सफर पृष्ठछ 68
5. फिराक गोरखपूरी कारूप, पृष्ठ 1
6. उमेश जोशी, उद्धत भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 269
7. रोहिताश्व अस्थाना, हिन्दी ग़ज़ल उद्धव व विकास पृष्ठ 9

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 35-40
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Impact of social media on society: Sociological analysis

Dr. Punditrao C Dharenavar
Associate Professor
Post Graduate Government College Sector-46, Chandigarh- 9988351695

Abstract: The impact of social media is increasing each and every day due to use of technology for each and every platform. Social media has both positive and negative impacts on society. Social media is helpful for those who use it for the betterment of society and it has a bad impact if it is used for a bad purpose. Social media has more impact in India than any other country because of high population and unemployment. Although social media is bringing enhanced communication, connectivity, business opportunities, entertainment and creativity, social media is bringing the most dangerous social crisis such as social isolation, reduced Face-to- face interaction, Vulgarity, broken relationship, fake news and mental health.

It is the right time for modern consumer culture to make rules and regulations for curbing crimes due to social media because the modern consumer world has witnessed several bad incidents due to social media. Activities such as Dark comedy, Vulgar songs and nudity have instigated youth to kill social media influencers in Panjab and Haryana.

To keep society safe from social media, there is an urgent need to protect our children who are object to this trend. It is a natural phenomena that children are most attracted to social media, therefore, not only parents but the law of the land must come into action otherwise social crisis is yet to arrive.

Key Words: Social media, Impact, Society, Digital India, Technology, Social relationship, enhanced communication, connectivity, business opportunities, entertainment, creativity, social crisis, social isolation, reduced Face-to face interaction, Vulgarity, broken relationship, mental health.

Social media and society:

There is no doubt that social media has revolutionized communication by allowing instant, global interaction. It enables individuals to maintain relationships, form new connections, and engage with communities regardless of geographical boundaries. Platforms like Facebook, Twitter, and WhatsApp facilitate both personal and professional communication, fostering a sense of global interconnectedness

Social media has become part of social life. It has occupied the well-deserved space in everyday life. People believe in social media more than their parents and friends. The time people spend on social media is greater than the time they spend with their parents; hence social media is breaking the relationship between individuals and society.

Social media has positive impacts including enhanced communication and connectivity, rapid dissemination of information, increased awareness of social issues, educational opportunities, and the growth of businesses through marketing and customer engagement. Social media also empowers individuals to voice their opinions and participate in social and political movements.

Social media can negatively impact mental health by contributing to anxiety, depression, and feelings of loneliness. The pressure to present a perfect life and the constant comparison with others can lead to low self-esteem and a sense of inadequacy. However, it can also provide support networks and communities for those dealing with mental health issues.

Dark comedy on social media:

In Society, every action has manifest and latent functions. Manifest functions are those which are visible whereas latent functions are not visible but have an unbearable impact on society. India's Got Latent comedy show has more latent functions than manifest functions. Some might argue India's Got Talent is just a comedy show and it is just an entertainment show but this show has a latent impact on youth. This show has crossed all the limits and has been under fire owing to the controversial remarks made by the guests on the latest episode. The remarks not only insulted the dignity of women but also highlighted the parental relationship in a vulgar way.

The participants who take part in such shows claim themselves as rebel kids. In such shows, these rebel kids use bad language. The vulgar language has such a deep impact on youth that they tend to believe that it is the language of Gen X. This assumption further leads to false consciousness of social norms of values. This all happens in a latent way which is a very slow process.

These kinds of shows spread cultural pollution which can not be cleaned for years to come. The polluted mind is created by rebel kids on digital platforms because there is no machinery to control them. There is an urgent need to bring policy or regulations to curb not only such vulgar contents on digital platforms but alcohol and gun culture promoting songs because these songs affect the children of impressionable age.

In the name of freedom of expression, these rebellious kids may be enjoying it by creating unwanted content on digital platforms but there are limitations to freedom of speech. There must be self-censorship by the content creators because there is larger social responsibility. If the responsibility is not carried on properly then there will be collapse of social structure. These rebel kids will see their place in jail one day but the damage they create in society is latent which has to be cleaned by social reformers, teachers and religious preachers.

Although India Got talent is stopped by the authorities, the comedians are performing in different cities. The target auditions of these comedians are again youngsters, therefore there is an urgent need to keep a track on these comedians so that they will not again make such kind of comedy shows which not only hurt common people but also dishonor the dignity of women.

Vulgarity on social media:

Vulgarity on social media encompasses a range of inappropriate content, from explicit material to offensive or discriminatory language. It can include suggestive content, mockery, indecent dressing, aggressive language, and behavior that challenge societal values. This issue has become increasingly prevalent, with some attributing its rise to factors like the spread of misinformation and the promotion of harmful products by celebrities.

Vulgarity has gone to such an extent that it has crossed all the limitations on social media. It has increasingly become dangerous because it is wide open and available on all the platforms which are easily available to all the sections of society including women and children.

In the month of June, 2025, the murder took place in Punjab due to a vulgar content issue. The lady called Kanchan Kumari Urf Kamal Kaur was killed by Nihang Sikh youth led by Amritpal Singh Meharo and kept the dead body in Parking area in Amritsar. The reason for the murder was purely the vulgar content she used to upload on social media. Amrital Singh Meharo claimed that he warned her several times for not uploading vulgar content in Punjabi language. He also helped her with money when she said that she was uploading such vulgar content due to her need for the money but even after taking money from Amritpal Singh Meharo, Kamal Kaur kept making such vulgar videos and uploading on social media which made Nihang Sikhs including Amritpal Simngh Meharo , finally took steps to eliminate her from this world. Even after her killing, Amritpal Singh Meharo issued a new threat to another media influencer called, Deepika Lutra from Amritsar. In a Video clip uploaded to social media , Mehron warned Luthra, stating , " It must not be felt that parking lots are only in Bathinda, but they are in every city, and also it must not be felt that a dead body is recovered everywhere."

Mehror claimed that his group has no issues with individuals but will not tolerate " Vulgar content " on social media , asserting it sends wrong signals and spoils the upbringing of youth. He added that nearly two months ago, Luthra's associate apologized and assumed they would stop posting " double- meaning content" but she continued. Mehorn urged all involved in " obscene content " in Punjab to take note. Later, Deepika Luthra approached DC, Sri Amritsar for security and later Amritsar Police gave her security.

The killing of Kamal Kaur reminds of a few killings in the past. Poet Avtar Singh Pash, known for his radical humanism, was gunned down in 1988. Actor Varinder Deol and singer Amar Singh Chamkila, whose lyrics celebrated life in all its rough-edged reality, were murdered by extremists.

The social Media has been spoiling our children because they have been exposed to this technological development directly. Most of the children forget their homework and keep watching reels which affect development of children's mental health. Therefore, there is urgent need to curb use of social media and punish those social media influencers who make vulgar content and upload on social media.

Sociologically, social media is breaking relationships and social contact. Social media is creating social isolation. Social media has reduced Face-to- face interaction. Social media has spread Vulgarity and developed broken relationships. Social media has also brought a new trend of fake news. There are salient social issues such as mental health due to social media. This issue is serious in modern consumer culture which is being neglected. University level high level research work should be carried on.

Social media, while offering connectivity and communication benefits, presents several modern social issues. These include misinformation, cyber bullying, addiction, privacy concerns and the spread of harmful content like pornography and hate speech. It also impacts mental health, contributing to anxiety, depression, and body image issues. Even though it affects each and every one like environment pollution yet no global effort is made to curb the use of social media. Social media is pushing the lifestyle of people into a fake world in which false conception of happiness is being created. It is social media which is making people believe even unbelievable affairs of the world. Social media is being used to spread fake information through

the real image of Artificial intelligence. If the trend of social media is not controlled and curbed, people will start living in the false world and false happiness.

Drugs, Alcohol and Gun Culture promoting on social media:

The Civil Writ Petition was filed by Panditrao Dharenavar, assistant professor of Sociology in Panjab and Harayana High Court, seeking total ban on Vulgar, alcohol, drugs and gun culture promoting songs. The petitioner made the basis of his petition the incident in which one lady dancer was killed in Mauri Mandi, Bathinda, Punjab while dancing on alcohol promoting songs on marriage occasion in December 2016. The petitioner argued that such bad songs are prevalent everywhere including social media. These songs instigate youngsters to do anti social activities. After hearing the arrangements of the petitioner, the honorable Panjab and Haryana High Court gave final verdict. The Honorable Panjab and Haryana High Court under CWP-PIL No. 27011 of 2016 (O&M) Panditrao Dharenavar .. Petitioner Vs The Principal Secretary to Government, Punjab and others observed that " The glorification of violence has given rise to the culture of gangsters in the States of Punjab, Haryana and Union Territory, Chandigarh."

The Honorable Court further observed "The Court can also take judicial notice of the fact that glorification of the liquor, wine, drugs and violence in the songs in the States of Punjab, Haryana and Union Territory, Chandigarh, has increased in recent times. These songs affect children of impressionable age."

The Honorable also gave direction **" The Director General of Police in the States of Punjab, Haryana and Union Territory, Chandigarh, are directed to ensure that no songs are played glorifying the liquor, wine, drugs and violence in any song even in live shows."**

The Honorable Court put responsibility also " The District Magistrates/ Senior Superintendents of Police/ Superintendents of Police of each district shall be personally responsible to ensure due compliance of the directions issued hereinabove."

After this historical verdict, there was a tremendous change in behavior of Punjabi singers who did not dare to sing such bad songs during their live shows. Even some of these singers stopped singing such bad songs and uploading them on social media. However, there are some singers who are still singing bad songs and uploading them on social media. The petitioner has also filed contempt of Court. The Honorable Chief Minister of Punjab Sarardar Bhagwant Singh Mann who is himself singer and artist took out notice and asked singer to desist from singing bad songs and also desist from uploading any kind of photo weapon on social media.

If these kinds of songs which promote alcohol, vulgarity, drugs and gun culture persist on social media, they will have a bad impact on youth. These songs directly or indirectly change the thinking process of youngsters. Even the Honorable Court clearly mentioned that these songs affect the children of impressionable age. The lack of good censorship on such video songs is leading to social problems. Such songs also persist in films, OTT platforms. Web series, therefore there is an urgent need to have strict law or policy to curb this tendency, failing which this kind of content will occupy the social media space and our children will be spectators .

Social media such as Facebook, Instragram, and YouTube do not have strict policy to curb such kind of content on social media because of which anybody can upload easily on these social media platforms. It is because these social Medias are easily available to all; the chance of impact is very high.

According to Indian law, the following sections should be invoked against those who spread obscenity. Indian law has several sections and laws to prevent obscenity, which are

mainly included in the Indian Penal Code (IPC), the Information Technology Act (IT Act) and other related laws. The main sections are mentioned below:

A. Indian Penal Code (IPC):

1) Section 292: Sale, distribution, public display or publication of obscene material is an offence. This includes obscene books, pamphlets, pictures or other material.

2) Section 293: Sale or supply of obscene material to persons below the age of 21 is an offence.

3) Section 294: Singing, playing obscene songs, making obscene noises or engaging in obscene acts in public places is an offence.

B. Information Technology Act, 2000 (IT Act):

1) Section 67: Publication or dissemination of obscene material in electronic form is an offence. This includes obscene videos, images or writings.

2) Section 67A: Publication or dissemination of sexually explicit material in electronic form is an offence.

3) Section 67B: Publication or dissemination of obscene material involving children is a serious offence.

C. POCSO Act (Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012):

Strong provisions have been made to prevent obscene material involving children (Child pornography). Sections 14 and 15 make use, storage, or distribution of such material an offence.

D. Cinematograph Act, 1952:

a) Rules are enforced by the Censor Board (CBFC) to prevent obscene content in films:

b) Cable Television Networks (Regulation) Act, 1995:

c) Banned the broadcasting of obscene material on TV.

Obscene Publications Act, 1927:

d) Prohibits the publication and distribution of obscene literature or material.

E. There is provision for Punishment:

The punishment under these sections may include fine, imprisonment (3 to 7 years, or more), or both, especially under the IT Act and the POCSO Act, which have strict penalties.

In spite of all these legal provisions, a still vulgar contest is being uploaded and watched all over India. There is an urgent need to appoint nodal officers to look into each and every case all over India so that major change may be taken.

Conclusion: Sociologically, every action has both positive and negative impact. It is possible that all actions have bad impact faster than good impact due to social acceptance. The impact of social media on society is undeniable. It has revolutionized the way we communicate, share information, and connect with others. However, it is important to recognize the potential drawbacks such as privacy concerns, misinformation, vulgarity, alcohol, drugs, gun culture and the spread of fake news. Moving forward, it is crucial for individuals to use social media responsibly and critically evaluate the information they encounter. We can harness the power of social media for positive change and meaningful connections by promoting digital literacy and online safety.

Bibliography:

1) Paul Martin & Thomas Ericson : Social media : Usage and Impact. ISBN-13 : 978-9388612852, Publisher : Global Vision Publishing House; 2nd edition (1 January 2019)

2) Vinod S Koravi : Analysis of Various effects of Web series streaming online on the internet on Indian youth . International Jouranal for Research under Literal Access IJRULA Vol 2Issue 1, 2019
3) Audery Kirchner. Good and Bad Effects of Music on Children . We have kids, parenting
4) Belinda Hung . What kind of impact does our music really make on society? Aug.24, 2025
5) NIILM University site- https://www.niilmuniversity.ac.in/blog/119/social-media-and-society-impacts-and-implications

raju_herro@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 41-46
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಹಾಗೂ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ

-ಪ್ರೊ|| ಪಂಡಿತರಾವ ಚಂದ್ರಶೇಖರ ಧರೆನ್ನವರ
ಅಸೋಸಿಯೇಟ್ ಪ್ರೊಫೆಸರ್, ಸಮಾಜ ಶಾಸ್ತ್ರ, ಸರಕಾರಿ ಕಾಲೇಜು,
ಸೆಕ್ಟರ್ ನಂ.೪೬, ಚಂಡೀಗಢ (ಪಂಜಾಬ್) ಮೊ.: ೯೯೮೮೩ ೫೧೭೯೫

ABSTRACT ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ, ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿರುವದಕ್ಕೆ ಅನೇಕ ಉದಾಹರಣೆಗಳು ಸಿಗುತ್ತವೆ. ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಸಾಕಷ್ಟು ಪ್ರಮಾಣದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿದೆ. ಆದರೆ ನಿರೀಕ್ಷೆಗೂ ತಕ್ಕಂತೆ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿಲ್ಲ ಎಂದರೂ ತಪ್ಪೇನು ಆಗುವದಿಲ್ಲ.

ಕವಿ, ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರು ರಾಚಿಸಿದ ಕ್ರಾಂತಿಕಾರಿ ಹಾಡು, ಕಾದಂಬರಿ, ಕಥೆಗಳು ಸಾಮಾನ್ಯವಾಗಿ ಜನರಲ್ಲಿ ಜಾಗ್ರತಿ ತಂದು ತಮ್ಮ ಹಕ್ಕುಗಳ ಬಗ್ಗೆ ಹೋರಾಡುವ ಶಕ್ತಿ ನೀಡುತ್ತವೆ. ``ದಲಿತರು ಬಂದರು, ದಾರಿ ಬಿಡಿ' ' ಎಂಬ ಶಕ್ತಿಶಾಲಿ ಶಬ್ದಗಳು ದಲಿತ ಜನರಲ್ಲಿ ಜಾಗ್ರತಿ ಹುಟ್ಟಿಸಿರುವದಕ್ಕೆ ಯಾವುದೇ ಸಂದೇಹವಿಲ್ಲ.

ಹಿAದುಳಿದ ಜನರಿಗೆ ಮುಂದೆ ಬರಲು ಬರೆದ ಬರವಣಿಗೆಗಳು ಜನರ ಮನದ ಮೇಲೆ ಅಪಾರವಾದ ಪ್ರಭಾವ ಬೀರಿದ ಕಾರಣ, ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ರಾಜ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ಯಾವ ರೀತಿಯಾಗಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ಬಂದಿದೆ ಎಂದು ಈ ಶೋಧ ಪತ್ರದಲ್ಲಿ ಕಂಡುಹಿಡಿಯಲಾಗಿದೆ.

ಈ ಶೋಧ ಪತ್ರದಲ್ಲಿ ಪಂಜಾಬ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯಗಳ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯದ ತುಲನಾತ್ಮಕ ಅಧ್ಯಯನವೂ ಮೂಡಿ ಬಂದಿದೆ ಹಾಗೂ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆಯ ಬಗ್ಗೆ ಚರ್ಚಿಸಲಾಗಿದೆ.

KEY WORDS ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ, ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ, ಪಂಜಾಬ, ಕರ್ನಾಟಕ, ಸಿದ್ದಲಿಂಗಯ್ಯ, ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ, ಪಾಕ್, ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯ, ಪಾಷ, ಅಮೃತಾ ಪ್ರೀತಮ್, ಜ್ಞಾನಪೀಠ, ಚಂದ್ರಶೇಖರ ಕಂಬಾರ, ಯು. ಆರ್. ಅನಂತಮೂರ್ತಿ, ಕುವೆಂಪು, ದ. ರಾ. ಬೇಂದ್ರೆ, ಗಿರೀಶ ಕಾರ್ನಾಡ, ವಿ. ಕೃ. ಗೋಕಾಕ.

ಸಾಹಿತ್ಯ ಮತ್ತು ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ :

ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ತರುವದರಲ್ಲಿ ಸಾಹಿತ್ಯದ ಪ್ರಮುಖ ಪಾತ್ರ ಇದೆ ಎನ್ನುವದಕ್ಕೆ ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ ನಡೆದ ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯ ಉದಾಹರಣೆಯಾಗಿದೆ. ದಲಿತ ಚೇತನೆಯನ್ನು

ಪ್ರಬಲಗೊಳಿಸಲು ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ ಅವರು ಬರೆದ ಕವಿತೆಗಳು ಶೇಕಡಾ ೩೩% ದಷ್ಟು ದಲಿತರಿರುವ ಪಂಜಾಬಿನಲ್ಲಿ ತಂದಿರುವ ಕ್ರಾಂತಿ ಅಧ್ಯಯನದ ವಿಷಯವಾಗಿದೆ. ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ತರುವದಕ್ಕೆ ಅನೇಕ ಸಾಧನೆಗಳು ಮತ್ತು ರಸ್ತೆಗಳು ಇವೆ. ಆದರೆ ಸಾಹಿತ್ಯದ ಮುಖಾಂತರ ಬರುವ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ವಿಶಾಲ ಪ್ರಮಾಣದಲ್ಲಿ ಮತ್ತು ಶಾಶ್ವತ ರೂಪದಲ್ಲಿ ಇರುವ ಸಾಧ್ಯತೆ ಇರುತ್ತದೆ.

ಸಮಾಜದ ಪ್ರಮುಖ ಅಂಶಗಳಾದ ಕುಟುಂಬ, ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಂಬAಧ, ಮದುವೆ, ಜಾತಿಯತೆ, ನಶೆ ಮತ್ತು ಹಿಂಸೆಗಳ ಬಗ್ಗೆ ಜಾಗ್ರುತಿ ಹುಟ್ಟಿಸುವ ಸಾಹಿತ್ಯ ಸಮಾಜವನ್ನು ಸದೃಢಗೊಳಿಸುತ್ತದೆ. ಇನ್ನುಳಿದ ಸಮಾಜದ ಪ್ರಮುಖ ಅಂಶಗಳಾದ ಸ್ತ್ರೀÃ ಹಕ್ಕು, ಮಕ್ಕಳ ಹಕ್ಕು, ವೃದ್ಧರ ಹಕ್ಕು ಹಾಗೂ ಅಲ್ಪಸಂಖ್ಯಾತರ ಹಕ್ಕುಗಳ ಬಗ್ಗೆ ಸಾಹಿತ್ಯವೇ ಜನರಲ್ಲಿ ಜಾಗ್ರುತಿ ಹುಟ್ಟಿಸುತ್ತದೆ.

ಕೆಲವೊಂದು ಸಲ ಸರಕಾರ ತಂದಿರುವ ಯೋಜನೆಗಳು ಜನರಲ್ಲಿ ತಾರತಮ್ಯ ಹುಟ್ಟಿಸುತ್ತವೆ. ಕೆಲವೊಂದು ಯೋಜನೆಗಳು ಕೆಲವೊಂದು ಪಂಗಡಗಳಿಗೆ ಲಾಭದಾಯಕವಾದರೆ, ಕೆಲವು ಪಂಗಡಗಳು ವಂಚಿತರಾಗುವ ಸಂದರ್ಭ ಇರುತ್ತದೆ. ಇಂತಹ ಅಸಮಾನತೆಯನ್ನು ಶಬ್ದದ ಮುಖಾಂತರ ವ್ಯಕ್ತಪಡಿಸಿ ಕವಿತೆ, ಕಥೆ ಹಾಗೂ ಕಾದಂಬರಿ ಬರೆಯುವ ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆ ತರುತ್ತಾರೆ. ಸಮಾಜ ಮತ್ತು ಸಾಹಿತ್ಯದ ನಡುವೆ ನಿಕಟ ಸಂಬAಧ ಇದ್ದ ಕಾರಣವೇ ಕವಿಗಳ ಬಗ್ಗೆ ``ರವಿ ಕಾಣದ್ದನ್ನು ಕವಿ ಕಾಣುವನು' ' ಎನ್ನುತ್ತಾರೆ. ಸಮಾಜ ಮತ್ತು ಸಾಹಿತ್ಯದ ನಡುವೆ ನಿಕಟ ಸಂಬAಧ ಇರುವ ಕಾರಣದಿಂದಲೇ ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರನ್ನು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಗೌರವದ ದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ನೋಡಲಾಗುತ್ತದೆ.

ಸಾಹಿತ್ಯ ಸಮಾಜಕ್ಕೆ ಪೌಷ್ಟಿಕ ಆಹಾರ ಇದ್ದ ಹಾಗೆ. ಅದಕ್ಕಾಗಿಯೇ ಸುಂದರವಾಗಿ ಬರೆದು, ಸಮಾಜ ಪರಿವರ್ತನೆ ತರುವ ಬರಹಗಾರರ ಬಗ್ಗೆ ಸರ್ವೋನ್ನತ ಪ್ರಶಸ್ತಿಯಾದ `ಜ್ಞಾನಪೀಠ' ಪ್ರಶಸ್ತಿ ನೀಡಿ ಗೌರವಿಸಲಾಗುತ್ತದೆ. ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಗೆ ಒಟ್ಟು ಎಂಟು ಜ್ಞಾನಪೀಠ ಪುರಸ್ಕಾರ ಸಿಗುವ ಕಾರಣಕ್ಕಾಗಿಯೇ ಕರ್ನಾಟಕ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರ ದರ್ಜೆ ಅತ್ಯುನ್ನತವಾಗಿದೆ. ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಭಾಷೆ ಉಳಿಸುವ ಕೆಲಸವೂ ಸಹಿತ ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರೇ ಮಾಡುತ್ತಾರೆ. ಭಾಷೆ ಅಶುದ್ಧವಾಗದೇ ಇರುವ ಹಾಗೆ ನೋಡಿಕೊಂಡು ಸುಂದರವಾಗಿ ಬರೆಯುವ ಬರಹಗಾರರು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಅಶ್ಲೀಲ ಭಾಷೆಗೆ ಆಸ್ಪದವೇ ನೀಡುವದಿಲ್ಲ. ಹೀಗಾಗಿ ಸಮಾಜ ಮತ್ತು ಸಾಹಿತ್ಯ ಒಂದೇ ತಾಯಿಯ ಮಕ್ಕಳಂತೆ ಕೆಲಸ ಮಾಡುತ್ತವೆ.

ಪಂಜಾಬಿ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬಿ ಸಮಾಜ :

ಪಂಜಾಬ ಒಂದು ಪವಿತ್ರ ಸ್ಥಾನವಾಗಿದೆ. ಏಕೆಂದರೆ ೧೨ನೇ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ಇದೇ ಭೂಮಿಯಲ್ಲಿ ಸೂಫಿ ವಾದದ ಸಿದ್ಧಾಂತ ನಡೆದು ಭುಲ್ಲೆ ಷಾ ಅಂತಹ ಮಹಾನ್ ದಾರ್ಶನಿಕ ಭಕ್ತನನ್ನು ಪಡೆದಿತ್ತು. ಇದೇ ಭೂಮಿಯಲ್ಲಿ ೧೫ನೇ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ಶ್ರೀ ಗುರು ನಾನಕ ದೇವ ಜೀ ಅಂತಹ ದೇವರ ರೂಪವನ್ನೇ ಕಂಡಿತ್ತು. ತದನಂತರ ಬಂದ ಒಂಬತ್ತು ಗುರುಗಳೂ ಸಹಿತ ಒಂದೇ ದೇವರನ್ನು ಕೊಂಡಾಡಿದರು. ಹತ್ತನೆಯ ಗುರು ಶ್ರೀ ಗುರು ಗೋವಿಂದ ಸಿಂಗ್ ಅವರು ಖಾಲ್ಸಾ ಪಂಥ ಸ್ಥಾಪನೆ ಮಾಡಿ ನೂತನ ವಿಚಾರಧಾರೆಯನ್ನೇ ಸೃಷ್ಟಿಸಿದ್ದರು. ವಿಶೇಷತೆ ಏನೆಂದರೆ, ಇವರೆಲ್ಲರೂ ಗುರುವಾಣಿಯ ಉಚ್ಚಾರಣೆ ಮಾಡಿದ್ದು, ಆ ಗುರುವಾಣಿಯ ಸಂಗ್ರಹವೇ ತದನಂತರ ಶ್ರೀ ಗುರು ಗ್ರಂಥ ಸಾಹೇಬದ ರೂಪಧಾರಣೆ ಮಾಡಿ ಸರ್ವ ಸತ್ಯ, ಸದಾಕಾಲ ಇರುವ ಸದಾಶಿವನಾಗಿ ಪಂಜಾಬದ ಪ್ರತಿ ಹಳ್ಳಿ ಪಟ್ಟಣಗಳಲ್ಲಿ ಪೂಜಿಸಲ್ಪಡುತ್ತಿದೆ. ಧಾರ್ಮಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಪಂಜಾಬದ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ದೊಡ್ಡ ಪ್ರಮಾಣದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿದೆ.

ಆದರೆ ಪಂಜಾಬಿನ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ತಂದ ಪರಿವರ್ತನೆ ಬೇರೆ ರೂಪದಲ್ಲಿಯೇ ಇದೆ. ಏಕೆಂದರೆ ಆಧುನಿಕ ಕಾಲದ ಪಂಜಾಬಿನ ಬರಹಗಾರರು ಧರ್ಮರಹಿತ ರಚನೆಗಳನ್ನು ರಚಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಆಧುನಿಕ ಸಮಾಜದ ಸಮಸ್ಯೆಗಳನ್ನು ಎತ್ತಿ ಹಿಡಿದು ತಮ್ಮ ಸಾಹಿತ್ಯ ರಚನೆ

ಮಾಡಿರುವ ಪಂಜಾಬಿನ ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರು ಅತೀ ಹೆಚ್ಚಾಗಿ ಧರ್ಮರಹಿತ ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರಚನೆ ಮಾಡಿದ್ದಾರೆ.

ಪಂಜಾಬಿನ ಕ್ರಾಂತಿಕಾರ ಬರಹಗಾರರಾದ ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ ಒಬ್ಬ ಸಿಖ್ಖ್ ಆಗಿದ್ದರೂ ಸಹಿತ ತಮ್ಮ ರಚನೆಯಲ್ಲಿ ಸಮಾಜದ ಅನ್ಯಾಯದ ವಿರುದ್ಧ ಉಗ್ರವಾಗಿ, ಕಠೋರ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರಚನೆ ಮಾಡುತ್ತಾರೆ. ಧಾರ್ಮಿಕ ದಾರಿಯಿಂದ ಸ್ವಲ್ಪ ದೂರ ಹೋಗಿ ತಮ್ಮದೇ ಆದ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರಚನೆ ಮಾಡುತ್ತಾರೆ. ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ ಅವರು ದಲಿತ ಜನರ ನಡೆಯುವ ಅನ್ಯಾಯದ ವಿರುದ್ಧ ಬರೆಯುತ್ತ ಉಗ್ರವಾಗಿ ಕಠೋರ ಶಬ್ದಗಳ ಪ್ರಯೋಗ ಮಾಡುತ್ತಾರೆ.

ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ ಅವರು ತಮ್ಮ ಕವಿತೆಯಲ್ಲಿ ``ಕರವೆ ದೆ ವರತಾ ತೋ ಲೇ ಆಯೆ ತಲವಾರ ಮಾ, ಸೂಟಾ ದಾ ರಿವಾಜ ಹುನ್ ಗಯಾ' ' ಅಂದರೆ ``ಹೇ ತಾಯಿ, ನೀನೇನಾದರು ಜಾತ್ರೆಗೆ ಹೋಗುತ್ತಿದ್ದರೆ, ನನಗಾಗಿ ಬಟ್ಟೆ ತರಬೇಡ ನನಗಾಗಿ ಚೂಪಾದ ಖಡ್ಗ ತೆಗೆದುಕೊಂಡು ಬಾ.'' ಈ ಕವಿತೆಯಲ್ಲಿ ದಲಿತ ಹುಡುಗಿ ತನ್ನ ತಾಯಿಗೆ ಬಟ್ಟೆ ಬೇಡ, ಕಡ್ಗವನ್ನು ತರಲು ಹೇಳುತ್ತಾಳೆ. ಏಕೆಂದರೆ ದಲಿತ ಜನರ ಜೊತೆಯಾದ ಅನ್ಯಾಯದ ಬಗ್ಗೆ ಅಸಂತುಷ್ಟವಾದ ಆ ದಲಿತ ಹುಡುಗಿ ಖಡ್ಗದಿಂದ ಆ ಜನರ ವಿರುದ್ಧ ಹೋರಾಡಲು ಬಯಸುತ್ತಾಳೆ, ಯಾವ ಜನರು ಅವಳ ಜನರ ಜೊತೆ ಅನ್ಯಾಯ ಮಾಡಿದ್ದಾರೆ.

ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿಯ ಉಳಿದ ರಚನೆಗಳಲ್ಲಿಯೂ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯ ವಿರುದ್ಧ ಸಿಡಿದೆದ್ದ ಧ್ವನಿ ಕಂಡುಬರುತ್ತದೆ. ಇದಲ್ಲದೆ ಸಮಾಜ ಸುಧಾರಣೆ ಮಾಡಲು ಸಹಿತ ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿಯವರು ತಮ್ಮ ಕವಿತೆ ರಚನೆ ಮಾಡಿದ್ದಾರೆ.

ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ ಅವರು ``ತು ಉಗದಾ ರವ್ವೆ ಸೂರಜಾ ಕಮ್ಮಿಯಾ ದೆ ವೆಡೆ' ' ಅಂದರೆ ``ಸೂರ್ಯನೇ, ನೀನು ನೀಡು ಬೆಳಕಿನ ಕಿರಣ ಕಡುಬಡವರ ಅಂಗಳದಲ್ಲಿ.'' ಅರ್ಥಗರ್ಭಿತವಾದ ಈ ಕವಿತೆಯಲ್ಲಿ ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿ ಕಡುಬಡವರ ಜೀವನದಲ್ಲಿ ಅಭಿವೃದ್ಧಿಯ ಕಿರಣಗಳು ಬೀರಲೆಂದು ಬಯಸುತ್ತಾರೆ. ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿಯವರ ಈ ರೀತಿಯ ಕವಿತೆಗಳ ಕಾರಣದಿಂದ ಪಂಜಾಬ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆಯ ಕಹಳೆಯೇ ಹುಟ್ಟಿತ್ತು.

೧೯೭೦ರ ದಶಕದಲ್ಲಿ ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿಯ ಈ ಕವಿತೆಗಳನ್ನು ಪಂಜಾಬಿನ ಜನರು ಮೂಲೆ ಮೂಲೆಯಲ್ಲಿ ಹಾಡಿ ಹೊಗಳುತ್ತಿದ್ದರು. ಶೇಕಡಾ ೩೩% ರಷ್ಟು ದಲಿತರಿರುವ ಪಂಜಾಬಿನಲ್ಲಿ ಸಂತ ರಾಮ ಉದಾಸಿಯ ಕವಿತೆಗಳು ದಲಿತರಿಗೆ ಶಕ್ತಿ ನೀಡಿದ್ದವು.

ಪಂಜಾಬಿನ ಇನ್ನೊಬ್ಬ ಕವಿ `ಪಾಷ' ಸಹ ಕ್ರಾಂತಿಕಾರಿ ವಿಚಾರಧಾರೆಯಿಂದ ತಮ್ಮ ಕವಿತೆ ರಚನೆ ಮಾಡಿದ್ದರು. ಕೇವಲ ದಲಿತ ಚಿಂತನೆಯನ್ನು ಹುಟ್ಟಿಸುವದಕ್ಕಾಗಿ ಬರೆಯದೆ ಎಲ್ಲರಿಗೂ ಅನ್ವಯವಾಗುವ ಕವಿತೆಗಳನ್ನು ಬರೆಯುವ `ಪಾಷ' ಜನರಲ್ಲಿ ಸತ್ತು ಹೋದ ಸ್ವಾಭಿಮಾನ ಪುನಃ ಹುಟ್ಟಿಸುವ ಕಾರ್ಯ ತಮ್ಮ ಕವಿತೆಯ ಮುಖಾಂತರ ಮಾಡಿದ್ದಾರೆ. ತಮ್ಮ ಒಂದು ಕವಿತೆಯಲ್ಲಿ ಪಾಷಾ ``ಸಬ್ ತೋ ಖತರನಾಕ ಹುಂದಾ ಹೈ ಮುರದಾ ಶಾಂತಿ ನಾಲ ಡರ್ ಜಾಣಾ ನಾ ಹೋಣಾ ತಡಪ ದಾ, ಸಬ್ ಸಹಜಾಣಾ. ಕರಾ ತೋ ನಿಕಲಣಾ ಕಮ್ಮ ತೆ. ತೆ ಕಮ್ಮ ತೋ ಕರ ಜಾಣಾ, ಸಬ್ ತೋ ಖತರನಾಕ ಹುಂದಾ ಹೈ ಸಾಡೆ ಸುಪನಿಯಾ ದಾ ಮರ ಜಾಣಾ' ' ಅಂದರೆ ``ಎಲ್ಲಕ್ಕಿಂತಲೂ ಅಪಾಯ ಇರುವದು ಅದೇ ಹೆಣ ಸ್ಮಶಾನಕ್ಕೆ ಹೆದರುವದು. ತಳಮಳ ಇರದೇ ಇರುವದು, ಎಲ್ಲವನ್ನು ಸಹಿಸುವದು, ಮನೆಯಿಂದ ಕೆಲಸಕ್ಕೆ ಹೋಗುವದು, ಕೆಲಸದಿಂದ ಮನೆಗೆ ಮರಳುವದು, ಎಲ್ಲಕ್ಕಿಂತಲೂ ಅಪಾಯ ಇರುವದು. ಅದೇ ನಮ್ಮ ಕನಸುಗಳು ಸತ್ತು ಹೋಗುವದು.''

ಕಟ್ಟಿದ ಕನಸುಗಳನ್ನು ನನಸಾಗಿಸಲು ತಳಮಳ ಹೊಂದಿದೆ. ಇದ್ದ ಹೃದಯದೊಂದಿಗೆ ಜೀವ ನಡೆಸುವ ಜನರಿಗೆ ಈ ರೀತಿ ಕವಿಯ ಮುಖಾಂತರ ತಿಳಿಹೇಳುವ ಪಾಷ ಜನರಿಗೆ ಜೀವನಶೈಲಿಯ ಬಗ್ಗೆ ಪಾಠ ನೀಡುತ್ತಾರೆ. ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಮಸ್ಯೆಗಳ ಬಗ್ಗೆ ಸಿಡಿದು ಏಳದೇ ಇರುವ

ಜನರಿಗೆ ಪಾಷ ಅವರು ಬರೆದ ಈ ಕವಿತೆ ಸಂಪೂರ್ಣವಾಗಿ ಅನ್ವಯವಾಗುತ್ತದೆ. ಪಾಷ ಅವರು ಬರೆದ ಈ ಕವಿತೆಯಿಂದ ಪಂಜಾಬಿನ ಅನೇಕ ಸಮುದಾಯಗಳಲ್ಲಿ ಜಾಗ್ರತಿ ಹುಟ್ಟಿಸಿದ ಕಾರಣ ಜನರು ಅನ್ಯಾಯದ ವಿರುದ್ದ ತಮ್ಮ ಧ್ವನಿಯೆತ್ತಿದ್ದ ಉದಾಹರಣೆಗಳಿವೆ. ಪಾಷ ಅವರ ಪ್ರಭಾವಶಾಲಿ ಕವಿತೆಗಳ ಕಾರಣದಿಂದ ಪಂಜಾಬಿನ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆಯಾಗಿ ಜನರು `ಕಾಯಕವೇ ಕೈಲಾಸ' ವೆಂದು ಕೆಲಸ ಮಾಡಲು ಪ್ರಾರಂಭಿಸಿದ್ದರು. ಪಂಜಾಬಿ ಭಾಷೆಗೆ ಪ್ರಥಮ ಜ್ಞಾನಪೀಠ ಪ್ರಶಸ್ತಿ ಪಡೆದ ಅಮೃತ ಪ್ರೀತಮ್ ಅವರು ಭಾರತ ಮತ್ತು ಪಾಕಿಸ್ತಾನ ವಿಭಜನೆಯ ದುಃಖದ ಘಟನೆಗಳ ಆಧಾರದ ಮೇಲೆ ತಮ್ಮ ರಚನೆ ಮಾಡಿ ಭಾರತ ಮತ್ತು ಪಾಕಿಸ್ತಾನ ಎಂದು ಎರಡಾದ ದೇಶಗಳನ್ನು ಭಾವನೆಯ ಮುಖಾಂತರ ಒಂದಾಗಿಸುವ ಕಾರ್ಯ ಮಾಡಿದ್ದಾರೆ. ಹೀಗಾಗಿ ಭಾರತ ಮತ್ತು ಪಾಕಿಸ್ತಾನ ಜನರ ನಡುವೆ ಪ್ರೀತಿ ಸೌಹಾರ್ದ ಸ್ವಲ್ಪ ಮಟ್ಟಿಗೆ ಕಾಣಬಹುದು.

ಅಮೃತಾ ಪ್ರೀತಮ್ ಅವರು ``ಅಜ್ಜ ಆಖ್ಖಾ ವಾರಿಪ್ ಶಾ ನು ಕಿತ್ತೋ ಕಬರಾ ವಿಚ್ಚೋ ಬೋಲ. ತೆ ಅಜ್ಜ ಕಿತಾಬ-ಏ-ಇಶ್ಕ ದಾ ಕೋಇ ಅಗಲಾ ವರಕಾ ಖೋಲ.'' ಅಂದರೆ ``ಇಂದು ಹೇಳಲೇ ನಾ ವಾರಿಷ ಶಾನು ಗೋರಿಯಿಂದಲೇ ನೀ ಮಾತನಾಡು. ಇಂದು ಪ್ರೇಮ ಪ್ರೀತಿಯ ಪುಸ್ತಕದ ಮತ್ತೊಂದು ಪುಟ ತಿರುವು.'' ಈ ಕವಿತೆಯ ಮುಖಾಂತರ ಅಮೃತಾ ಪ್ರೀತಮ್ ವಾರಿಷ್ ಶಾನನ್ನೇ ಗೋರಿಯಿಂದಲೇ ಮಾತನಾಡಲು ಪ್ರೇರೇಪಿಸಿ ಪ್ರೀತಿ ಪ್ರೇಮದ ಸಂದೇಶ ನೀಡಲು ಹೇಳುತ್ತಾರೆ. ಹೆಣ್ಣುಮಕ್ಕಳ ಪರಿಸ್ಥಿತಿಯನ್ನು ತಮ್ಮ ಕವಿತೆಯಲ್ಲಿ ಬರೆಯುವ ಅಮೃತಾ ಪ್ರೀತಮ್ ಹೆಣ್ಣುಮಕ್ಕಳ ಮನದಲ್ಲಿ ಸ್ವಾಭಿಮಾನದಿಂದ ಜೀವನ ನಡೆಸಲು ಪ್ರೇರೇಪಿಸುತ್ತಾರೆ.

ಪಂಜಾಬಿ ಭಾಷೆಗೆ ಮತ್ತೊಂದು ಜ್ಞಾನಪೀಠ ಪ್ರಶಸ್ತಿ ತಂದಿದ್ದ ಪ್ರೊಫೆಸರ್ ಗುರದಯಾಲ ಸಿಂಗ್ ಅವರು ಹಳ್ಳಿಯ ರೈತರ ಜೀವನ, ಕೃಷಿ ಸಮಸ್ಯೆಯ ಬಗ್ಗೆ ತಮ್ಮ ಕಾದಂಬರಿಯಲ್ಲಿ ಬರೆಯುತ್ತಾರೆ. ಜಸವಂತ ಸಿಂಗ್ ಕಂವಲ್, ದಿಲೀಪ ಕೌರ ಟಿವಾಣಾ, ಶಿವಕುಮಾರ ಬಟಾಲ್ವಿ, ಅಜೀತ ಕೌರ, ನೂರಪೂರ ಹಾಗೂ ಇನ್ನೂ ಅನೇಕ ಪಂಜಾಬಿ ಬರಹಗಾರರ ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರಚನೆಯಿಂದ ಪಂಜಾಬಿನ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ದೊಡ್ಡ ಪ್ರಮಾಣದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ಬಂದಿದೆ.

ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಮತ್ತು ಕರ್ನಾಟಕ ಸಮಾಜ :

ಕರ್ನಾಟಕ, ಜಗತ್ತು ಕಂಡ ಮತ್ತೊಂದು ಪವಿತ್ರ ಸ್ಥಳವಾಗಿದೆ. ೧೨ನೆಯ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ವಚನ ಸಾಹಿತ್ಯ ಕಂಡ ಕರ್ನಾಟಕ ಶರಣರ ಶಕ್ತಿಯನ್ನೇ ಹುಟ್ಟಿಸಿದೆ. ಬಸವಣ್ಣ, ಅಲ್ಲಮಪ್ರಭು, ಅಕ್ಕಮಹಾದೇವಿ ಅಂಥ ಸಮಾಜ ಸುಧಾರಕರು ೧೨ನೆಯ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿಯೇ ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ವಚನಗಳ ರಚನೆ ಮಾಡಿ ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯನ್ನು ಶ್ರೀಮಂತ ಮಾಡಿದ್ದಾರೆ.

ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಮಸ್ಯೆಗಳನ್ನೆಲ್ಲ ಆಧಾರವಾಗಿಟ್ಟುಕೊಂಡು ತಮ್ಮ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ದೇವರ ಮಹಿಮೆ ಹಾಡಿಹೊಗಳುವ ವಚನಗಾರರು ಕರ್ನಾಟಕದ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಕ್ರಾಂತಿಯನ್ನೇ ತಂದಿದ್ದರು. ತದನಂತರ ಬಂದ ದಾಸರ ಕೀರ್ತನೆಗಳು ಕರ್ನಾಟಕ ಸಮಾಜವನ್ನು ಶುದ್ದೀಕರಣ ಮಾಡುವದರಲ್ಲಿ ಪ್ರಮುಖ ಪಾತ್ರ ವಹಿಸಿದರು. ಪುರಂದರದಾಸರು ಕರ್ನಾಟಕ ಸಂಗೀತದ ಪಿತಾಮಹರಾದರೆ, ಕನಕದಾಸರು ಕರ್ನಾಟಕವನ್ನು ಕಾಣದ ದೇವರನ್ನೇ ಪೂರ್ತಿ ಕರ್ನಾಟಕಕ್ಕೆ ತೋರಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಅವರು ಬರೆದ ಕೀರ್ತಿನೆಯ ಪ್ರತಿಯೊಂದು ಶಬ್ದದಲ್ಲಿ ಕಾಣದ ದೇವರ ಕಾಣುವನು.

ಸರ್ವಜ್ಞನವರು ರಚಿಸಿದ ತ್ರಿಪದಿ ಮಾತ್ರ ಸಾಹಿತ್ಯ ಮತ್ತು ಸಮಾಜಕ್ಕೆ ಒಂದುಗೂಡಿಸುವ ಕೆಲಸ ಮಾಡುತ್ತವೆ. ಪ್ರಭಾವಶಾಲಿಯಾಗಿ ತ್ರಿಪದಿ ರಚಿಸಿದ ಸರ್ವಜ್ಞ ಕರ್ನಾಟಕ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ದೊಡ್ಡ ಪ್ರಮಾಣದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿದ್ದಾರೆ. ಸಂತ ಶಿಸುನಾಳ ಷರೀಫರು ರಚಿಸಿದ ಕೀರ್ತನೆಯಂತೂ ಸೂಫೀ ವಾದದ ಜೊತೆ ಸಂಬAಧ ಹೊಂದಿರುವ ಭಾವನೆ ಹುಟ್ಟಿಸುತ್ತವೆ.

ಆಧುನಿಕ ಕಾಲದ ಕರ್ನಾಟಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಭಾರತದಲ್ಲಿಯೇ ಅತ್ಯುನ್ನತ ಸ್ಥಾನದಲ್ಲಿ ಮುಟ್ಟಿದೆ. ಒಟ್ಟು ಎಂಟು ಜ್ಞಾನಪೀಠ ಪ್ರಶಸ್ತಿ ಪಡೆದ ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಅತ್ಯುತ್ತಮ ಸಾಹಿತ್ಯಕ ರಚನೆಗಳು ಆಗಿವೆ.

ಕುವೆಂಪು, ದ.ರಾ. ಬೇಂದ್ರೆ, ಶಿವರಾಮ ಕಾರಂತ, ಮಾಸ್ತಿ ವೆಂಕಟೇಶ ಅಯ್ಯಂಗಾರ್ ಹಾಗೂ ವಿ.ಕೃ. ಗೋಕಾಕ ಅವರ ರಚನೆಗಳು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಜನರ ಭಾವನೆ, ಸಂಬAಧ ಮತ್ತು ಜೀವನ ನೀಡುವ ಶೈಲಿಯನ್ನು ಸುಧಾರಿಸಿದರೆ ಗಿರೀಶ ಕಾರ್ನಾಡ, ಯು.ಆರ್. ಅನಂತಮೂರ್ತಿ ಹಾಗೂ ಚಂದ್ರಶೇಖರ ಕಂಬಾರ ಅವರ ರಚನೆಗಳು ಆಧುನಿಕ ಕಾಲದ ಬದಲಾವಣೆಗಳ ಬಗ್ಗೆ ಜನರ ಸಂಬAಧ, ಸಾಮಾಜಿಕ ನಡವಳಿಕೆಯ ಬಗ್ಗೆ ತಿಳಿಹೇಳುತ್ತವೆ. ಇವರೆಲ್ಲರ ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರಚನೆಗಳು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿವೆ.

ಆದರೆ ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯ ತಂದ ಪರಿವರ್ತನೆ ಹೊಗಳಿಕೆಗೆ ಅರ್ಹವಾಗಿದೆ. ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯ ನೊಂದವರ ಧ್ವನಿಯಾಗಿತ್ತು. ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯ ಬರೆಯದೆ ಇರುವ ಬಡವರ ಬವಣೆಯಾಗಿತ್ತು. ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯದಲ್ಲಿ ಅನೇಕ ಬರಹಗಾರರು ತಮ್ಮ ರಚನೆಗಳನ್ನು ವ್ಯವಸ್ಥೆಯ ವಿರುದ್ಧ ನೇರ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಬರೆದಿದ್ದಾರೆ. ಅವರೆಲ್ಲರಲ್ಲಿ ಡಾ. ಸಿದ್ಧಲಿಂಗಯ್ಯ ಅವರು ಬರೆದ ಸಾಹಿತ್ಯ ರಚನೆಗಳು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆ ತರುವಲ್ಲಿ ಅತಿ ಹೆಚ್ಚು ಯಶಸ್ವಿ ಕಂಡಿವೆ.

ಡಾ. ಸಿದ್ಧಲಿಂಗಯ್ಯ ಅವರು ಬರೆದ ಕವಿತೆ ``ಬಡವರು ಬಂದರು ದಾರಿ ಬಿಡಿ, ಬಡವರ ಕೈಯಲ್ಲಿ ರಾಜ್ಯ ಕೊಡಿ' ' ಯ ಕಾರಣದಿಂದ ಬಡವರ ಮನದಲ್ಲಿ ಸ್ವಾಭಿಮಾನದಿಂದ ಜೀವನ ಮಾಡಿ ರಾಜ್ಯವನ್ನು ಆಳುವ ಶಕ್ತಿಯಾಗಬೇಕೆಂಬ ಆಶೆ ಹುಟ್ಟಿಸಿತ್ತು. ಕೈಯಲ್ಲಿ ಹಲಿಗೆ ಹಿಡಿದು ತಾಳಕ್ಕೆ ತಾಳ ಹಾಕಿ ಹಲಿಗೆ ಹೊಡೆದು ಹಾಡುವ ಬಡವರ ಸಮೂಹವೇ ರಸ್ತೆಯಲ್ಲಿ ಇಳಿಯುವ ಘಟನೆಗಳು ಡಾ. ಸಿದ್ಧಲಿಂಗಯ್ಯ ಅವರ ಈ ಕವಿತೆಯಿಂದಲೇ ಎಂದರೆ ತಪ್ಪೇನಿಲ್ಲ.

ಡಾ. ಸಿದ್ಧಲಿಂಗಯ್ಯ ಅವರು ತಮ್ಮ ಮತ್ತೊಂದು ಕವಿತೆಯಲ್ಲಿ, ``ಯಾರಿಗು ಬಂತು ಎಲ್ಲಿಗೆ ಬಂತು ೪೭ರ ಸ್ವಾತಂತ್ರ್ಯ್ಯ ಟಾಟಾ ಬಿರ್ಲಾಗೆ ಬಂತು.'' ಸ್ವಾತಂತ್ರ್ಯ್ಯ ಬಂದರೂ ಅವಕಾಶಗಳಿಂದ ವಂಚಿತರಾದ ಬಡಜನರ ಧ್ವನಿಯಾಗಿದೆ. ಡಾ. ಸಿದ್ಧಲಿಂಗಯ್ಯ ಅವರು ಬರೆದ ಪ್ರತಿಯೊಂದು ರಚನೆ ದಲಿತರ ನೊಂದ ನೋವಿನ ಧ್ವನಿಯಾಗಿದೆ. ಅವರ ರಚನೆಗಳಿಂದ ಪ್ರಭಾವಿತರಾಗಿ ಅನೇಕ ದಲಿತರು `ದಲಿತ ಸಂಘರ್ಷ ಸಮಿತಿ' ಯಲ್ಲಿ ಸೇರಿ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆ ತರಲು ಪ್ರಯತ್ನಿಸಿದ್ದರು.

ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ಸಾಹಿತ್ಯದ ಹೋಲಿಕೆ ಮತ್ತು ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆ :

ಕ್ರಾಂತಿಕಾರಿ ವಿಚಾರಧಾರೆ ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬದಲ್ಲಿ ಒಂದೇ ರೀತಿ ಇರುವ ಭಾವ ಇದೆ. ಆದರೆ ಪಂಜಾಬ ರಚನೆಯಲ್ಲಿ ಹಿಂಸೆ ಅತಿ ಎದ್ದು ಕಾಣುತ್ತದೆ. ಸಾಹಿತ್ಯಕ ರಚನೆಯ ವಿಷಯ ವಸ್ತು ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ಒಂದೇ ಎನ್ನುವ ಭಾವನೆಯು ಹುಟ್ಟುತ್ತದೆ. ಅನೇಕ ಪಂಜಾಬ ಸಾಹಿತ್ಯಕಾರರು ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರಚನೆಗಳು ಮಾಡಿದ್ದರೂ ಸಹಿತ ಕರ್ನಾಟಕದ ಸಾಹಿತಿಕಾರರ ಹಾಗೆ ಎಂಟು ಜ್ಞಾನಪೀಠ ಪುರಸ್ಕಾರ ಗೆಲ್ಲದೆ ಕೇವಲ ಒಂದೂವರೆ ಜ್ಞಾನಪೀಠ ಮಾತ್ರ ಗೆಲ್ಲಲು ಯಶಸ್ವಿಯಾಗಿದ್ದಾರೆ.

ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬ ರಾಜ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ರಚನೆಯಾದ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯಕ ರಚನೆಗಳು ಸ್ತ್ರೀÃ ಸಮಸ್ಯೆ, ಮಕ್ಕಳ ಸಮಸ್ಯೆ, ವೃದ್ಧರ ಸಮಸ್ಯೆ, ಜಾತಿವಾದ, ನಶೆ ಮತ್ತು ಸಾಮಾಜಿಕ ಸಂಬAಧಗಳ ಬಗ್ಗೆ ತಮ್ಮ ವಿಷಯ ವಸ್ತುವಾಗಿಟ್ಟುಕೊಂಡಿವೆ. ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ರಚನೆಗಳ ಕಾರಣದಿಂದ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆಯಾಗಿವೆ. ಸಾಮಾನ್ಯ ಜನರು ಒಳ್ಳೆಯ ಕವಿತೆ, ಕಾದಂಬರಿ, ಕಥೆಗಳನ್ನು ಓದಿ ತಮ್ಮ ಜೀವನವನ್ನು ಸುಧಾರಿಸಿಕೊಂಡಿದ್ದಾರೆ. ಶಾಲೆ, ಕಾಲೇಜು, ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯದ ಪಠ್ಯಪುಸ್ತಕದಲ್ಲಿ ಇವರೆಲ್ಲರ ರಚನೆಗಳು ಇರುವದರಿಂದ ವಿದ್ಯಾರ್ಥಿಗಳಲ್ಲಿ ಜ್ಞಾನ, ಸಾಹಿತ್ಯಿಕ ರುಚಿ ಮತ್ತು ಸಾಮಾಜಿಕ ಕಳಕಳಿ ಹುಟ್ಟಿಸಿವೆ.

ಅಔಓಲಅಖUSIಔಓ : ಸಾಹಿತ್ಯವು ಸಮಾಜದ ಗುರುತಾಗಿದೆ. ಯಾವ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಮೃದ್ಧ ಸಾಹಿತ್ಯ ಇರವದೋ, ಆ ಸಮಾಜ ಶ್ರೀಮಂತವಾಗಿರುತ್ತದೆ. ಬರಹಗಾರರು ಹೊಸ ವಿಚಾರಧಾರೆಗಳನ್ನು ಸೃಷ್ಟಿಸುತ್ತಾರೆ. ಕರ್ನಾಟಕ ಮತ್ತು ಪಂಜಾಬಿನಲ್ಲಿ ಈ ರೀತಿಯ ವಿಚಾರಧಾರೆಗಳು ಸೃಷ್ಟಿಯಾಗಿವೆ. ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ ವಚನ ವಿಚಾರಧಾರೆ ಸೃಷ್ಟಿಯಾದರೆ, ಪಂಜಾಬದಲ್ಲಿ ಗುರುವಾಣಿ, ಸೂಫಿವಾದ ವಿಚಾರಧಾರೆ ಸೃಷ್ಟಿಯಾಗಿವೆ.

ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ ಬಂಡಾಯ ಸಾಹಿತ್ಯದ ವಿಚಾರಧಾರೆ ಸೃಷ್ಟಿಯಾದರೆ, ಪಂಜಾಬದಲ್ಲಿ ಕ್ರಾಂತಿಕಾರಿ ಸೊಚ ಸೃಷ್ಟಿಯಾಗಿದೆ. ಇಂತಹ ರಚನೆಗಳು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ಪರಿವರ್ತನೆಯು ಸಹ ತರುತ್ತವೆ. ಪಂಜಾಬದಲ್ಲಿ ಸೂಫಿವಾದ ಹಾಗೂ ಗುರುವಾಣಿ, ದೇವರ ಜೊತೆ ಜೋಡಿಸುವದರ ಜೊತೆಗೆ ಜಾತಿವಾದ, ಅನ್ಯಾಯದ ಬಗ್ಗೆ ಎಚ್ಚರಗೊಳಿಸಿದರೆ; ಕರ್ನಾಟಕದಲ್ಲಿ ವಚನ ಸಾಹಿತ್ಯ ಹಾಗೂ ದಾಸಸಾಹಿತ್ಯ ಸಮಾಜವನ್ನೇ ಶೂನ್ಯ ಸಂಪಾದನೆ ಗಳಿಸುವತ್ತ ಕರೆದೊಯ್ಯುತ್ತವೆ.

ಈ ಶೋಧ ಪತ್ರದಲ್ಲಿ, ಯಾವ ರೀತಿಯಾಗಿ ಸಾಹಿತ್ಯ ಮತ್ತು ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಸಂಬAಧವಿದೆ ಎಂದು ತಿಳಿಹೇಳುತ್ತದೆ ಹಾಗೂ ಯಾವ ರೀತಿಯಾಗಿ ಕರ್ನಾಟಕ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿದೆ ಎಂದು ತಿಳಿಹೇಳುತ್ತದೆ. ಇದಲ್ಲದೆ ಯಾವ ರೀತಿಯಾಗಿ ಪಂಜಾಬ ಸಮಾಜದಲ್ಲಿ ಆಧುನಿಕ ಸಾಹಿತ್ಯ ಪರಿವರ್ತನೆ ತಂದಿದೆ ಎಂದು ತಿಳಿಹೇಳುತ್ತದೆ.

ಈ ಶೋಧ ಪತ್ರದಲ್ಲಿ ಪಂಜಾಬ ಹಾಗೂ ಕರ್ನಾಟಕದ ಸಾಹಿತ್ಯದ ತುಲನಾತ್ಮಕ ಅಧ್ಯಯನವು ಮಾಡಿ ಸಂಶೋಧನೆ ಮಾಡಲಾಗಿದೆ. ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳು ಉತ್ತರ ಮತ್ತು ದಕ್ಷಿಣದಲ್ಲಿದ್ದರೂ ಸಹಿತ ಎರಡೂ ರಾಜ್ಯಗಳ ಹೃದಯ ಒಂದು, ಎರಡು ರಾಜ್ಯಗಳ ಭಾವನೆ ಒಂದು ಎಂದು ಕಂಡುಬರುತ್ತದೆ.

ಃIBIಖಔಉಖAPಊಜ :

೧. ಜೋಷಿ ಜಿತ್‌ಸಿಂಗ್ : ೨೦೧೧, `ಪಂಜಾಬಿ ಅಧ್ಯಯನ ತೆ ಅಧ್ಯಾಪಕ' , ವಾರಿಷ್ ಶಾ ಫೌಂಡೇಶನ್, ಶ್ರೀ ಅಮೃತಸರ.

೨. ಪೋಸಲ ಬುಹಾದ್ದರ ಸಿಂಗ್ : ೨೦೧೫, `ಛಲಕ್ ಪಂಜಾಬ ವಿರಸೆ' ದಿ ತ್ರಿಲೋಜನ್ ಪಬ್ಲಿರ್ಸ್, ಚಂದೀಗಡ.

೩. ಸಿAಗ್ ಜಗಜೀತ : ೨೦೦೦, `ಸಿಖ್ ಇನಕಲಾಬ್' , ಶ್ರೀ ಅಮೃತಸರ.

೪. ರಾವಶಂಕರ ಚ. ನ. : ೧೯೯೫, `ಸಮಾಜ ಶಾಸ್ತ್ರ ಪರಿಚಯ' , ಜೈ ಭಾರತ ಪ್ರಕಾಶನ, ಮಂಗಳೂರು.

೫. ಸಿದ್ದಲಿAಗಯ್ಯ : ೨೦೦೬, `ಬತ್ತದ ಬೆಳದಿಂಗಳು' , ಮಿಲಿಂದ ಪ್ರಕಾಶನ, ಮಂಗಳೂರು

೬. ಸಿದ್ದಲಿAಗಯ್ಯ : ೧೯೯೭, `ಉರುಕೇರಿ' , ಅಂಕಿತ ಪುಸ್ತಕ, ಬೆಂಗಳೂರು

೭. ತಿಪ್ಪಶೆಟ್ಟಿ ಮಹೇಶ : ೨೦೦೩, `ಬಸವತತ್ವ ಸಾಮಾಜಿಕ ಬದಲಾವಣೆ' , ಪ್ರಕಾಶನ ಕನ್ನಡ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ, ಹಂಪಿ.

೮. ಶಿವರಾಮ ಕಾರಂತ : ೧೯೬೮, `ಮೂಕಜ್ಜಿಯ ಕನಸುಗಳು' , ಸ್ವಪ್ನ ಬುಕ್ ಹೌಸ್, ಬೆಂಗಳೂರು.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 47-54
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भाई तारू सिंह जी: सामाजिक पहचान और धार्मिक आजादी

डा. पंडितराव चन्द्रशेखर धरेनवर
एसोसिएट प्रोफैसर
पोस्ट ग्रेजुऐट सरकारी कॉलेज, सैक्टर-46, चण्डीगढ़।

की-वर्डस - भाई तारू सिंह, समाज, सामाजिक पहचान, श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी, सामाजिक परिर्वतन, गुरवाणी, श्री गुरू नानक देव जी, श्री गुरू अंगद देव जी, दस्तार, खोपड़ी, केश, बलिदान, समर्पण, त्याग, धर्म, मानवता, धार्मिक आजादी।

अबस्ट्रक्ट

दुनिया ने कई हस्तियों को देखा है जिन्होंने अपने जीवन में किसी न किसी कारण के लिए अपना महान् योगदान दिया है। वह कारण जो न केवल विशेष व्यक्ति, धर्म या क्षेत्र के लिए बल्कि मानवता के लिए भी महत्वपूर्ण था। कुछ व्यक्तियों द्वारा किए गए बलिदान ने इतिहास के प्रवचन को ही बदल दिया। भाई तारू सिंह उनमें से एक थे जिन्होंने अपनी अनोखी पहचान के लिए बलिदान की अवधारणा को ही बदल दिया। वह पहचान जो व्यक्ति की संस्कृति और परंपरा का प्रतीक है। व्यक्ति केवल एक व्यक्ति नहीं है, वास्तव में व्यक्ति विशेष क्षेत्र की संस्कृति और परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। यदि व्यक्ति को समाज के अन्य वर्गों में सम्मान मिलता है, तो यह संदेश देता है कि समाज में एक-दूसरे के लिए परस्पर सम्मान है लेकिन यदि व्यक्ति का अपमान किया जाता है तो यह उस व्यक्ति की संस्कृति और परंपरा का सीधा अपमान है।

दुनिया ने कई लोगों को अपनी अनोखी पहचान के लिए अलग- अलग तरीके से लड़ते देखा है। नेल्सन मंडेला से लेकर महात्मा गांधी तक और किंग लूथर से लेकर डॉक्टर भीमराव रामजी अंबेडकर तक, इन सभी ने अपनी अनोखी पहचान के लिए गरिमामय पहचान और सम्मान की लड़ाई लड़ी थी जो संस्कृति और परंपरा की परिणति थी। उनका संघर्ष परिणाम लाया और कई अन्य व्यक्तियों के लिए लाभान्वित हुआ। उनका संघर्ष अपनी अनोखी पहचान के लिए व्यक्तिगत लड़ाई के लिए प्रेरणादायक कहानी भी बन गया। यह अपनी खूबसूरत विरासत को बचाने और बनाए रखने के लिए दुनिया में किए गए संघर्ष की महान् श्रृंखला है। दुनिया तब और अधिक सुंदर हो गई जब इन व्यक्तियों ने अत्यधिक व्यक्तिगत क्षति सहने के बाद अपनी अनोखी पहचान के लिए संघर्ष किया।

दुनिया के सभी व्यक्ति अब तक अपनी पहचान के लिए लड़ रहे हैं। यहाँ तक कि आधुनिक दुनिया जब तकनीक के उच्चतम शिखर तक पहुँच गई है, लेकिन अभी भी लोग अलग- अलग तरीकों से पहचान संकट का सामना कर रहे हैं। दुनिया के युवाओं ने अपनी पहचान खो दी है और दुनिया के सभी समाजों में अलग- अलग पहचानों को स्वीकार कर लिया है। इसकी वजह यह है कि पहचान की कमी के कारण लोग अलग - अलग भूमिकाएँ निभा रहे हैं, अपनी स्वयं की निर्दिष्ट भूमिकाओं के अलावा। पहचान के संकट के कारण भूमिका संघर्ष दुनिया में अब एक मुख्य समस्या बन गई है। जिस छात्र को स्कूल में अध्ययन करना चाहिए था और अच्छे छात्र

की भूमिका निभानी थी, वह अपने ही शिक्षक को अपने हाथों से गोली मार रहा है, इसलिए वह भूमिका संघर्ष की भद्दी प्रक्रिया से गुजर रहा है।

समाजः-

आधुनिक दुनिया व्यक्तियों की कई मनोवैज्ञानिक समस्याओं को देख रही है। युवाओं में असामान्य व्यवहार इसलिए देखा जाता है क्योंकि जिन युवाओं को पहचान बनाए रखनी होती है वे बनाए नहीं रखते हैं। युवाओं की पहचान उनकी संस्कृति और परंपरा से संबंधित होनी चाहिए, लेकिन आधुनिक युवा भूमिका संघर्ष-भरी पहचान दिखा रहे हैं, जो अन्य सामाजिक समस्याओं का कारण बन रहा है। भूमिका संघर्ष भरी पहचान खतरनाक है क्योंकि यह मूल पहचान पर अधिक प्रभाव डालती है और कुछ समय पश्चात् मूल पहचान कमजोर और गायब हो जाती है। इसलिए, दुनिया की धारणा को मूल पहचान बनाए रखना चाहिए। हालांकि सभी मूल पहचान को बचाने और बनाए रखने के कई प्रयास कर रहे हैं, लेकिन आधुनिक औद्योगिक और उपभोक्ता संस्कृति सामाजिक पहचान के मूल आधार को नष्ट कर रहे हैं।

इसी कड़ी में, भाई तारू सिंह जी का बलिदान उनकी पहचान को बचाने के लिए सबसे आगे आता है। भाई तारु सिंह जी का बलिदान दुनिया के लिए सबसे अच्छा उदाहरण है, यह साबित करने के लिए कि व्यक्तिगत पहचान, अध्ययन और शोध का विषय है। भाई तारु सिंह का बलिदान दुनिया को स्पष्ट संदेश देता है कि सभी यातनाओं को सहन कर सकते हैं और यहाँ तक कि अपनी अनोखी पहचान को बचाने के लिए मौत भी। भाई तारु सिंह के साथ हुए अन्याय उन सभी को चेतावनी दे रहे हैं जो अपनी पहचान को सभी पर थोपने के लिए पहचान को बदलने की इच्छा रखते हैं। राजा के जीवन के तरीके को अपनाने के लिए आम लोगों पर सत्तारूढ़ वंश के मजबूर अधिनियम को इतिहास में लोगों द्वारा आसानी से स्वीकार नहीं किया गया था। यह भाई तारु सिंह जो उस मजबूत इच्छा-शक्ति और शासक वंश के जबरदस्त कृत्य का विरोध करता है। भाई तारु सिंह का समय और स्थान, जिसमें उन्होंने अपनी अनोखी पहचान बचाने के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया था, शोध के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि समय ऐसा था कि मुगलों का राज उस समय में किसी भी अन्य राजवंश की तुलना में अधिक शक्तिशाली था, लेकिन फिर भी उस राजवंश के खिलाफ भाई तारू सिंह आवाज उठा रहे थे। कठिनाई का समय भाई तारु सिंह के साहसी व्यवहार को साबित करता है। जिस स्थान पर भाई तारु सिंह ने अपनी आवाज उठाई वह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह क्षेत्र मुगलों के प्रत्यक्ष नियंत्रण में था, लेकिन फिर भी भाई तारु सिंह ने अपनी पहचान बचाने के लिए शांतिपूर्वक विरोध किया।

उस समय और स्थान ने वास्तव में भाई तारु सिंह को अपनी आवाज उठाने के लिए प्रोत्साहित किया क्योंकि इस दौरान श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने शिष्यों को प्रभावित किया था। प्रभाव इतना शक्तिशाली था कि भाई तारु सिंह जैसे व्यक्तित्व हजारों की संख्या में थे। वह समय ऐसा था कि गुरु के प्रभाव में आया आम आदमी भी गरिमामय अनोखी पहचान के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हो गया था। वह अनोखी पहचान सभी सम्मानों की हकदार थी। भाई तारु सिंह के कार्य ने उन हजारों लोगों के बीच आशा और आकांक्षा का प्रबल वादा किया जो अपनी जीवन शैली और विश्वास को बनाए रखना चाहते थे। जिस विश्वास प्रणाली का अनुसरण कई लोग कर रहे थे, वह शासक वंश के लिए खतरनाक प्रवृत्ति बनती जा रही थी, इसलिए मुगल, सत्ताधारी राजवंश उस मजबूत विश्वास प्रणाली को तोड़ना चाहते थे और अपनी खुद की विश्वास प्रणाली को लागू करना चाहते थे । थोपने की प्रक्रिया में पूरे स्थान पर कई विरोध देखे गए जो गुरु गोबिंद सिंह की विचारधारा से प्रभावित थे। गुरु गोबिंद सिंह जी की विचारधारा इतनी मजबूत थी कि कुछ शासक वंश समर्थन करने लगे और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपनाने लगे। श्री गुरु गोबिंद सिंह की विचारधारा की व्यापक लोकप्रियता सत्तारूढ़ राजवंश के लिए चिंताजनक कारक बन गई, इसलिए मुगल राजवंश ने इस पर अंकुश लगाने के लिए हिंसक तरीके को

अपनाया। इस तथ्य को भूलकर कि विचारधारा पर अंकुश लगाने का हिंसक तरीका भी विचारधारा को और अधिक मजबूत बना सकता है। भाई तारु सिंह को दी गई शारीरिक यातना हर हालत में चरम पर थी क्योंकि मानवता इस तरह के कृत्य की अनुमति नहीं देती है जिसमें सभी दर्द के साथ बाल खींचे गए थे। दर्द शारीरिक था लेकिन अनोखी पहचान बचाने के लिए भाई तारु सिंह के दिल में इतनी खुशी थी कि उन्होंने अपने चेहरे पर मुस्कान के साथ सभी शारीरिक दर्द को सहन कर लिया, उनकी सहनशीलता ने उनके गुरु, गुरु गोबिन्द सिंह जी की विचारधारा को और मजबूत किया। भाई तारु सिंह द्वारा किए गए बलिदान ने आखिरकार गुरु की विचारधारा को और अधिक मजबूत बना दिया।

भाई तारु सिंह सच्चे सिख थे जिन्होंने सच्चे अर्थों में गुरु की सभी शिक्षाओं का पालन किया। भाई तारु सिंह के लिए शारीरिक पीड़ा को सहन करके उनकी अनोखी पहचान और विश्वास प्रणाली को बचाना ज्यादा महत्वपूर्ण था जिसे गुरु द्वारा विकसित किया गया था। भाई तारु सिंह ने, सच्चे सिख के रूप में हिंसक तरीके से अपनी प्रतिक्रिया दिखाने की कोशिश नहीं की, जबकि बहुत सारी शारीरिक हिंसा शासक वर्ग द्वारा की गई थी। भाई तारु सिंह का मुख्य उद्देश्य अपने गुरु की विचारधारा को बचाना और बनाए रखना था, जो सभी विश्वास प्रणाली के लिए प्यार और सम्मान के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

शासक वर्ग की सत्ता और व्यवस्था के लिए भाई तारु सिंह की विश्वास प्रणाली को स्वीकार करने से इंकार करना चुनौती था। भाई तारु सिंह के इंकार ने राजा को सीधे संदेश दिया कि आम लोगों पर कुछ भी लागू करना इतना आसान नहीं है। उनका यह संदेश गुलामी के समय में विचार प्रक्रिया की स्वतंत्रता का भी था। यह वह आवाज थी जिसने अन्य लोगों को यह सोचने के लिए मजबूर किया कि वे गुलामी में जी रहे हैं और इस गुलामी से बाहर आना आवश्यक है। श्री गुरु गोबिंद सिंह जी वे थे, जिन्होंने पहली बार लोगों को अपने स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र विश्वास प्रणाली से अवगत कराया। यह चलन उस समय के लिए नया नहीं था से पहले शुरू क्योंकि गुलामी का विरोध श्री गुरु नानक देव के समय हो गया था और श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने, श्री गुरु नानक देव जी के दसवें रूप में '''खालसा पंथ की स्थापना करके आम लोगों में स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र विश्वास प्रणाली को लोकप्रिय बना दिया था। वह पंथ जो सभी धर्मों (सरबत दा भला) के लिए मानवता, प्रेम और सम्मान में विश्वास करता था। इस तरह की सार्वभौमिक विश्वास प्रणाली तब शासक वर्ग के लिए सहनीय नहीं थी, इसलिए आम लोगों पर हिंसा का हिंसक तरीका शुरू हो गया। व्यक्तिगत रूप से भाई तारु सिंह विश्व स्तर के व्यक्तित्व बन गए क्योंकि उन्होंने सार्वभौमिक भाईचारे और सार्वभौमिक सत्य के लिए संघर्ष किया।

भाई तारु सिंह अपने कार्य में सफल रहे क्योंकि शासक वर्ग की हिंसा का विरोध करने का उनका तरीका अनूठा था। यह अद्वितीय था क्योंकि यह शांति, प्यार और स्नेह के साथ सभी दर्द को सहन करता था। भाई तारु सिंह का यह कार्य आधुनिक सामाजिक चिंतकों और शोधकर्त्ताओं को विश्व स्तर का अनुसंधान करने के लिए प्रोत्साहित करता है क्योंकि इसमें सार्वभौमिक अपील है।

सार्वभौम सत्य और भाईचारे को मजबूत करने के लिए भाई तारू सिंह के प्रयासों को सभी स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाना चाहिए, लेकिन भाई तारु सिंह के प्रयासों को सिखाने या लोकप्रिय बनाने के लिए एक भी प्रयास नहीं किया गया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस महान् व्यक्तित्व को दशकों से अंधेरे में रखा गया है। यह देखना और भी दुखद है कि पंजाबी लोग स्वयं भाई तारु सिंह के योगदान और समाजशास्त्रीय महत्व से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। भाई तारु सिंह जी पर कोई उच्चस्तरीय शोध नहीं किया गया है क्योंकि भाई तारु सिंह जी के प्रयास का समाजशास्त्र के रूप में सभी को पता नहीं है। लोग भाई तारु सिंह को ऐसे व्यक्तित्व के रूप में जानते होंगे, जिन्होंने मुगल काल में जबरन धर्म परिवर्तन का विरोध किया था, लेकिन बहुत से लोगों को भाई तारु सिंह जी के बहादुर कृत्य के समाजशास्त्र के रूप की महत्ता का पता नहीं है। अगर दुनिया को भाई तारु

सिंह जी के धार्मिक पहचान को बचाने के लिए किया गया योगदान का महत्व का अहसास हो गया होता तो एक भी नौजवान अपनी दाढ़ी और बाल नहीं कटवा सकता था। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति में भी लोगों ने अपनी अनोखी पहचान बनाए जरूर रखी होगी। जिस उपभोक्ता संस्कृति ने लोगों की जीवन शैली में बड़े बदलाव लाए, उसका सामना भाई तारु सिंह जी की संघर्ष गाथा से होना चाहिए। भाई तारू सिंह की वास्तविक कहानी रोजमर्रा के जीवन में लोक - कथा हो सकती है। पंजाब के लोगों ने अपनी अनोखी पहचान बचाने के लिए भाई तारु सिंह के सहिष्णुता और संघर्ष के संदेश को फैलाने की कोशिश की होगी। भाई तारु सिंह के योगदान को समाज के सभी वर्गों द्वारा सार्वभौमिक रूप से देखा जाना चाहिए और इसे प्यार और स्नेह के साथ अपनाना चाहिए। यह भाई तारु सिंह हैं जिन्होंने मध्यकालीन भारत के शासक वर्ग को कड़ा संदेश दिया कि भारत धार्मिक सहिष्णुता का देश है और भारत में कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म का पालन कर सकता है। इस धारणा ने भारत को सदियों से मजबूत होने के लिए बचा लिया, लेकिन मध्यकालीन भारत के दौरान, धर्मनिरपेक्ष भारत की मूल आधारशिला मुगलों द्वारा हिला दी गई। यह भाई तारु सिंह हैं जिन्होंने इस प्रवृत्ति का विरोध करने और बहु- धार्मिक भारत की महान् परंपरा को बनाए रखने के लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति दिखाई। यह भाई तारु सिंह हैं जो जबरन धर्म परिवर्तन के लिए असहमति दिखाने के लिए आक्रामक थे। यह भाई तारु सिंह थे जिन्होंने गुरु की विचारधारा के अनुयायियों पर अत्याचार करने वाले मुगलों के खिलाफ बदला सिद्धांत नहीं अपनाया। भाई तारु सिंह इस तथ्य से अवगत थे कि मुगल काल सिर्फ एक चरण है जो एक दिन गायब हो जाएगा, लेकिन श्री गुरु गोबिंद सिंह द्वारा दी गई विचारधारा हमेशा के लिए रहेगी।

भाई तारू सिंह जी: सामाजिक पहचान और धार्मिक आजादी:-

मुगल साम्राज्य के शासनकाल के दौरान सन् 1720 में भाई तारू सिंह पंजाब के अमृतसर जिले के पुहला गाँव के संधू जट्ट परिवार शहीद भाई जोधा सिंह और बीबी धरम कौर के घर में जन्मे थे। उनके पिता जोधा सिंह युद्ध में मारे गए थे। उनकी एक छोटी बहन थी जिसका नाम बीबा तर कौर था। वह एक धर्मनिष्ठ सिख थे, जिन्होंने सिख गुरुओं की शिक्षाओं का पालन करते हुए, अपनी भूमि को परिश्रम से भरने और कड़ी मेहनत से जीवन जीने का काम कियाय हालांकि वे एक अमीर व्यक्ति नहीं थे, फिर भी वे हमेशा खुश रहते थे और उन्होंने अपने सिख भाइयों और बहनों के लिए बहुत कुछ किया।

भाई तारू सिंह (1720 से 1745) ने अपने धर्म के लिए अपनी जान दे दी। उन्होंने अपने धर्म को छोड़ने की बजाय मरना उचित समझा। सम्राट एक मुस्लिम था और वह चाहता था कि वे मुस्लिम बनें।

भाई तारू सिंह ने जिनको बचाया, वह मुस्लिम उत्पीड़न द्वारा निर्वासित करने के लिए मजबूर किये गये थे। भाई तारू सिंह की एक जागीर के मालिक मुखबिर जंडियाला के अकील दास (जिसे हरभगत निरंजनिया के नाम से भी जाना जाता है) द्वारा जासूसी करवाई गई थी। जैसा कि प्राचीन पंथ प्रकाश कहानी सुनाते हैं, जकारिया खान ने एक बार अपने आदमियों से पूछा, ''सिखों को उनका पोषण कहाँ से मिलता है? मैंने उन्हें सभी व्यवसायों से हटा दिया है। वे खेती नहीं करते हैं, न ही उन्हें व्यवसाय करने या सार्वजनिक रोजगार से जुड़ने की अनुमति है। मैंने उनके गुरुद्वारों, उनके पूजा-स्थलों पर सभी तरह के चढ़ावे बंद कर दिए हैं। उनके लिए कोई प्रावधान या आपूर्ति सुलभ नहीं है। वे सरासर भुखमरी से क्यों नहीं मरते?''

हरभगत ने टिप्पणी की, ''इस दुनिया में ऐसे सिख हैं जो तब तक भोजन नहीं करते जब तक वे अपने भाइयों को खाना नहीं खिलाते। वे स्वयं भोजन और वस्त्र के बिना जी सकते हैं, लेकिन अपने साथियों के संकट को सहन नहीं कर सकते। वे मकई को पीसने के लिए पसीना बहाते और उन्हें भेज देते। वे अपनी खातिर एक छोटा सा वेतन कमाने के लिए मोटे तौर पर काम करते थे। वे निर्वासन में अपने भाइयों के लिए धन निकालने के लिए दूर के स्थानों पर जाते हैं।''

''मेघा के पुहला गाँव में एक तारू सिंह रहता है। वह अपनी भूमि को भरता है और अधिकारियों को राजस्व का भुगतान करता है। वह कम खाता है और जंगल में अपने भाइयों को बचाता है। उसकी माँ और बहन दोनों शौचालय बनाती हैं और जीवनयापन करने के लिए पीसती हैं। वे संयम से खाते हैं और साधारण वस्त्र पहनते हैं। वे जो कुछ भी बचाते हैं, वे अपने साथी सिखों को देते हैं।"

हरभगत निरंजन बीस पुलिसकर्मियों सहित भाई तारू सिंह और उसकी बहन के लिए गिरफ्तारी के आदेश लेकर गाँव पुहला पहुँचे। भाई तारू सिंह ने उन्हें गिरफ्तार करने आए सैनिकों से कहा, ष्आप मुझे अपने गुरु के आदेश पर लेने आए हैं। मैं अपने गुरु के आदेश से बंध गया, और आपको भोजन किए बिना नहीं जाने दूँगा।'' सैनिकों ने उनके अनुरोध पर विचार किया और भोजन करने के बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

भाई तारू सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया था, और ग्रामीणों ने विरोध किया और पुलिसकर्मियों से भाई तारू सिंह को मुक्त करने की गुहार लगाई, क्योंकि वह बहुत ही नेक, शांति प्रिय और दयालु व्यक्ति थे। हालांकि, उनकी दलील बहरे कानों तक नहीं पहुँची।

जब पुलिस पार्टी भड़ाना गाँव से गुजर रही थी, गाँव के सिखों ने भाई तारू सिंह को बलपूर्वक मुक्त करने की कोशिश की, लेकिन भाई तारू सिंह ने उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए राजी कर लिया।

जब भाई तारू सिंह अपनी बहन के साथ पकड़े गए, तो कई सिखों ने उन्हें बचाने की पेशकश की। हालांकि, भाई तारू सिंह ने कहा कि वह मुगलों को दिखाना चाहते थे कि सिख मौत से नहीं डरते। उनके समझाने के बाद, भाई तारू सिंह ने अपनी बहन को बचाया और उन्हें सुरक्षित निकाल दिया। भाई तारू सिंह ने क्षमा मांगने से इंकार कर दिया। भाई तारू सिंह ने भाई मणि सिंह जी से अमृत लिया था और उनसे बहुत प्रभावित थे।

भाई तारू सिंह जेल की कोठरी में बंद थे और उन्हें कई तरह से प्रताड़ित किया गया था। जितना अधिक उन पर अत्याचार किया गया, उतने ही भाई तारू सिंह हर कीमत पर अपने विश्वास की रक्षा करने के लिए संकल्प में तेजी से आगे बढ़ते गए।

अंततः भाई तारू सिंह को जकारिया खान के सामने पेश किया गया और भाई तारू सिंह ने सिख अभिवादन के साथ उन्हें बधाई दी, वाहेगुरु जी की खालसा, वाहेगुरु जी की फतेह। जब देशद्रोह का आरोप लगाया गया, तो उन्होंने कहा, ''मैं अपनी जमीन पर खेती करके और कड़ी मेहनत करके अपनी आजीविका कमाता हूं। मैं नियमित रूप से भूमि कर का भुगतान करता हूं, जिसे अभिलेखों से सत्यापित किया जा सकता है। हम अपने मुंह से जो बचाते हैं, हम अपने भाइयों को देते हैं। हम आपसे कुछ नहीं लेते हैं। फिर आप हमें दंड क्यों देते हैं?''

जकारिया खान गुस्से में था और उचित जवाब के बारे में नहीं सोच सकता था। खान ने भाई तारू सिंह से पूछा कि उन्हें इतनी ताकत कहाँ से मिली। भाई तारू सिंह ने कहा कि उन्हें अपनी शक्ति केश (बाल) के माध्यम से मिली है, जैसा कि गुरु गोबिंद सिंह ने जवाब दिया था। तब नाराज होकर जकारिया खान ने उन्हें इस्लाम धर्म में परिवर्तित होने के लिए कहा। भाई तारू सिंह ने शांति से पूछा, ''क्या मैं कभी नहीं मरूँगा अगर मैं एक मुसलमान बन जाऊँ? क्या मुसलमान नहीं मरेंगे? मैं अपने धर्म से बेपरवाह एक दिन मरने जा रहा हूं, तो मुझे अपने विश्वास को क्यों छोड़ना चाहिए? जिस पर मुझे बहुत गर्व है? मुझे अपने प्यारे गुरु के पक्ष में गिरने के लिए ऐसा कृत्य क्यों करना चाहिए? अगर भगवान चाहते थे कि मैं मुस्लिम बनूं, तो मैं मुस्लिम माता-पिता के घर में पैदा हुआ होता। मुझे अपने जीवन से ज्यादा अपने विश्वास से प्यार है और मैं इसका हर कीमत पर बचाव करूंगा।''

जकारिया खान ने तब यह कहा, यदि आप इस्लाम में परिवर्तित होते हैं, तो आपको एक उच्च मुगल परिवार से एक सुंदर पत्नी दी जाएगी। आपको धन और उच्च पद दिया जाएगा। आप सुख और आनंद का जीवन व्यतीत करेंगे। यदि आप मना करते हैं, तो आपके बालों को जबरन काट देंगे और आपको गंभीर यातनाएं दी जाएंगी। भाई तारू सिंह ने दृढ़ता और विश्वासपूर्वक अपना विश्वास छोड़ने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा, ''भले

ही मुझे पूरी दुनिया के राजाओं की पेशकश की जाए, भले ही स्वर्ग की सभी सुंदरियों को मेरे निजी नौकरों के रूप में पेश किया जाए, भले ही पूरी दुनिया का खजाना मेरे चरणों में रखा जाए, मैं हार नहीं मानूंगा। मेरा धर्म इन सबसे कहीं अधिक मूल्यवान और प्रिय है। मैं अपने बालों को नहीं काटने दूँगा, एक भी बाल नहीं। मैं मरने के लिए तैयार हूँ। भगवान और गुरु मुझे अपने बालों के साथ मरने दें।''

खान ने भाई तारू सिंह के बाल काटने के लिए एक नाई को बुलाया। हालांकि, जब नाइयों ने भाई तारू सिंह के बाल काटने की कोशिश की, तो वह लोहे की तरह सख्त थे। भाई तारू सिंह ने कहा, "मैंने अपने बालों के साथ अपना विश्वास बनाए रखा है।ष् नाई ने भाई तारू सिंह के केश को काटने की कोशिश जारी रखने से इंकार कर दिया, इसलिए जकारिया खान ने एक मोची को बुलाया और उसे अपनी कुल्हाड़ी से भाई तारू सिंह की खोपड़ी काटने का आदेश दिया। यातना के बीच भाई तारू सिंह को केवल श्री जपुजी साहिब का पाठ करते सुना जा सकता था।

उसी शाम, जकारिया खान दिन की घटनाओं के बारे में सोच रहा था। उसने अचानक पाया कि वह पेशाब नहीं कर सकता है। यह भाई तारू सिंह को प्रताड़ित करने का पाप था। वह तड़प रहा था और उसे लगा कि वह पागल हो रहा है। उसके सभी चिकित्सा विशेषज्ञों ने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया, लेकिन कोई असर नहीं हुआ। जब चिकित्सकों के प्रयास विफल हो गए, तो जकारिया खान ने भाई सुग्ग सिंह को सिखों से क्षमा माँगने के लिए भेजा। उन्होंने उन्हें दल खालसा के नेता के पास भेजा। नेता ने कहा, ''जकारिया खान के मूत्र को पास कर देंगे अगर वह भाई तारू सिंह का जूता ले लेते हैं और खुद उसे अपने सिर पर मारते हैं।''

जब खान ने भाई तारू सिंह का जूता लिया और अपने सिर पर वार किया, तो वह पेशाब करने में सक्षम हुआ। दुर्भाग्य से, दर्द वापस आ गया। खान को हर दिन अधिक से अधिक अपने सिर को मारना पड़ता था । उस जूते की मदद से 22 दिनों तक जीवित रहने के बाद, गवर्नर की मृत्यु 1 जुलाई, 1745 को हुई। भाई तारू सिंह ने गवर्नर की मृत्यु के बारे में सुनकर इस नश्वर शरीर को त्याग दिया।

सारांश:

भाई तारू सिंह जी ने अपनी सामाजिक पहचान बचाने के लिए सिर की खोपड़ी तक का बलिदान दे दिया। धार्मिक आजादी को बचाने के लिए अपनी जान देने वाले भाई तारू सिंह जी आधुनिक काल में लोगो का प्रेरणासूत्र बने क्योंकि आधुनिक काल में लोग स्वार्थ के लिए अपनी पहचान ही खो रहे हैं। सिखी सिद्धांतों से टूटे हुए लोग इस हद तक पहुँच गये हैं कि केश कत्ल करके सिख की पहचान खो बैठे हैं। सिख सिद्धांत के अनुसार सर पर केश रखना बहुत जरूरी होता है। पर पंजाब के नौजवान केश कटा कर गायको और कलाकारों की नकल कर रहे हैं। इतना ही नहीं पंजाब की ही कुछ नौजवान लड़कीयां अश्लील और द्विअर्थी विडियों बनाकर सोशल मीडिया पर अपलोड कर रहे हैं जिसके कारण पूरे पंजाबी लोगो की पहचान को खत्म किया जा रहा है।

इस खोज पत्र में भाई तारू सिंह जी के योगदान को सामाजिक पहचान और धार्मिक आजादी के साथ जोड़कर यह पता करने की कोशिश की गई है कि कैसे भाई तारू सिंह ने उस वक्त मुगलों के खिलाफ लड़ते हुए अपनी पहचान को बचाने के लिए कोशिश किया और धार्मिक आजादी की बुलंद आवाज को ओर बुलंद किया।

इस खोज पत्र में यह पता चला कि भाई तारू सिंह जी का बलिदान आज के के नौजवानों का प्रेरणा बन सकती है जो सिखी सिद्धांतों और श्री गुरू ग्रंथ साहिब के सिद्धांतों से टूट चुके हैं। इन टूटे हुए नौजवानों को सामाजिक जिम्मेदारी का अहसास दिलाते हुए और धार्मिक आजादी का पाठ सिखाते हुए भाई तारू सिह जी का बलिदान समझाया जाए तो सामाज में धार्मिक आजादी का और सामाजिक पहचान को जिंदा रखा जा सकता है।

बिबलोग्राफी

1. फ्लावर, मार्शा; टेलर, एलिजाबेथ (2011). रिलिजन, रिलीजियस एथिक्स एंड नर्सिंग : न्यू : स्प्रिंगर पब्लिशिंग कंपनी आईएसबीएन 9780826106643.
2. फ्रेंच लुइस (2000). मर्त्यर्दोम इन द सिख ट्रेडिशन : प्लेयिंग थे “गेम ऑफ़ लव”. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। आईएसबीएन 9780195649475.
3. फ्रेंच लुइस; सिंह, पशौरा (2006). डीलिंग विथ देइतिएस: द रिचुअल वो इन साउथ एशिया, न्यू यॉर्क, आईएसबीएन 9780791467084.
4. गांधी, सुरजीत (2007), हिस्ट्री ऑफ सिख गुरुज़ रीटोल्ड 1606-1708, अटलांटिक पब्लिशर्स। आईएसबीएन 9788126908585.
5. गुप्ता, दीपंकर, मिसटेकन आइडेंटिटी.
6. हॉग, एम, ए. अब्राम्स, डी. (1990). "सोशल मोटीवेशनल सेल्फ एस्टीम एंड सोशल आइडेंटिटी" लंदन; हार्वेस्ट व्हीटशेफ.
7. कलसी, सेवा (2009)। सिखिस्म, इन्फोबेस प्रकाशन 9781438106472. आईएसबीएन
8. पोस्टमेस, टी. और ब्रांसकॉम्ब, एन. (2010). "सोर्सेज ऑफ़ सोशल आइडेंटिटी" कोर सोर्स, साइकोलॉजी प्रेस.
9. सागू, हरबंस (2001), बंदा सिंह बहादुर एंड सिख सोवेरेइग्न्टी, दीप एंड दीप पब्लिकेशन
10. सिंह हरजीत. फैथ एंड फिलोसफी ऑफ़ सिखिस्म. ज्ञान पब्लिशिंग हाउस। आईएसबीएन 9788178357218.
11. सिंह रणबीर (1968). द सिख वे ऑफ़ लाइफ. इंडिया पब्लिशर्स
12. सिंह, गुरबख्श (1927). द खालसा जनरल्स, कैनेडियन सिख स्टडी एंड टीचिंग सोसाइटी. आईएसबीएन 0969409249.
13. सिंह, एच, एस. (2005). द इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ सिखिस्म, नई दिल्ली, हेमकुंट प्रेस. आईएसबीएन 9788170103011.
14. सिंह, तेजा (1999). ए शोर्ट हिस्ट्री ऑफ़ द सिख्स: पटियाला: प्रकाशन ब्यूरो, पंजाबी विश्वविद्यालय. 9788173800078.
15. टर्नर, जॉन; रेनॉल्ड्स, के, जे, (2010) " द स्टोरी ऑफ़ सोशल आइडेंटिटी ". कोर सोर्सेज, साइकोलॉजी प्रेस।

अदर सोर्सेज :

1. ए नेशनल चैलेंजएड : विलेन्स एंड हरास्स्मेंट : विक्टिम्स ऑफ़ मिसटेकण आइडेंटिटी, सिख्स पे ए प्राइस फॉर टर्बनस बाय लॉरी गुडस्टीन और तामार लेविनसेप्ट, 19, 2001.
2. आर्टिकल बी सरदार दलजीत सिंह सिखिविकी सिखीविकी इनसायकलोमीडिया ऑफ़ द सिख्स.
3. कास ऑफ़ मिस्टेकन आइडेंटिटी? पब्लिकेशन डेट: वेडनेसडे, सितम्बर 26, 2001. सिख्स इम्फेसाइज़ दे आर नोट मिडिल ईस्टर्न, और मुस्लिम बाये इ-मेल गेओफ्फ़ फेन एट gfein@paweekly.com गेओफ्फ़ एस फेन
4. सिख्स इन युएस फील दे आर विक्टिम्स ऑफ़ मिस्टेकन आइडेंटिटी अपडेटेड : ट्यूसडे दिसम्बर 29, दिसंबर, 2015, 15:35 [IST], वाशिंगटन, 29 दिसंबर।

5. स्रोत: सिख अवेयरनेस सोसायटी।
6. युके सिख बिकम विक्टिम्स मिस्टेकन आइडेंटिटी ऑफ़ इस्लामोफोबिया सोर्स: डेली सिख अपडेट्स, 6 नवंबर, 2015 14:51 बजे।

मोबाईल: 9988351695
ई-मेल: raju_herro@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 55-60
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ : ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਆਧੂਨਿਕ ਕਾਲ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣ ਸਕਦੀ ਹੈ।

ਡਾ. ਪੰਡਿਤਰਾਓ ਚੰਦਰਸ਼ੇਖਰ ਧਰੇਨਵਰ
ਐਸੋਸਿਏਟ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ
ਪੋਸਟ ਗ੍ਰੇਜੂਏਟ ਗੋਰਮਿੰਟ ਕਾੱਲਜ, ਸੈਕਟਰ-46, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ

ਕੀ ਵਰਡਸ (ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਸ਼ਬਦ) — ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ, ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼, ਔਰਤ ਦੀ ਅਜਾਦੀ, ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ, ਬਸਵੱਨਾ, ਵਚਨ ਅੰਦੋਲਨ, ਅੱਲਮ ਪ੍ਰਭੂ, ਸਾਮਾਜਿਕ ਕ੍ਰਾਂਤੀ, ਕਰਨਾਟਕਾ, ਜੈਦੇਵ ਜੀ, ਨਾਮਦੇਵ ਜੀ, ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ, ਕੂੜਲਸੰਗਮਦੇਵਾ।

ਅਬਸਟਰੈਕਟ

ਔਰਤ ਦੀ ਅਜ਼ਾਦੀ ਲਈ ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਵਿੱਚ ਜੇਕਰ ਕੋਈ ਆਵਾਜ਼ ਉਠਾਈ ਸੀ ਉਹ ਸਿਰਫ ਤੇ ਸਿਰਫ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਹੀ ਸਨ। ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਵਿੱਚ ਜੰਮੀ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਕੰਨੜ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਵਿੱਚ ਵਚਨਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕਰਕੇ ਨਾ ਸਿਰਫ ਕੰਨੜ ਭਾਸ਼ਾ ਨੂੰ ਅਮੀਰ ਕਰਕੇ ਰੂਹਾਨੀਅਤ ਦੇ ਸ਼ਿਖਰ ਤੱਕ ਲੈ ਕੇ ਗਈ ਬਲਕਿ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਖੁਬ ਲੜੀ। ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਉਸ ਸੋਚ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਸੀ ਜਿਸ ਸੋਚ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਕਮਜੋਰ ਬਣਾ ਕੇ ਰੱਖਿਆ ਸੀ।

ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਭਗਵਾਨ ਨੂੰ ਵੀ ਅਪਣਾ ਪਤੀ ਮੰਨ ਕੇ ਪੂਜਾ ਇਸ ਹੱਦ ਤੱਕ ਕਰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਵੀ ਹੈਰਾਨ ਹੋ ਗਿਆ ਸੀ। ਉਸ ਵਕਤ ਦੇ ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਨੇ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਦੀ ਭਗਤੀ ਅਤੇ ਲਿਖਣ ਦੀ ਤਰਕ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਅਪਣੀ ਹਾਰ ਵੀ ਮੰਨ ਗਏ ਸਨ। ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਬਸਵੱਨਾ ਵੱਲੋਂ ਸਥਾਪਿਤ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਵਿੱਚ ਜਾ ਕੇ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਤਾਂ ਅੱਲਮ ਪ੍ਰਭੂ ਅਤੇ ਬਸਵੱਨਾ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਸਿਰ ਝੁੱਕ ਕੇ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਦੀ ਸਿਫਤ ਕੀਤੀ ਸੀ।

ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਦੀ ਉਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਨੂੰ ਜੇਕਰ ਅੱਜ ਕਲ ਦੀ ਔਰਤ ਅਪਣਾਉਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਆਧੂਨਿਕ ਕਾਲ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣ ਸਕਦੀ ਹੈ।ਇਸ ਖੋਜ਼ ਪੱਤਰ ਦੇ ਵਿੱਚ ਇਹ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਜੀ ਦੀ ਜੀਵਨਸ਼ੈਲੀ ਨੂੰ ਅਪਣਾ ਕੇ ਅੱਜਕਲ

ਦੀ ਔਰਤ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਅੱਜਕਲ ਦੀ ਔਰਤ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਵਰਗੇ ਲਿਖ ਕੇ ਅਪਣੇ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਨਗੇ ਤਾਂ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ ਨੂੰ ਬੁਲੰਦ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ :—

ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਕੰਨੜ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਕਵਿੱਤਰੀ ਸੀ। ਉਹ ਜਗਤ ਗੁਰੂ ਬਸਵੰਨਾ ਅਤੇ ਅੱਲਮਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਸਮਕਾਲੀਨ ਸੀ। ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਨੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਪੂਰਨ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਭੂ-ਪ੍ਰਮਾਤਮਾ ਦੇ ਸਮਰਪਿਤ ਕੀਤਾ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਉਹ 1160 ਈ. ਵਿਚ ਚੱਲ ਰਹੀ ਭਗਤੀ-ਲਹਿਰ ਦੀ ਮਹੱਤਵ-ਪੂਰਨ ਸਾਧਵੀ ਸੀ। ਉਸਦੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਵਿਚ ਸਮਾਜਿਕ-ਬੁਰਾਈਆਂ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਹੀ ਸੁਚੱਜੇ ਢੰਗ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਕੰਨੜ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਥਾਂ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਉਸਦੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਨੇ ਸਾਬਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ ਕਿ ਅਧਿਆਤਮਕ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤਕ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਇਸਤਰੀ ਕਿਸੇ ਤੋਂ ਘੱਟ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਭਾਵਨਾਤਮਕ ਬਾਣੀ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਸਾਧੂ-ਸੰਤਾਂ ਲਈ ਮਾਰਗ-ਦਰਸ਼ਕ ਸਿੱਧ ਹੋਈ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਦੁਨੀਆ ਅੱਗੇ ਇਹ ਸਿੱਧ ਕੀਤਾ ਹੈ ਕਿ ਆਤਮ-ਸ਼ਾਕਸ਼ਾਤਕਾਰ ਔਰਤਾਂ ਲਈ ਵੀ ਸੰਭਵ ਹੈ। ਸਰੀਰਿਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸੁੰਦਰ ਅਤੇ ਰਾਜ ਘਰਾਣੇ ਨਾਲ ਸਬੰਧ ਰੱਖਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਇਸ ਸਭ ਨੂੰ ਤੂੜੀ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਸਮਝਦੀ ਸੀ ਅਤੇ ਉਹ ਪ੍ਰਭੂ ਨੂੰ ਚੰਨਮਲਿਕਾਰਜੁਨਾ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਰਾਗਣੀ ਦੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਨਗੁਨਾਉਂਦੀ ਸੀ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਜਦੋਂ ਔਰਤ ਦਾ ਦਰਜਾ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਨੀਵਾਂ ਸੀ, ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਆਪਣੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਰਾਹੀਂ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਕ੍ਰਾਂਤੀ ਲੈ ਕੇ ਆਈ ਅਤੇ ਇਸਤਰੀ-ਰਤਨ ਬਣ ਕੇ ਛਾ ਗਈ। ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਸ਼ਿਮੋਗਾ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਦੇ ਉੜਤੜੀ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਪੈਦਾ ਹੋਈ ਸੀ। ਸ਼ਿਵ-ਭਗਤ, ਨਿਰਮਲ ਸ਼ੈੱਟੀ ਜੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਪਿਤਾ ਅਤੇ ਸੁਮਤੀ ਜੀ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਮਾਤਾ ਜੀ ਸਨ। ਬਚਪਨ ਤੋਂ ਹੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭੂ-ਭਗਤੀ ਵਿਚ ਲੀਨ ਦੇਖ ਕੇ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਾਤਾ-ਪਿਤਾ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਸਨ।

ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਅਸਧਾਰਣ ਸੁੰਦਰਤਾ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਉਸ ਰਾਜ ਦਾ ਰਾਜਾ, ਮਹਾਰਾਜ ਕੌਸ਼ਿਕ ਉਸ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਤੇ ਮਰ ਮਿਟਿਆ ਸੀ। ਉਸਨੂੰ ਇਕ ਵਾਰ ਦੇਖਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਹੀ ਰਾਜਾ ਇਹ ਸੋਚਣ ਲੱਗ ਗਿਆ ਸੀ ਕਿ ਉਸਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਅਧੂਰੀ ਹੈ। ਇਸ ਲਈ ਉਸਨੇ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੇ ਪਿਤਾ ਨਿਰਮਲ ਸ਼ੈੱਟੀ ਨੂੰ ਵਿਆਹ ਦਾ ਪ੍ਰਸਤਾਵ ਭੇਜ ਦਿੱਤਾ। ਆਪਣੇ ਮਾਤਾ-ਪਿਤਾ ਨੂੰ ਇਸ ਪ੍ਰਸਤਾਵ ਤੋਂ ਮਨ੍ਹਾਂ ਕਰਨ ਤੋਂ ਅਸਮਰੱਥ ਦੇਖ ਕੇ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਤਿੰਨ ਸ਼ਰਤਾਂ ਰੱਖ ਕੇ ਵਿਆਹ ਲਈ ਹਾਮੀ ਭਰ ਦਿੱਤੀ। ਤਿੰਨ ਸ਼ਰਤਾਂ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਉਸਨੇ ਪਾਠ-ਪੂਜਾ ਕਰਨ ਦੀ ਸੰਪੂਰਨ ਸੁਤੰਰਤਾ ਮੰਗੀ ਅਤੇ ਕਿਹਾ ਸੀ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸ਼ਰਤਾਂ ਦੇ ਟੁੱਟਣ ਦੀ ਸੂਰਤ ਵਿੱਚ ਉਹ ਮਹਿਲ ਛੱਡ ਕੇ ਚਲੀ ਜਾਏਗੀ। ਮਹਾਰਾਜਾ ਕੌਸ਼ਿਕ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰੀਆਂ ਸ਼ਰਤਾਂ ਨੂੰ ਮੰਨਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਨੂੰ ਵਿਆਹ ਕੇ ਆਪਣੇ ਰਾਜ-ਮਹਿਲ ਵਿਚ ਰਾਣੀ ਬਣਾ ਕੇ ਲੈ ਆਇਆ। ਕੁੱਝ ਸਮੇਂ ਬਾਅਦ ਜਦੋਂ ਮਹਾਰਾਜਾ ਕੌਸ਼ਿਕ ਨੇ ਤਿੰਨਾਂ ਸ਼ਰਤਾਂ ਨੂੰ ਤੋੜ ਦਿੱਤਾ ਤਾਂ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਗ੍ਰਹਿਸਥੀ-ਜੀਵਨ ਤਿਆਗ ਕੇ ਜਗਤ ਉਧਾਰ ਲਈ ਮਹਿਲ ਛੱਡ ਕੇ ਚਲੀ ਗਈ। ਸਭ ਸੁੱਖ-ਸੰਪਤੀ ਅਤੇ ਰਾਜ-ਭਾਗ ਤਿਆਗਣ ਵਾਲੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਮੱਥੇ ਤੇ ਭਭੂਤੀ ਮੱਲ ਕੇ, ਨਗਨ ਅਵੱਸਥਾ ਵਿਚ ਸ਼ਿਵ-ਨਾਮ ਜੱਪਣਾ ਹੀ ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਉਦੇਸ਼ ਸਮਝਦੀ ਸੀ। ਹੱਥ ਵਿਚ ਰੁਦਰਾਖਸ਼ ਦੀ ਮਾਲਾ, ਗਿਆਨੀ-ਧਿਆਨੀ ਸੰਤਾਂ ਦੇ ਚਰਨਾਂ ਵਿਚ ਸਵਰਗ ਦੇਖਣ ਵਾਲੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, ਚੱਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ ਨੂੰ ਅਪਣੇ ਪਤੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਦੇਖਦੀ ਸੀ। ਕਠੋਰ ਸਮਾਜਿਕ ਵਿਰੋਧ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ, ਸ਼ਾਂਤ-ਚਿੱਤ ਹੋ ਕੇ ਚੇਂਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ ਦਾ ਨਾਮ ਜੱਪਣ ਵਾਲੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਅਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਫਰਮਾਉਂਦੀ:-

"ਪਹਾੜੀ ਤੇ ਘਰ ਬਣਾ ਕੇ,
ਜੰਗਲੀ ਜਾਨਵਰਾਂ ਤੋਂ ਕਿਉਂ ਡਰੀਏ ?

ਸਾਗਰ-ਕੰਢੇ ਘਰ ਬਣਾ ਕੇ,
ਲਹਿਰਾਂ ਤੋਂ ਕਿਉਂ ਡਰੀਏ ?
ਬਜ਼ਾਰ ਵਿਚ ਘਰ ਬਣਾ ਕੇ,
ਸ਼ੋਰ-ਸ਼ਰਾਬੇ ਤੋਂ ਕਿਉਂ ਡਰੀਏ ?"

ਅਪਣੀ ਹਰ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, ਚੱਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ ਦਾ ਨਾਮ ਗੁਣ-ਗੁਣਾਕੇ, ਜੀਵਨ ਦੇ ਉਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਅਧਿਆਤਮਿਕਤਾ ਦੇ ਮਹੱਤਵ 'ਤੇ ਜ਼ੋਰ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਚੇਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ ਦੇ ਬਿਰਹਾ ਦੀ ਤੜਪ ਵਿਚ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਤੀਰਥ ਸਥਾਨ 'ਸ੍ਰੀ ਸ਼ੈਲ' ਵੱਲ ਤੁਰ ਪਈ। ਉਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਅੱਲਮਪ੍ਰਭੂ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਲਈ 'ਕਲਿਆਣ' ਚਲੀ ਗਈ। ਉਸ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਯੋਗ-ਸਾਧਨਾ ਲਈ ਅਨੁਭਵ-ਮੰਡਪ ਕਲਿਆਣ ਵਿੱਚ ਸੀ। ਅੱਲਮਪ੍ਰਭੂ ਉਸ ਅਨੁਭਵ-ਮੰਡਪ ਦਾ ਅਧਿਪਤੀ ਸੀ । ਜਦੋਂ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਅਨੁਭਵ-ਮੰਡਪ ਪਹੁੰਚੀ ਤਾਂ ਉਸਦੀ ਭਰ ਜਵਾਨੀ ਵਿਚ ਕੇਸਾਂ ਨਾਲ ਢੱਕੇ ਨਗਨ ਸਰੀਰ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਸਾਰੇ ਗਿਆਨੀ-ਧਿਆਨੀ ਹੈਰਾਨ ਰਹਿ ਗਏ ਅਤੇ ਕ੍ਰੋਧਿਤ ਹੋ ਗਏ। ਉਸਦੀ ਇਸ ਅਵਸਥਾ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਅਲੱਮਪ੍ਰਭੂ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਫਰਮਾਉਂਦੇ ਹਨ :-

ਜੋਬਨ ਦੀ ਸਤੀ ਤੂੰ ਇੱਥੇ ਕਿਉਂ ਆਈ?
ਦੇਖ ਕੇ ਸਤੀ ਨੂੰ, ਕ੍ਰੋਧਿਤ ਹਨ ਗਿਆਨੀ,
ਤੇਰੇ ਪਤੀ ਦੀ ਸ਼ਿਕਾਇਤ ਬੋਲਣੀ ਤਾਂ ਬੈਠ,
ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਚਲੀ ਜਾ ਮਾਤਾ'
ਤਨ ਤੁਹਾਡਾ ਰੂਪ ਹੋਇਆ,
ਕਿਸ ਲਈ ਕਰਾਂ?
ਮਨ ਤੁਹਾਡਾ ਰੂਪ ਹੋਇਆ,
ਕਿਸਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਾਂ ?
ਪ੍ਰਾਣ ਤੁਹਾਡਾ ਰੂਪ ਹੋਇਆ,
ਕਿਸਦੀ ਅਰਾਧਨਾ ਕਰਾਂ ?
ਸਮਝ ਹੀ ਤੁਹਾਡੀ ਹੋਈ,
ਤਾਂ ਕਿਸ ਨੂੰ ਸਮਝਾਂ ?
ਚੇਂਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਈਆ,
ਤੁਹਾਡੇ ਰੂਪ ਤੋਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਸਮਝਦੇ,
ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਹੀ ਭੁਲਾ ਦਿੱਤਾ।

ਵਿਆਖਿਆ: ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦਾ ਵੈਰਾਗ ਭਰਿਆ ਤਰਲਾ ਹੈ ਕਿ ਮੇਰਾ ਤਨ ਤੁਹਾਡਾ ਰੂਪ ਹੋ ਚੁੱਕਾ ਹੈ। ਮੇਰਾ ਮਨ ਵੀ ਤੁਹਾਡਾ ਰੂਪ ਹੋ ਚੁੱਕਾ ਹੈ। ਮੇਰੇ ਪ੍ਰਾਣ ਵੀ ਇੰਝ ਲੱਗਦੈ ਜਿਵੇਂ ਤੁਹਾਡੇ ਪ੍ਰਾਣ ਹੋਣ। ਹੇ ਚੱਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨੱਈਆ! ਮੈਨੂੰ ਇਹ ਸਮਝ ਨਹੀਂ ਆਉਂਦੀ ਕਿ ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਮਝਾਂ ਅਤੇ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਤੁਹਾਡੀ ਅਰਾਧਨਾ ਕਰਾਂ! ਅਤੇ ਕਿਸ ਲਈ ਕਰਾਂ । ਜੇ ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਾਂ ਤਾਂ ਤੁਹਾਡੇ ਰੂਪ ਤੋ ਹੀ ਮੇਰਾ ਰੂਪ ਉਪਜਿਆ ਹੈ । ਪਰ ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਭੁਲਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ

ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੇ ਬਚਨ ਤੇ ਵਿਆਖਿਆ:-

ਧਰਤੀ ਅੰਦਰ ਲੁਕੀ ਸ਼ਕਤੀ ਵਰਗੇ,

ਫੁੱਲ ਅੰਦਰ ਲੁਕੀ ਮਿਠਾਸ ਵਰਗੇ,
ਖਾਨ ਵਿਚ ਲੁਕੇ ਸੋਨੇ ਵਰਗੇ,
ਸਰ੍ਹੋਂ ਵਿਚ ਲੁਕੇ, ਤੇਲ ਵਰਗੇ,
ਬਿਰਖ ਅੰਦਰ ਲੁੱਕੀ ਚਮਕ ਵਰਗੇ,
ਮਨ ਅੰਦਰ ਲੁਕੇ ਬ੍ਰਹਮ ਵਰਗੇ,
ਚੇਂਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ, ਤੂੰ ਕਿਸ ਵਰਗਾ,
ਕੋਈ ਨਾ ਜਾਣੇ !

ਵਿਆਖਿਆ: ਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਰੰਗਾਂ ਦੀਆਂ ਸਿਫਤਾਂ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਤਰਾਂ ਦੁਆਰਾ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਪ੍ਰਭੂ ਅੱਗੇ ਬੇਨਤੀ ਕਰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਜਿਵੇਂ ਧਰਤੀ ਸਭ ਤੋਂ ਤਾਕਤਵਰ ਸਮਝੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ; ਜਿਵੇਂ ਹਰ ਫਲ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਇਕ ਛੁਪੀ ਹੋਈ ਮਿਠਾਸ ਰੱਖਦਾ ਹੈ; ਜਿਵੇਂ ਕਿਸੇ ਖਾਣ ਵਿਚ ਕੁਝ ਧਾਤਾਂ ਸੋਨੇ ਵਰਗੀਆਂ ਚਮਕੀਲੀਆਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ; ਜਿਵੇਂ ਸਰ੍ਹੋਂ ਦੇ ਬੀਜ ਵਿਚ ਤੇਲ ਲੁਕਿਆ ਹੋਇਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ; ਜਿਵੇਂ ਦਰਖ਼ਤ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਚਮਕ ਰੱਖਦੇ ਹਨ; ਜਿਵੇਂ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਮਨ ਹੀ ਬ੍ਰਹਮ ਹੈ, ਹੇ ਚੇਂਨਮਲਿਕਾਰਜੁਨ (ਪ੍ਰਭੂ) ਤਿਵੇਂ ਹੀ ਤੂੰ ਵੀ ਦੱਸ ਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚੋਂ ਤੂੰ ਕਿਸ ਵਰਗਾ ਹੈਂ? ਕਿਉਂਕਿ ਕੋਈ ਵੀ ਤੈਨੂੰ ਅੱਜ ਤੱਕ ਜਾਣ ਨਹੀਂ ਸਕਿਆ।

ਚੱਨਮਲਿਕਾਰਜੁਨਾ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਪ੍ਰਭੂ ਮੰਨਣ ਵਾਲੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੁਨੀਆਂ ਦੀਆਂ ਅਦਭੁੱਤ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਨਾਲ ਤੁਲਨਾ ਕਰਕੇ ਪ੍ਰਭੂ ਨੂੰ ਲੱਭਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਬਚਨ ਵਿਚ ਉਹ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਕੁਦਰਤੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਨਾਲ ਜੁੜ ਕੇ ਆਪਣੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਬਾਰਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਵਿਚ ਜਦ ਔਰਤ ਲਈ ਪੁਰਸ਼ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਅਧਿਕਾਰ ਨਹੀਂ ਸੀ ਤਦ ਹੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਸੋਚ ਚਾਰ-ਦੀਵਾਰੀ 'ਚੋਂ ਨਿਕਲਕੇ ਪ੍ਰਭੂ ਦੀ ਕੁਦਰਤੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਨਾਲ ਜੁੜ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਬਚਨ ਸਾਬਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਸੋਚ ਅਸੀਮ ਸੀ ।

ਇਸ ਬਚਨ ਦੁਆਰਾ ਸਮਝਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਕ ਸੱਚਾ ਭਗਤ ਆਪਣੇ ਪ੍ਰਭੂ ਵਾਸਤੇ ਕਿਸ ਹੱਦ ਤੱਕ ਆਪਾ ਸਮਰਪਣ ਕਰਨ ਵਾਸਤੇ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਪ੍ਰਭੂ ਦਾ ਸਿਮਰਨ ਕਰਦੀ-ਕਰਦੀ ਉਸ ਵਿਚ ਇਤਨਾ ਘੁਲ-ਮਿਲ ਗਈ ਹੈ ਕਿ ਉਸੇ ਦੇ ਵਿਚ ਹੀ ਸਮਾ ਗਈ ਹੈ। ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੂਫੀ-ਸੰਤ ਸਾਈਂ ਬੁੱਲ੍ਹੇ ਸ਼ਾਹ ਜੀ ਪ੍ਰਭੂ ਨਾਲ ਇਕ-ਮਿਕ ਹੋ ਜਾਣ ਤੋਂ ਬਾਦ ਆਖਦੇ ਹਨ -

" ਮੈਂ ਰਾਂਝਾ ਵਿਚ ਰਾਂਝਣ ਦੇ ਮੈਂ
ਰਾਂਝਾ ਰਾਂਝਾ ਹੋਈ।
ਸੱਦੋ ਨੀ ਮੈਨੂੰ ਧੀਦੋ ਰਾਂਝਾ
ਹੀਰ ਨਾ ਆਖੋ ਕੋਈ।"

ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣ ਸਕਦੀ ਹੈ:—

ਬਾਰ੍ਹਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿਚ ਜਦੋਂ ਇਸਤਰੀ, ਪੁਰਸ਼-ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਦੀ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਲਾਮ ਸੀ, ਇਸਤਰੀ ਵਰਗ ਵਿਚੋਂ ਐਸੇ ਇਨਕਲਾਬੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਅਮਲੀ ਜਾਮਾ ਪਹਿਨਾਉਣ ਵਾਲੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਸੋਚ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀ ਕਲਮ ਨੂੰ ਨਤਮਸਤਕ ਹੋਣਾ ਬਣਦਾ ਹੈ।

ਅਲੱਮਪ੍ਰਭੂ ਦੇ ਕਠੋਰ ਸ਼ਬਦਾਂ ਨੂੰ ਨਿਡਰਤਾ ਨਾਲ ਸੁਣ ਕੇ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਬੋਲੀ, 'ਚੱਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ ਹੀ ਮੇਰਾ ਪਤੀ ਹੈ। ਚੱਨਮਲਿੱਕਾਰਜੁਨਾ ਹੀ ਦੁਨੀਆ ਦਾ ਪਤੀ ਹੈ। ਸਾਰੇ ਗਿਆਨੀ-ਧਿਆਨੀ ਇਸਤਰੀਆਂ ਦੇ ਸਮਾਨ ਹਨ। ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੇ

ਮਹਾਨ ਵਿਚਾਰਾਂ ਨੂੰ ਸੁਣ ਕੇ ਅਤੇ ਅਪਾਰ ਸ਼ਿਵ-ਭਗਤ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਅੱਲਮਪ੍ਰਭੂ, ਬਸਵੰਨਾ ਅਤੇ ਹੋਰ ਗਿਆਨੀ ਲੋਕ ਉਹਨਾ ਸਾਹਮਣੇ ਨਤਮਸਤਕ ਹੋ ਗਏ। "ਕਲਿਆਣ" ਵਿਖੇ ਕੁਝ ਸਮਾਂ ਗਿਆਨੀਆਂ ਨਾਲ ਬਿਤਾਉਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਮੁੜ 'ਸ੍ਰੀ ਸ਼ੈਲ' ਵੱਲ ਤੁਰ ਪਈ। 'ਸ੍ਰੀ ਸ਼ੈਲ' ਵਿਖੇ ਕੁਝ ਸਾਲ ਰਹਿਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ 'ਕਦੜੀ ਵਣ' ਚਲੀ ਗਈ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਜੀਵਨ ਬਾਰੇ ਕੋਈ ਇਤਿਹਾਸਕ ਰਿਕਾਰਡ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ।

ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਵੱਲੋਂ ਦਿੱਤੀ ਗਈ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨਾ ਸਿਰਫ ਉਸ ਵਕਤ ਦੀ ਔਰਤਾਂ ਲਈ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਬਣੀ ਹੋਈ ਸੀ ਬਲਕਿ ਅੱਜ ਕਲ ਦੀ ਔਰਤ ਲਈ ਵੀ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਬਣ ਸਕਦੀ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਸਦਾ ਲਈ ਸੱਚ ਹੈ। ਸਾਮਾਜਿਕ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨੂੰ ਹਰ ਪੱਧਰ ਤੇ ਫੈਲਾਉਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ। ਉੱਚ ਸਿੱਖਿਆ ਸੰਸਥਾਣ ਦੇ ਵਿੱਚ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਬਾਰੇ ਵੱਡੀ ਖੋਜ਼ ਹੋੇਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੈ ਜੇਕਰ ਅੱਕਾ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, ਲੱਲ ਦੈਦ ਅਤੇ ਮੀਰਾਂਬਾਈ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨੂੰ ਸਮਾਜ ਦੇ ਹਰ ਪਾਸੇ ਜੇਕਰ ਪਹੁੰਚਾਇਆ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਆਧੁਨਿਕ ਕਾਲ ਦੇ ਵਿੱਚ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਤਬਦੀਲੀਆਂ ਲਿਆਈਆਂ ਜਾ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ।

ਸਿੱਟਾ:—

ਇਸ ਖੋਜ਼ ਪੱਤਰ ਵਿੱਚ ਇਹ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਔਰਤ ਦੀ ਅਜ਼ਾਦੀ ਲਈ ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੇ ਵਿੱਚ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਨੇ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਸੀ। ਕਰਨਾਟਕ ਦੇ ਵਿੱਚ ਜੰਮੀ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਕੰਨੜ ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਵਿੱਚ ਵਚਨਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕਰਕੇ ਨਾ ਸਿਰਫ ਕੰਨੜ ਭਾਸ਼ਾ ਨੂੰ ਅਮੀਰ ਕਰਕੇ ਰੂਹਾਨੀਅਤ ਦੇ ਸ਼ਿਖਰ ਤੱਕ ਲੈ ਕੇ ਗਈ ਬਲਕਿ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਖੁਬ ਲੜੀ। ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਉਸ ਸੋਚ ਦੇ ਖਿਲਾਫ ਸੀ ਜਿਸ ਸੋਚ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਕਮਜੋਰ ਬਣਾ ਕੇ ਰੱਖਿਆ ਸੀ।

ਖੋਜ਼ ਪੱਤਰ ਵਿੱਚ ਇਹ ਵੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਭਗਵਾਨ ਨੂੰ ਅਪਣਾ ਪਤੀ ਮੰਨ ਕੇ ਪੂਜਾ ਕੀਤੀ ਸੀ। ਉਸ ਵਕਤ ਦੇ ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸਮਾਜ ਨੇ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਦੀ ਭਗਤੀ ਅਤੇ ਲਿਖਣ ਦੀ ਤਰਕ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕਿਵੇਂੇ ਅਪਣੀ ਹਾਰ ਵੀ ਮੰਨ ਗਏ ਸਨ। ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਬਸਵੱਨਾ ਵੱਲੋਂ ਸਥਾਪਿਤ ਅਨੁਭਵ ਮੰਟਪ ਵਿੱਚ ਜਾ ਕੇ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਕਿਵੇਂ ਮਕਬੂਲ ਕੀਤੀ ਸੀ।

ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਦੀ ਉਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਨੂੰ ਜੇਕਰ ਅੱਜ ਕਲ ਦੀ ਔਰਤ ਅਪਣਾਉਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਬਾਰ੍ਹਵੀ ਸਦੀ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਬੁਲੰਦ ਆਵਾਜ਼ ਆਧੂਨਿਕ ਕਾਲ ਦੀ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣ ਸਕਦੀ ਹੈ।ਇਸ ਖੋਜ਼ ਪੱਤਰ ਦੇ ਵਿੱਚ ਇਹ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਜੀ ਦੀ ਜੀਵਨਸ਼ੈਲੀ ਨੂੰ ਅਪਣਾ ਕੇ ਅੱਜਕਲ ਦੀ ਔਰਤ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਪਰਿਵਰਤਨ ਲਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਅੱਜਕਲ ਦੀ ਔਰਤ ਅੱਕਾ ਮਾਂਹਦੇਵੀ ਵਰਗੇ ਲਿਖ ਕੇ ਅਪਣੇ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਨਗੇ ਤਾਂ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦੀ ਆਵਾਜ ਨੂੰ ਬੁਲੰਦ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

ਬਿਬਲੀਓਗ੍ਰਾਫੀ

1. ਜਗਤ ਗੁਰੂ ਮਾਤੇ ਮਹਾਂਦੇਵੀ, 1965। ਤਰੰਗੀਣੀ। ਵਿਸ਼ਵਾਕਲਿਆਣਾ ਮਿਸ਼ਨ, ਬਸਵਾ ਮੰਟਪਾ, ਰਾਜਾ ਜੀ ਨਗਰ, ਬੈਂਗਲੂਰੁ, ਕਰਨਾਟਕਾ।
2. ਲੰਗੂਟੀ ਸਿੱਦੱਣਾ, 2021। ਸਿੱਦ ਕਲਿਆਣਾ, ਚਿੱਤਰਗੀ, ਸ੍ਰੀ ਵਿਜਿਯ ਮਹਾਂਨਤੇਸ਼ਵਰ ਧਰਮਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਮੰਡਲ, ਇਲਕੱਲ, ਜਿਲ੍ਹਾ—ਬਾਗਲਕੋਟ, ਕਰਨਾਟਕਾ।
3. ਹਾਦੇਵੱਯਾ, ਟੀ.ਆਰ. 2012। ਬਸਵੱਨਾਵਰ ਸਮਗ੍ਰ ਵਚਨਗਲੂ। ਬਸਵਾ ਸਮਿਤੀ, ਬੈਂਗਲੂਰੁ।

4. ਸਿੰਘ ਸਾਹਿਬ, ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ
5. ਸਿੰਘ ਖੁਸ਼ਵੰਤ, 1960, ਰੀਵਿਊ ਆਫ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਐਂਡ ਸਿੱਖ ਰਿਲਿਜੀਅਨ।

ਮੋਬਾਇਲ : 9988351695
ਈਮੇਲ : raju_herro@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 61-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गांधीवादी इतिहासकार धर्मपाल के योगदान का ऐतिहासिक अध्ययन

Shailesh bahadur singh
Research scholar history,
Dr. Arun Kumar Singh
Association professor history,
D. A. V. P. G. College AZAMGARH UP

प्रस्तावना-

जब – जब समाज में प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हुई, तब- तब उस स्थिति से उबरने के लिए आवश्यकता अनुरूप विभिन्न महान विभूतियों का अवतरण स्थिति काल परिस्थिति को अनुकूल बनाने के लिए, ओजस्वी नेतृत्व के माध्यम से स्थिति जन्य समस्याओं के निराकरण हेतु कुछ महान विभूतियों का अवतरण हुआ।

ऐसे ही गांधीवादी विचारधारा पोशाक स्वतंत्रता सेनानी इतिहासकार एवं दार्शनिक गुणो से युक्त महान प्रतिभा संपन्न धर्मपाल का प्रादुर्भाव उत्तर प्रदेश में हुआ था। इन्होंने औपनिवेशिक शासन के समय भारतीयों की शिक्षा, प्रौद्योगिकी, कला तथा कृषि से संबंधित अंग्रेजी दस्तावेजों का वृहद अध्ययन किया। इन्हीं दस्तावेजों के अध्ययन के माध्यम से यह बताया कि कैसे ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समृद्ध का दोहन अंग्रेजी शासन को मजबूती प्रदान करने के लिए किया। इसके बदले भारतीयों को कुछ नहीं मिलता था । बल्कि अंग्रेज भारत की अपार संपदा का दोहन अपने हित में किया करते थे।धर्मपाल ने प्राचीन कालीन आधारित भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला। जिसमें उन्होंने चारों वर्णों में व्याप्त संगति का अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले विभेदन के प्रयास को उजागर किया तथा गुरुकुल आधारित शिक्षा व्यवस्था का वृहद अध्ययन किया था। तथा उन्होंने भारत की तकनीकी, उन्नत कृषि तथा युद्ध में प्रयोग होने वाले मोटार बनाने की विधि, कागज बनाने की विधि आदि पर व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया था।

अध्ययन का उद्देश्य-

1. धर्मपाल के योगदान का वर्णन करना।
2. धर्मपाल के इतिहास संबंधित शोध के बारे में जानकारी प्रदान करना।
3. धर्मपाल के राष्ट्र के संदर्भ में कृतकार्यों को जानना।

परिचय-

धर्मपाल का जन्म कांधला में हुआ था। जो वर्तमान में उत्तर प्रदेश के शामली जिले का हिस्सा है। धर्मपाल का जन्म 19 फरवरी सन् 1922 में हुआ था। उस समय उत्तर प्रदेश संयुक्त प्रांत के अंतर्गत आता था। धर्मपाल की आरंभिक शिक्षा

लाहौर से प्रारंभ हुआ, जहां वे दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल से अपनी स्कूली शिक्षा को प्रारंभ किया तथा बीएससी की पढ़ाई उन्होंने लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज से भौतिक शास्त्र की पढ़ाई किया।

धर्मपाल स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेने के लिए उन्होंने आगे की शिक्षा छोड़ दिया था। क्योंकि धर्मपाल ने गांधी जी के आवाहन पर भारत छोड़ो आंदोलन में कूद पड़े तथा इसके पर्यंत उन्होंने देश सेवा का जो प्रण लिया जीवन पर्यंत उसमें संलग्न रहे।

धर्मपाल के कृत कार्य-

धर्मपाल महान गांधीवादी विचारक, कुशल इतिहासकार जो भारतीय इतिहास नवलेखन में युगांतरकारी स्थान प्रस्तुत किया। धर्मपाल जी गांधीवादी युग में पहले – बढे गांधीवादी दर्शन से प्रभावित थे। धर्मपाल बचपन से महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए आंदोलन से प्रभावित थे। उस दौरान (स्वतंत्रता से पूर्व) गांधी के समक्ष जिस भारतीय सभ्यता को स्थापित करने की चुनौती मौजूद थी, उन सभी चुनौतियों को गांधी से भी आगे बढ़कर स्वीकार करते हुए धर्मपाल ने अपने खोज उन्मुखी प्रवृत्तियों से जो निष्कर्ष निकाले हैं। उन निष्कर्षों की चर्चा भारतीय बौद्धिक जगत आज भी हलचल मचाये हुए हैं।

धर्मपाल ने अपने ऐतिहासिक अध्ययन में बताया कि 18वीं शताब्दी में भारत साक्षरता के मामले में यूरोप से आगे था। इतना ही नहीं भारत की शिक्षा व्यवस्था में सभी जाति तथा सभी धर्म का प्रवेश होना बताया है।तथा उन्होंने 18वीं शताब्दी में "यंत्र ज्ञान एवं तकनीकी" नामक पुस्तक में इस्पात उत्पादन की उन्नत विधि, मोटर बनाने की उन्नत तकनीकी, कागज बनाने की विधियों के साथ कृषि की उन्नत स्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत किया।

धर्मपाल द्वारा ही यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि भारत वर्ष में गोवध की परंपरा और इसका संस्थागत रूप देने में अंग्रेजों का ही प्रमुख हाथ रहा है।

निष्कर्ष-

अतः निष्कर्ष रूप में यह देखा जा सकता है कि धर्मपाल के ऐतिहासिक अध्ययन से अंग्रेजी शासन से पूर्व की भारत की शिक्षा व्यवस्था, समाज, उद्योग आदि पर जो व्यापक शोध प्रस्तुत किया वह आज भी चर्चा का विषय बना हुआ है। जो भारत के उत्थान में सहायक है, तथा भारतीयों के गौरव को बढ़ा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. गांधी को समझें- धर्मपाल
2. भारत का पुर्नाबोध- धर्मपाल
3. भारतीय मानस एवं काल- धर्मपाल
4. भारत की परंपरा- धर्मपाल
5. 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा- धर्मपाल
6. भारत में अंग्रेजी राज्य- सुंदरलाल
7. हिंद स्वराज- महात्मा गांधी
8. भारत की यात्रा- इत्सिंग

Mob.7784827373

Email. Shaileshbsc9838@gmail.com

Mob. 8318225375

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 63-64
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० भीमराव अम्बेडकर का महाड़ सत्याग्रह का समीक्षात्मक अध्ययन

DINESH KUMAR
Research Scholar history,
Dr. Shrikrishna Singh
Professor history ,
P. K. K. Government degree college Jalabad Shahjahanpur

प्रस्तावना

प्राचीन काल से भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था मौजूद थी वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था कर्म प्रधान पर आधारित थी परंतु उत्तर वैदिक काल से यह व्यवस्था जन्म आधारित हो गई जो वर्तमान समय में जातिगत व्यवस्था के रूप में मौजूद है।

डॉ भीमराव अम्बेडकर के पूर्व से ही भारतीय समाज में मौजूद सामाजिक भेदभाव के उन्मूलन के लिए राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे विभिन्न सामाजिक सुधारकों भारत में व्याप्त सामाजिक का असमानता को खत्म करने के लिए संघर्ष किया।

डॉ भीमराव अम्बेडकर ने बचपन से जातीय भेदभाव का सामना किया परंतु इन समस्याओं के बावजूद भी इन्होंने अपने शिक्षा पूर्ण की और भारतीय समाज में सामाजिक न्याय व असमानता को खत्म करने व बौद्धिक स्वतंत्रता की दिशा में कई महत्वपूर्ण आंदोलन का नेतृत्व किया। डॉ भीमराव अम्बेडकर के द्वारा चलाए गए आंदोलन का उद्देश्य समाज में मौजूद असमानता और भेदभाव को समाप्त करना था जिसमें महाड़ सत्याग्रह आंदोलन की विशेष भूमिका रही।

अध्ययन का उद्देश्य

1.महाड़ सत्याग्रह में डॉ भीमराव अंबेडकर का योगदान।
2. महाड़ सत्याग्रह में शामिल हुए दलित वर्गों का योगदान।
3. आंदोलन में सम्मिलित अन्य उच्च वर्ग नेताओं का योगदान।

महाड़ सत्याग्रह

महाड़ रायगढ़ जिले में स्थित है, जो वर्तमान समय में मुंबई विधान परिषद का अंग है। सन 1923 में बबंई सरकार ने दलितों के लिए एक संकल्प पत्र पारित किया जिसमें 1926 में कुछ संशोधन के साथ पुनः पुष्टि की गई। इस संकल्प पत्र के तहत महाड नगर पालिका ने चवदार टैंक को अछूतों के लिए खोल दिया परंतु इस संकल्प पत्र के बावजूद भी सवर्ण हिंदुओं के विरोध के कारण दलित अपने अधिकारों से वंचित रहे। इसके बाद कोलवा के दलित वर्गों ने 19 व 20

मार्च 1927 को सम्मेलन का आयोजन किया जिसके अध्यक्ष डॉ भीमराव अम्बेडकर थे। इस सम्मेलन में सवण हिंदू नेता भी शामिल थे जिनमें सुरेंद्रनाथ टिपणिस, सूबेदार सावरकर और अनंत राव चित्रे थे। इस सम्मेलन में गुजरात व महाराष्ट्र जिले के दलित वर्गों के लगभग 10000 प्रतिनिधि नेता व कार्यकर्ता शामिल हुए।

इस सम्मेलन में अम्बेडकर के अभिभाषण में दलित स्त्री पुरुषों को संबोधित करते हुए उन्होंने आग्रह किया कि वह अपनी दासता पूर्ण विहीन, आत्मसम्मान वाला जीवन जिएं। जिसके लिए उन्हें सड़ा गला मांस जैसे खाद्य पदार्थ को त्यागना व किसी भी मृतक का शव उठाने से मना करना जैसी बात उनके समक्ष रखी। इसके अलावा उन्होंने अपने लोगों के लिए सरकार से आग्रह किया कि उन्हें भी सेना, नौसेना और पुलिस में प्रवेश पर लगे सरकारी प्रतिबंधों के खिलाफ आंदोलन करने की अपील की।

इस सम्मेलन में उन्होंने संकल्प पत्र जारी किया और उन्होंने हिंदुओं से आग्रह किया कि दलितों को उनके अधिकार दिलाने में उनकी सहायता करें और उन्हें नौकरियों में शामिल करने व अछूतों छात्रों को खाना देने का अनुरोध किया। इसके अलावा सरकार से अनुरोध किया कि दलितों को सड़ा गला में मांस खाने से रोके मद्यपान निषेध कानून लागू करें और दलित बच्चों के निशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देना व छात्रावास उपलब्ध कराने का आग्रह किया।

महाड में 1927 में अशांति फैल गई क्योंकि कुछ आक्रांताओं द्वारा यह कह गया कि दलित उनके धार्मिक वीरेश्वर मंदिर में प्रवेश करने वाले हैं। जिसके बाद सवर्ण ने दलितों पर हिंसा करना प्रारंभ कर दिया और उनकी सभा को भंग कर दिया। इसके बाद डॉ भीमराव अम्बेडकर ने कानूनी प्रक्रिया द्वारा इन अधिकारों की मांग की और लगभग 10 वर्ष बाद 1937 में इसमें सफलता हासिल हुई।

महाड़ सत्याग्रह की सफलता ने डॉ भीमराव अम्बेडकर को एक महान पुरुष के रूप में स्थापित किया और दलित समाज में उन्हें एक महान व्यक्तित्व के रूप में जाना जाने लगा। इसके बाद आगे के कई आंदोलन में दलितों ने उनका साथ दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलन के प्रणेता डॉ भीमराव अम्बेडकर
2. डॉ अभिलाष सिंह यादव
3. डॉ आंबेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन डॉक्टर नरेंद्र जाधव
4. अम्बेडकर और दलित आंदोलन श्यामलाल
5. Dalit movement in India P.G. Jogdand

Mob. 9911250279 Email dineshkumar9717@gmail.com

Mob. 8299784909 Email. S.Krishana51@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 65-67
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Multilingual and Professional Development

Ravi Singh
Assistant Professor English,
Himachal Adarsh Sanskrit Mahavidyalya Jangla Rohru Shimla H.P. 171214

To meet future needs, it has become necessary for a person to have knowledge of various languages: for example, in European countries, Multilingual knowledge is considered essential for success in Enterprises. That is, along with Roman based English, knowledge of French, German and Spanish languages is considered essential for becoming a business partner. Their influence or demand is the highest in the business world. multilingual knowledge will prove useful in expanding business opportunities in the future .Chinese, Italian, Arabic, Russian and Japanese languages are in high demand in big companies languages like Hindi, Portuguese, Turkish are becoming the languages of new markets. Knowledge of various computers languages is also proving to be helpful in providing respectable livelihood Opportunities across the world today.

In the competition of global business and open market, Multiannual people become more successful than monolingual or bilingual people. at present, multilingual knowledge is becoming very important for the right use of labor force. a multilingual person becomes especially popular among his colleagues because people from various places and various language areas come and work at the workplace. similarly a businessman wins the special love of his customers by becoming more intimate with them, in this way knowledge of Multilingual languages can contribute to the expansion of business.

Supriya Harshal says “language learner can contribute their knowledge in many different ways like as a translator, interpreter, voice over artist etc. Twitter, Facebook, instagram are recruiting people as citizen journalist. many people in this world regularly post some useful information social media site and they don’t even realize what they are actually doing. they are working as a citizen journalese.

The Contribution of Multilingualision in Cultural Dissemination –

Multi-lingual’s can play an important role in expanding culture harmony and exchange of culture .just as experts of various arts and life-useful subjects play their respective roles, in the same way multilingual can also give important support in the promotion of society and culture. According to many researches, multilingual people generally have excellent memory and

analytical observation skills. This develops their thought process and they start looking at the world from a different but an innovative perspective. This automatically makes a multilingual special in the society.

When a native speaker of one language finds a native of another language; talking in this own language. He immediately gets emotionally attached with that person and thus a good healthy relationship is formed between two different communities, having different norms, culture and civilization. These linguistic connections happen not only in a small community or region but all over the world.

They keep in nation building. They keep themselves updated with all the information related to their learned languages and their societies, culture and living environment. We feel a special joy when we see that singers of different countries sing songs of other countries languages with great purity.

The Importance of Multilingualism as the New Normal: –

Multilingualism is somewhat vague, but it is definitely dynamic too, so its investigation requires a multi disciplinary approach. How much are we able to meet the real needs of all those you through language who are finding it necessary to make contact with various linguistic societies in today's multidimensional life. to answer this question, we will have to take a look at the history of language as well. in the past linguistic ignorance has greatly affected our public life. due to which the acceptability of multilingualism or multilingualism started being considered multilingualism. The new America this public awareness movement is America's gift to the educated class. The benefits of multilingualism were first considered by Cole and Dussias in 2017 according to the human condition (Puig - Maneco, Gonzalez a Harloso & Rothman,2018 p2] it is often necessary to learn formal approaches to multilingual language across a variety of Disciplines, often while sharing the assumption that multilingualism is a normal thing. Therefore, The study of multilingualism as a new normal has become a subject of discussion at many levels. such as language an literacy. Teacher new normal and professional development new normal, multicultural education new normal etc. on the basis of these subjects ,the areas and needs of the multilingual new normal have been discussed in this article.

On Multilingual Literacy and Education levels :-

Bernadette, Holmes directly declares that the age of Mono-lingualism is over multilingualism is the new normal. Today for study, business or many other reasons. we have to come in contact with various regions and societies. learning the language of those who belong to a different language group from us multiplies our work skills. knowledge of multiple language, national language and contact language is becoming practically mandatory. In this context the example of the UK is memorable where French, German and Spanish are the major three- lingual formula in the education sector is currently inspired by this goal. But in practical terms knowledge of other regional, native and foreign languages is also becoming necessary to achieve success in Education, Business and cultural expectation.

To work successfully in the computer world knowledge of about 10 languages is available out of which knowledge of languages like Java, C++, Java Script, python, Ruby is important to take the career forward in this field

A Multilingual person can make significant contribution in the form of multilingual knowledge, Teacher education Advisor, inspector, Curriculum development, Journalist and Policy Advisor.

Conclusion: - a person who has learned and spoken many languages can use his knowledge in different ways. The success of multilingual people in the fields of entertainment business

education, journalism translation, tourism etc. is undeniable. Natalie Regoli says, " it is important to balance the pros and cons of multilingualism on a level playing field. If you love learning and want to give yourself more career options, consider transitioning from being bilingual to becoming trilingual. Even though there may be times when a conversation may feel awkward, the ability to communicate on a personal level across multiple cultures is an advantage that can lead to success."

Multilingualism has many positive effects on the overall health of your brain, knowing multiple languages also reduce the risk of strokes. it reduces overall stress level of a person. Because such people are naturally more open minded . One Disadvantage of this hobby can also be that students can neglect many of their essential life skills.

While being busy in learning many languages in today's developing and multidimensional society. Multilingualism is becoming established as a new normal. Most of the people coming in contact with outside society have started accepting its importance as a formula for success.

Reference:

1. Multilingualism : marie-louise van wijk
2. Visualizing language students and teachers as Multilinguals : edited
3. by : Paula Kalaja and Silvia Melo-Pfeifer
4. Multilingual literature as world literature : Edited by Jane Hiddleston
5. and Wen-Chin Ouyang
6. Multilingualism: Anat Stavans and Charlotte Hoffmann

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 68-72
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ सी. बी. भारती की कविता संग्रह “लड़कर छीन लेंगे हम” में मानवीय चेतना के स्वर

अंकित कुमार सरोज
शोधार्थी,
लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना:-

“दलित कविता की शुरुवात 15वीं शताब्दी के मध्य में जन्मे चमार जाति व निर्गुण संत ‘रैदास’ और कबीर से होते हुए ‘हीरा डोम’ और ‘अछूतानन्द’ तक आई है”।[1] इसके बीच लगभग 500 वर्षों का अंतराल है। सन् 1914 के बाद भी दलित कविता कभी लोकगीत के रूप में तो कभी रैदास और कभी अंबेडकर के जीवन और विचारों के काव्यात्मक आख्यानों के रूप में निरंतर विकसित होती रही। लेकिन साठ के दशक में मराठी के दलित कवियों ने अपनी विद्रोही चेतना से सम्पूर्ण मराठी साहित्य की नींव हिला दी।मराठी में दलित साहित्य के उद्भव पर टिप्पणी करते हुए चर्चित दलित लेखक विमल थोराट ने लिखा है कि, **“दलित साहित्य का उद्भव मराठी साहित्य में एक साहित्यिक, सामाजिक विद्रोह के रूप में हुआ है। जिसके माध्यम से दलित शोषित समाज का विद्रोह मुखरित हुआ है। जिसे अछूत कहकर सदियों तक मनुष्य जीवन की सभी आवश्यकताओं और सुविधाओं से वंचित रखा गया और जिसे केवल दुख, वेदना, ग़ुलामी, अपमान आँसुओं भरी जिंदगी बिताने के लिए विवश किया गया। हिन्दू धर्म वर्ण-व्यवस्था ने जातियों के लिए कटघरे से निर्मित इस समाज व्यवस्था में उसे वह स्थान दिया, जो गाँवों, नगरों के अहातों से दूर था और जहां केवल अंधकार ही अंधकार था। उसे अंधकार जीवन से निकालकर उनके जीवन में रोशनी लाने का कार्य डॉ अंबेडकर ने किया”।**[2] उसी से प्रेरणा लेकर हिन्दी के दलित कवियों ने भी कविता का सृजन किया, जो अब प्रतिष्ठित होकर स्थापित चुकी है। रूढ़िवाद व वर्णव्यवस्था के विरुद्ध शुरू हुआ यह आंदोलन अनवरत रूप से वर्तमान में भी जारी है। हिन्दी दलित कविता वर्तमान में भी निर्माण की प्रक्रिया में है हालांकि मराठी दलित साहित्य जैसा तेवर नहीं है परंतु अपवाद स्वरूप कुछ नाम लिए जा सकते हैं जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि, मलखान सिंह, सूरजपाल चौहान, डॉ सी बी भारती आदि। हिन्दी दलित कविता में उत्कृष्ठ कवियों की संख्या कम है लेकिन उनमें क्वालिटी के स्तर पर कमी नहीं है। **“हिन्दी में दलित कविता की बकायदा शुरुवात बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई। इसकी प्रेरणा डॉ अंबेडकर की विचारधारा तो थी ही, महात्मा ज्योतिबा फुले का संघर्ष, मार्क्स की क्रांति दृष्टि तथा मराठी का दलित साहित्य भी रहा”।**[3] छः निबंध लिखकर जैसे सरदार पूर्ण

सिंह, ‘हार की जीत’ लिखकर जैसे सुदर्शन, ‘दुनिया रोज बनती है’ जैसे महत्वपूर्ण संग्रह के कारण ‘आलोक धन्वा’, ‘भेड़िये’ कहानी के कारण भुवनेश्वर ‘नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द’के कारण निर्मला पुतुल, ‘केवल अपनी धार’ के लिए अरुण कमल और ‘उसने कहा था’ जैसी कहानी के कारण चंद्रधर शर्मा गुलेरी क्लासिक रचनाकार हुए। हूबहू ‘आक्रोश’ और ‘लड़कर छीन लेंगे हम’ कविता संग्रह की कविताओं के कारण डॉ सी बी भारती दलित कविता के क्षेत्र में अमिट हस्ताक्षर हो गए। डॉ सी बी भारती हिन्दी में दलित कविता की शुरुआत करने वालों में से हैं। पहला कविता संग्रह – **‘आक्रोश’** सन 1996 में प्रकाशित होते ही खूब चर्चित हुआ था। इस संग्रह में उनकी कुल 58 कविताएं शामिल हैं। उसके बाद सन 2017 में उनका दूसरा संग्रह **‘लड़कर छीन लेंगे हम’** प्रकाशित हुआ और उसे भी पर्याप्त लोकप्रियता मिली। इस संग्रह में आक्रोश में प्रकाशित कविताओं के साथ ही अन्य कुल 117 कविताएं शामिल हैं । इस तरह से देखा जाए तो डॉ सी बी भारती की कविताओं का संसार बहुत बड़ा नहीं है, परंतु दोनों संकलनों में शामिल कविताओं से ही वे हिन्दी दलित कविता के सिरमौर बन चुके हैं। डॉ सी बी भारती की कविताएं जीवन के अलग-अलग पक्षों को रेखांकित करती हैं। **मानवीय चेतना के विभिन्न स्वरों के पक्षों की गहन पड़ताल करना इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।**

शोध का विस्तार-

कविता दलित विमर्श की सशक्त विधा है। दलित कविता **स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व** की पक्षधर रही है। यह लोकतान्त्रिक मूल्यों का समर्थक और अंततः मानवतावादी है। डॉ सी बी भारती का वैचारिक आधार ‘‘जनवादी और अम्बेडकरवादी’ है। डॉ अंबेडकर ने **‘जाति उन्मूलन’** का संदेश दिया, बिना यह किए समाज का विकास और उद्धार नहीं हो सकता है। डॉ सी बी भारती भी ‘जाति’को समाज में जड़ से खत्म करना चाहते हैं। लेकिन उनको भलीभाँति यह मालूम है वर्तमान में आधुनिक विचारधारा से लैस समाज ही ऐसा कर सकता है, जिसके भीतर शिक्षा का महत्व, मानवता, करुणा, एकता और विकासवादी दृष्टिकोण विद्धमान हो। वे आधुनिक विचारों से भरे उन व्यक्तियों का अहवाहन करते हैं जो जातिवादी खुल्ले साँड की नाक में नकेल डाल सके-

“जातिवाद का यह छुट्टा साँड़
कब तक हमें अपने सींगों से
लहूलुहान करता रहेगा?
कब तक हम सहते रहेंगे इसका आतंक?
क्या कभी भी हम इसका प्रतिकार नहीं कर सकेंगे?
अरे आधुनिकों! कोई तो आगे आए
और डाल दे नकेल इसके नाक में
मोटे-मोटे रस्सों के चाहे जितना यह तड़फड़ाये।
लगाए इसके मोटे चूतड़ पर चार लात चाहे यह जितना बिलबिलाये।
सदियों से यह जमा हुआ है,
बेशरम जैसा अड़ा हुआ है।
लगाओ इसे जूते,
नहीं भागेगा यह बिना जुतियाये-लतियाये”[4]

तथाकथित सवर्ण समुदाय दलितों को ईश्वर के नाम पर हजारों वर्षों से डराते रहे हैं । उनके साथ हो रहे शोषण और अन्याय को पिछले जन्म का कर्म और ईश्वरीय बताया। ईश्वरीय सत्ता के कारण दलितों से उनके मानवाधिकार तक छीन

लिए गए। यह अन्याय केवल दलितों के साथ जन्म के आधार पर हजारों वर्षों से होता चला आ रहा है। इसलिए डॉ सी बी भारती ईश्वर को मनुष्य और मनुष्यता का विरोधी मानते हुए उसके अस्तित्व पर सवाल उठाते हुए कहते हैं-

"मुझे लगता है
ईश्वर कुछ लोगों के स्वार्थ की उपज है।
जिससे की वह सजाते रहें महल अपने-
मिटाकर गरीबों की झोपड़ियों को।
खाते रहे मालपूआ
छीनकर दुधमुँहे बच्चों के
रोटी के निवाले।
और पूरी करते रहे अपनी कामेषणा
ईश्वर के पाखंड के सहारे
बनाकर औरतों को देवदासियाँ"।[5]

भारतीय समाज में व्याप्त वर्णव्यवस्था दलित उत्पीड़न का मुख्य कारण है। सवर्ण, **वर्णव्यवस्था** को हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग मानते हैं। इसलिए डॉ अंबेडकर ने हिन्दू धर्म को त्यागकर, बौद्ध धर्म को अपना लिया । आचार्य रजनीश उर्फ 'ओशो' ने हिन्दू धर्म को अल्पसंख्यक धर्म कहा क्यूंकी इसमें 80% दलितों और शूद्रों की है। यदि इन्होंने धर्म परिवर्तन कर लिया तो ये अल्पसंख्यक हिन्दू अपने अहंकारी रवैये के कारण देश के किसी कोने में पड़े रहेंगे। परंतु डॉ सी बी भारती धर्म को साकरात्मक नजरिए से देखते हैं, उनका मानना है कि कुछ लोगों के स्वार्थ व उसमें व्याप्त रूढ़ियों के कारण धर्म बदनाम हो गया वरना विश्व में कोई भी धर्म नफरत, रूढ़ियों और घृणा को बढ़ावा नहीं देता-

"धर्म फैलाता है मैत्री
जातियाँ नहीं जन्माता
नहीं जन्माता पाखंड और रूढ़ियाँ
नहीं जन्माता नफरत
मनुष्यता के बीच
दीवारें नहीं खड़ी करता धर्म"।[6]

समाज में नियम और कानून का निर्माण उसी की भलाई के लिए किया जाता है। परंतु हिन्दू धर्म में '**मनुस्मृति**' जैसी कानूनी पुस्तक का निर्माण बहुसंख्यक दलित समाज को मानसिक ग़ुलामी के अंधेरे में धकेलने के लिए किया गया। उस ग्रंथ के अनुसार भारतीय समाज को वर्गों में विभाजित कर दिया गया तथा एक बड़े वर्ग '**दलित**' समुदाय को शिक्षा के साथ कई मानवोचित अधिकारों से वंचित कर दिया। परंतु फिर भी हिन्दू समुदाय के तथाकथित सवर्ण दलितों पर हिन्दुत्व विचारधारा को थोपने पर अमादा हैं, लेकिन उनको तरक्की करते ना देखना चाहते हैं और ना ही मानवोचित अधिकार देना चाहते हैं। डॉ अंबेडकर के अनुसार हिन्दुत्व भाईचारे और समानता के खिलाफ है। हिन्दू सवर्ण के इसी दोहरेपन को कवि भलीभाँति समझता है इसलिए लिखता है कि-

"हिन्दू कहकर भी तुम मुझे आखिर क्यूँ,
अपना नहीं पाते हो?
और मैं जब पीड़ित, अपमानित, शोषित हो-
अधिकारों से वंचित करता हूँ धर्मांतरण,

तुम मेरे गाँव,घर,
मेरी बस्तियां ही नहीं-
मुझे भी जिन्दा जलाते हो”[7]

आरक्षण भारतीय समाज में विवादित विषय है। यह दलितों के लिए अंबेडकर के द्वारा किया गया एक सकारात्मक प्रावधान के अंतर्गत आता है। इसी के चलते वर्तमान में पढ़ी-लिखी दलित पीढ़ी तैयार हो पाई है। उसको अपने साथ हजारों वर्षो से हो रहे अन्याय का ज्ञान हुआ है। इसलिए वह वर्तमान में दलित चेतना को प्रसारित कर रहा है। परंतु तथाकथित सवर्ण की नजर में आरक्षण एक खैरात भर है, वह खुद स्वीकार ही नहीं करना चाहता कि ‘आरक्षण’ उसके द्वारा दलितों पर किए गए अन्याय की भरपाई है। वह आरक्षण को समानता की जमीन तैयार करने के हथियार के रूप में नहीं देखता बल्कि बड़े ही चतुराई से उसकी निन्दा करता है व आरक्षण को बंद करने के पक्ष में दिखता है। डॉ सी बी भारती तथाकथित सवर्ण के चालाक मानसिकता को समझते हुए, हजारों वर्षों से जो आरक्षण अपने पास रखा उसकी तरफ इशारा अपनी कविता **‘आरक्षण-2’** में करते हुए कहते हैं कि-

“तुम कर सकते हो व्यापार
कर सकते हो तुम नौकरी
तुम खोल सकते हो होटल
लगा सकते हो चाट की दुकान
तुम बाँच सकते हो पोथी
तुम सुन सकते हो वेद-पुराण
तुम करा सकते हो गऊ दक्षिणा
तुम बनवा सकते हो मंदिर
और हड़प सकते हो इनके सहारे जमीन
तुम पा सकते हो कहीं भी आवास
गढ़ी है जो तुमने वर्ण-व्यवस्था
बनायी है जातियाँ
तुम्हें आरक्षण है आभिजात्य होने का
तुम्हें आरक्षण है मान- सम्मान पाने का
तुम्हें आरक्षण रहा है शिक्षा का
तुम्हें आरक्षण बिना श्रम के धन अर्जित करने का
फिर तुम्हें मेरे आरक्षण से इतनी जलन क्यूँ?
मैं छोड़ने को तैयार हूँ अपना आरक्षण
क्या छोड़ोगे तुम भी अपना आरक्षण?”[8]

निष्कर्ष-

डॉ सी बी भारती ने सबसे पहले दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को लेकर सशक्त निबंध लिखा जो ‘हंस’ पत्रिका में छपा, जिसका शीर्षक था “**दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र**”। अगर वह इसी विषय पर निरंतर कार्य करते रहते तो इसमें कोई शक नहीं कि सौन्दर्यशास्त्र को लेकर दलित विमर्श की पहली किताब होती। परंतु ऐसा नहीं हो पाया। दलित साहित्य का उद्देश्य दलितों को अपराधी, हत्यारे और बागी बनाना नहीं है। दलित साहित्य दलितों को अपने हक

की लड़ाई लड़ना सिखाता है। दलित साहित्य में कविता का महत्व अधिक है। डॉ सी बी भारती कविता को शक्तिशाली हथियार के रूप इस्तेमाल करते हैं। वह अपनी कविताओं में मनुष्यता को मुख्य रूप से उभारते हैं। उनको पता है कि वर्तमान में दलित जाति के लोग कहीं भी जाते हैं उनकी जाति उनका पीछा नहीं छोड़ती। कोई भी दलित कितना ही पढ़ ले, कितना भी बड़ा ऑफिसर हो जाय, कितना भी बड़ा पूंजीपति क्यूँ न हो जाय, सामाजिक स्तर पर वह अपनी जाति के नाम से ही जाना जाता है। इसी जाति के भूत से उन्हें नफरत है, वह दलित को मानवीय दृष्टि से देखते हैं, जो मनुष्यता के लिए जरूरी तो है ही साथ में सामाज के विकास के लिए भी उतना ही जरूरी है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. सिंह, डॉ एन, दलित चिंतन: अनुभव और विचार,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृष्ठ-42
2. थोराट, विमल, मराठी दलित कविता और सठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक चेतना, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली,1996, पृष्ठ 28-29
3. सिंह, डॉ एन, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृष्ठ 24
4. भारती, डॉ सी. बी., लड़कर छीन लेंगे हम, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 110
5. भारती, डॉ सी. बी., लड़कर छीन लेंगे हम, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 57
6. भारती, डॉ सी. बी., लड़कर छीन लेंगे हम, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 54
7. भारती, डॉ सी. बी., लड़कर छीन लेंगे हम, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 115
8. भारती, डॉ सी. बी., लड़कर छीन लेंगे हम, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 127

मोबाईल नंबर- 8486892028

ईमेल:- ankitsaroj381999@gmail.com

पता- 7/471 रजनी खंड, शारदा नगर, लखनऊ 226002

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 73-76
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गीतांजलि श्री के कहानी संग्रह अनुगूंज में समाज के विविध दृष्टिकोण

ज्योती सिंह
शोधार्थी,
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य ने समाज के बदलते परिदृश्य को अभिव्यक्त किया है। यह न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का दस्तावेज़ भी है। आज भी यह नए प्रयोगों और विमर्शों के साथ विकसित हो रहा है। आधुनिक हिंदी कथा साहित्य की समीक्षा करते समय हमें उसके विकास, प्रमुख रचनाकारों, विषय-वस्तु, शैली और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों को समझना आवश्यक है। आधुनिक हिंदी कहानी का उदय 19वीं-20वीं सदी के संक्रमण काल में हुआ। इस काल में हिंदी महिला लेखकों ने कहानी को शीर्ष बिंदु तक पहुंचाया है। इन कहानी लेखिकाओं में गीतांजलि श्री का महत्वपूर्ण स्थान है।

उनके लेखन में सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत विषयों पर गहरी अंतर्दृष्टि मिलती है। उनके कार्यों में साम्प्रदायिकता, धार्मिक पाखंड, वृद्धावस्था और नारी उत्पीड़न जैसे विषय प्रमुखता से आते हैं। गीतांजलि श्री की कहानियाँ भाषा और शिल्प के स्तर पर भी विशिष्ट मानी जाती हैं, जहाँ विषयवस्तु के अनुसार भाषा बदलती है। उनके कहानी संग्रहों में दुःख, अवसाद, और आशा-निराशा जैसे मनोभावों का चित्रण मिलता है।

अनुगूँज' कहानी संग्रह कयाकर्मी गीतांजलि श्री का प्रथम कहानी संग्रह है, जिसके प्रकाश में आते ही उन्होंने कथा-जगत में अपनी पहचान बनाई। 'अनुगूँज' कहानी संग्रह में गीतांजलि जी की दस कहानियाँ प्रकाशित हुई जैसे प्राइवेट लाइफ, बेल-पत्र, पीला सूरज, सफेद गुड़हल, तिनके, कसक, दरार, दूसरा, हाशिए पर, अनुगूँज। अन्तिम कहानी अनुगूँज के आधार पर ही इस कहानी संग्रह का नामकरण हुआ है। इसमें संकलित दस कहानियों में जो संवेदना जो विद्रोह और प्रतिरोध है वह स्वयं को उजागर करते वक्त पात्रों की कमजोर होते स्वाभिमान अनदेखा नहीं करती, इशारों और बिम्बों के सहारे चित्रण करने वाला शिल्प और शिक्षित वर्ग की आधुनिक मानसिकता को दिखाती उनकी बोलचाल की भाषा, गीतांजलि श्री की विशेष लेखकीय पहचान बनाती है। यूँ तो इन कहानियों का केन्द्र लगभग हर बार-एक 'दरार' को छोड़कर- बनता है शिक्षित मध्यमवर्गीय नारियों से, पर इसमें वर्णित होते हैं हमारे आधुनिक नागरिक जीवन के विभिन्न पक्ष। जैसे वैवाहिक तथा विवाहेत्तर स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, पारिवारिक परिस्थितियाँ, सामाजिक रूढ़ियाँ, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, स्त्रियों का पारस्परिक मैत्री इत्यादि। यहाँ सीधा, सपाट कुछ भी नहीं है। हर स्थिति, हर सम्बन्ध, हर संघर्ष में व्याप्त रहते हैं परस्पर विरोधी स्वर। यही विरोधी स्वर रचते हैं हर एक कहानी का एक अलग राग।

इस कहानी संग्रह की कहानियों में प्राइवेट लाइफ कहानी प्रथम कहानी है। यह कहानी एक ऐसी लड़की की जिन्दगी से जुड़ी है, जो घर पर बिना बताए, हॉस्टल छोड कर एक किराए की कमरे में रहने लगती है। इस कहानी में स्त्री के व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं को उजागर किया गया है। इस कहानी में नायिका स्त्री जीवन के सत्य को उजागर करती हुई कहती है, "जिसे आप इज़्ज़त समझते है, उसको मैं अपनी सबसे बड़ी बेइज़्ज़ती मानती हूँ। "[1]
उपरोक्त कहानी के माध्यम से लेखिका ने पुराने मूल्यों के साथ जीने वाले और नारी को घूंघट की चार दिवारी में कैद रखने की कोशिश करने वाले समाज के खिलाफ पढ़ी-लिखी आधुनिक स्त्री के संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है।

बेल-पत्र कहानी ओम और फातिमा के जीवन को केन्द्र बना कर लिखी गई है। हिन्दू-मुस्लिम के बीच के भेद-भाव पर केन्द्रित यह कहानी स्त्री जीवन का चित्रण बड़ी गम्भीरता से करती है। प्रेम विवाह के पश्चात एक लड़की को इस समाज में क्या कुछ सहन करना पड़ता है, इस कहानी का कथानक इसी बात पर आधारित है। ओम और फातिमा दोनों एक-दूसरे से प्यार करते थे, इसलिए समाज और धर्म से संघर्ष कर प्रेम-विवाह कर लेते हैं। किन्तु थोड़े समय पश्चात फातिमा को सत्य का आभास होता है। वह एक जगह कहती है, “तुम जानते हो, अच्छी तरह जानते हो, कि हमारे समाज में जो भी जाता है, लड़की का जाता है। लड़का सिर्फ लेता है।......”[2] लेखिका ने अंतर धार्मिक विवाह करा कर समाज में एक नई मिसाल प्रस्तुत की है। समाज को बदलने के लिए स्त्रियों को खुद सामने आना पड़ेगा। यही समाज की मांग है।

पीला सूरज अंधेरों में भटक रही स्त्रियों की कहानी है। कहानी की नायिका के जीवन में विसंगत पूर्ण परिस्थितिया है। वह भारत से प्रवास करके जिनेवा चली जाती है, किन्तु उसे स्त्री मुक्ति के सूरज की किरणे वहाँ भी नज़र नहीं आती। कहानी की नायिका पेशे से वकील है, जो जिनेवा में मजदूरों की तरफ से एक केस लड़ने जाती है। एक रात वह जिनेवा में होटल से बाहर टहलने आती है और भटक जाती है विषम मानसिक परिस्थितियों के कारण वह कुछ समझ नहीं पाती है। तभी उसे मंडा बाई की याद आती है जिसके साथ वह बचपन में भयानक जंगल में गई थी। वहीं दुईयाँ को शेर खा गया था। नायिका वैसी ही भारी बारिश में आज जिनेवा की सड़कों पर घूम रही थी। पर उसके साथ आज मंडा बाई नहीं थी। थोड़े समय पश्चात एक स्त्री हाथ में छाता ले कर आती है, जो उसे बिलकुल मंडा बाई की तरह नज़र आती है। उसके छाते के नीचे नायिका अपने आप को सुरक्षित महसूस करती है। किन्तु कहानी के अंत में उसके मन में यही प्रश्न आ जाता है कि आखिर कब तक स्त्री को सहारे की आवश्यकता पड़ती रहेगी? लेखिका कहती है,“ मैं सोच रही हूँ, कब सूरज उगेगा। जिनेवा की अन्तर्राष्ट्रीय इमारतों पर, देश के पुश्तैनी मकान पर, उन झोंपडों पर........”[3]

कहानी संग्रह में 'सफेद गुड़हल' कहानी एक पढ़ी-लिखी सुशिक्षित मध्यम वर्ग की युवती की कथा है । वह अपनी प्रेम सम्बन्धी कल्पनाओं में खोई रहती है और इन कल्पनाओं को किसी के सामने ज़ाहिर नही करती। उसका प्रेमी अमेरिका चला जाता है लेकिन वह अपनी यादों में उससे दूर नहीं जा पाती वह अपने भूतकाल एवं भविष्य काल को समाहित कर लेती है। प्रेम भावना के कारण उसे नवम्बर के माह की हवा एवं अपने आस-पास की हर चीज़ सुन्दर लगती है। लेखिका की इसी कहानी में उल्लिखित है कि "नवम्बर की गुलाबी धूप छन-छनकर मेरे अन्तर में उतर जाती। मेरी गर्दन पर प्रत्याशा के बिम्ब जगाती है। जहाँ मेरे अंगों को छूती हवा है बस, वहाँ लालसा के बिन्दू उगा गई मुझे इंतजार है, मुझे इंतज़ार है, आह भरते पत्तों सा। .... सीने पर सरकती मेरी माला सा। ....न छूती-सी छूअन-सा। .... सफेद गुड़हल के मखमली फूल के खिलने सा....."[4] यहां बंदिशों में घिरी नायिका अपने प्रेमी के आने का इंतजार कर रही है। नायिका को हवा भी अच्छी नहीं लगती है। वह कहती हैं कि "बहुतों को यह मनहूस वा लगती है। मुझे नहीं। झरे पत्तों में चिंगारी सुलगती है। यादों की। तुम्हारी। "[5] लेखिका अपने साक्षात्कार में इस बात को स्वीकार करती हैं कि “मेरा अन्तर्मन, लेखन मन, चेतन अवचेतन, मेरी संवेदना सूझबूझ, कल्पना-शक्ति, मेरी प्रज्ञा ये सब मेरी रचना शक्ति को तराशत रहे हैं और अभी भी तराश रहे हैं। मेरा अन्तर्मन मुझे गाइड करता है।

अराजक होने से रोकता है। साहस करने को उकसाता है, जोखिम लेने को भी मगर धराशायी होने के प्रति चेताता भी है।"[6]

तिनके' कहानी कामकाजी स्त्री की दोहरी भूमिका में पिसती स्त्री की मनोव्यथा है। आज की पढ़ी-लिखी स्त्री आत्मनिर्भर तो है परन्तु घर और बाहर की जिम्मेदारियों को निभाने में उसकी असमर्थता उसके मानसिक तनाव का कारण बनती है। जो उसके जीवन में नीरसता ला देती है लेखिका के शब्दों में "तुम्हारी टीचिंग तो मटरगश्ती है। कभी दो घंटे में हो गई, कभी तीन में, और वापस घर आकर पसर जाओ। मटक-मटककर गईं, मटककर आ गईं ! वह तो दिन-भर खटता है और यहाँ भी..."[7] कसक' कहानी में बेफिक्र जीने वाली युवती जब तेरहवीं मंजिल से कूदकर आत्महत्या कर लेती है तब वह अपने पीछे कई अनसुलझे सवाल छोड़ जाती है जो उसकी सहेली (नैरेटर) के मन को झिंझोड़ देती है। 'दरार' कहानी वैवाहिक जीवन की टूटन पर आधारित है। अनुगूँज' कहानी-संग्रह का नामकरण अनुगूँज कहानी के नाम पर किया गया है। गीतांजलि श्री की दूसरी कहानियों की तरह इस कहानी संग्रह की यह कहानी स्त्री जीवन के एक पक्ष का चित्रण करती है। 'अनुगूँज' कहानी का कथानक राहुल और मुनिया के इर्द-गिर्द घूमता है। दोनों पति-पत्नी एक दूसरे से बहुत प्रेम करते हैं। मुनिया राहुल की बाहों में जा कर प्रसन्न हो जाती है। उसे सँवरी देख कर राहुल कहता- "बस-बस, बहुत हुआ", "हर वक्त रोमांस, हर वक्त रोमांस। सब तुम्हारी तरह निखट्टू नहीं है। काम-काजी लोग है। चलो हटो। पढ़ो पहले काम फिर काम! "[8]

निष्कर्ष– स्त्री-विमर्श का आना एक निरंतर चिंतन की प्रक्रिया है। स्त्री-विमर्श ने विश्व के इतिहास में स्त्रियों के लिए, उनकी मुक्ति के लिए एक क्रांतिकारी सोच को पैदा किया। इसी सोच को गीतांजलि श्री जी ने अपनी कहानियों में स्त्री जीवन के समाजिक यथार्थ के विविध पक्षों के साथ-साथ धार्मिक यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी हर कहानी समाज के यथार्थ को उजागर करती है।

शशि भूषण द्विवेदी के शब्दों में "यह अच्छी बात है कि गीतांजलि श्री ने अपनी लगभग हर कहानी में अपनी सिग्नेचर ट्यून को बरकरार रखा है। लेकिन सवाल यह है कि गीतांजलि श्री की कहानियों की यह मूल टोन आखिर है क्या? एक अजीब तरह का फक्कडपन, एक अजीब तरह की दार्शनिकता, एक अजीब तरह की भाषा और एक अजीब तरह की रवानी।"[9]

लेखिका अपनी कहानियों में अपने आस-पास के सत्यों को यथार्थ रूप में चित्रित कर देता है। गीतांजलि श्री की कहानियाँ स्त्री जीवन उन के सत्यों को उजागर करती हैं, जो अभी तक अछूते रहे है। प्रमुख कहानियों में गीतांजलि श्री जी ने स्त्री की इच्छाओं को, उसकी कसक को, उसके विचारों को, खुले आसमान के नीचे बिना किसी बंदिश के जीने की चाहत को बड़ी गम्भीरता से प्रस्तुत किया है। जहाँ 'प्रइवेट लाइफ' कहानी और 'बेल पत्र' कहानी की नायिकाएँ अपने लिए संघर्ष कर रही हैं। वहीं 'पीला सूरज' कहानी की नायिका उच्च शिक्षा प्राप्त वकील होते हुए भी न जाने किस चीज से सहमी डरी नज़र आती है। 'अनुगूँज' कहानी की नयिका मुनिया भी अपने पति की इच्छानुसार घर में रह कर समय गुजर रही है। 'सफेद गुड़हल' कहानी में नायिका को अपने प्रेमी के ख्यालों ने जकड़ रखा है। वह अमरीका गये अपने प्रेमी की याद में अपने भूत और भविष्य को एकत्र कर लेती है। 'तिनके' कहानी में चंदा अपने पति को सेमिनार पर जाने की बात बताने से डरती नज़र आती है। 'कसक' कहानी दो सहेलियों पर आधारित है। जो एक दूसरे से बिलकुल अलग विचार रखती हैं। 'दरार' कहानी एक पुरूष के मन में स्त्री के प्रति पैदा हुई गलत भावना को पेश करती है। 'दूसरा' कहानी आधुनिकता के रस्से में बंधे एक ऐसे दम्पति की कहानी है जो साथ होते हुए भी एक दूसरे से दूर हैं। भगीरथ स्वंय तो पर स्त्री के साथ बैठा बातें करता है, किन्तु अपनी पत्नी नीलम को रोशन के साथ देख कर गुस्सा होता है। 'हाशिए पर' कहानी परवासी युवक और युवती की कथा है, जो विदेश में रह कर भी अपनी

संस्कृति का पल्ला नहीं छोडते। गीतांजलि श्री की यह सभी कहानियाँ स्त्री जीवन से जुड़ी हुई तो हैं ही लेकिन इन कहानियों का कथानक भी अलग-अलग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –:

1. गीतांजलि श्री, प्राइवेट लाईफ कहानी, 'अनुगूँज 'कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1991 पृ. सं. 9
2. गीतांजलि श्री, बेल-पत्र कहानी, ‘अनुगूँज’ कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1991 पृ. सं. . 9
3. गीतांजलि श्री, बेल-पत्र कहानी, ‘अनुगूँज’ कहानी संग्रह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1991 पृ. सं. 26.
4. गीतांजलि श्री, पीला सूरज कहानी, ‘अनुगूँज ‘कहानी नी संग्रह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1991 पृ. सं. 42.
5. वहीं पृष्ठ संख्या 44
6. https://janchowk.com. 10/July/2020
7. गीतांजलि श्री, सफेद गुड़हल कहानी, ‘अनुगूँज’ कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1991. सं. 50
8. गीतांजलि श्री, अनुगूँज’ कहानी, ‘अनुगूँज’ कहानी संग्रह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1991 पृ. सं. 130
9. प्रतिनिधि कहानियाँ (भूमिका, एक खास सिग्नेचर ट्यून की कहानियाँ),
   शशिभूषण द्विवेदी, पृ.सं. 05

मो..9170136839 , मेल. Jssinghstp33@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 77-81
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी कविता : सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में

श्रीमती कमला बाई दीवान
शोधार्थी,
प्रो.(डॉ.) अनुसुइया अग्रवाल डी.लिट्.
शोध निर्देशक,
स्वामी आत्मानंद शासकीय अंग्रेजी माध्यम आदर्श महाविद्यालय महासमुन्द छ.ग.

सारांश –हिन्दी साहित्य के इतिहास में समकालीन हिन्दी कविता आधुनिक काल के नई कविता के बाद के कविताओं को कही जाती है । सामाजिक चेतना से तात्पर्य है समाज के समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता व जागरूकता है। समकालीन कविता जीवन का सीधा साक्षात्कार कर समाज में व्याप्त असंतोष, विसंगति और परिवर्तन की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती है। ये मानव जीवन के यथार्थता को प्रकट करती है। समकालीन कवियों ने सामान्य जन की पीड़ा, लोक संस्कृति एवं मानव चरित्र को विभिन्न रूपों में देखने का प्रयास किये है । समाज की मान्यताओं, परम्पराओं का मोह भंग करती है। देश या समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार हो या चाहे दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, दिव्यांग विमर्श, वृद्ध या आदिवासी अस्मिता के रूप में हो। ओमप्रकाश वाल्मीकी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, चन्द्रकांत देवताले, धूमिल, शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, निर्मला पुतुल, राजेश जोशी आदि समकालीन कवियों ने कविताओं के माध्यम से निम्न वर्गो के आवाज के रूप में कार्य कर जागरूकता व सामाजिक चेतना का काम कर रहे हैं। दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकी ने समाज के दलित वर्ग को स्थान दिलाने का कार्य किया है । इनके दलित कविताओं में बदले की भावना नहीं बल्कि समाज के बदलाव की चेतना का स्वर है। मानव जीवन और समाज के प्रत्येक पहलू को चित्रित कर उन्हें जीवंत बना दिया हैं। समकालीन कविता वर्तमान समाज के विसंगतियों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

बीज शब्द – दुत्कारा, जूठन, पासी, चमार, भंगी, महार, ऊभ–चुभ।

मूल आलेख –

समकालीन कवियों ने अपने काव्यो में समाज के विविध पहलूओं को लेकर समाज में जागरूकता लाने का प्रयास कर रहे हैं जिसमें कुछ बिन्दु इस प्रकार है–

जातिगत भेदभाव के प्रति आवाज –

हमारे देश में जाति के नाम से बहुतायत झगड़े होते हैं। भारत देश गाँवों का देश है और अधिकतर जातिगत भेद–भाव गाँवों में देखने को मिलता है। यदि कोई व्यक्ति समाज के अनुरूप कार्य नहीं किया तो उन्हें बहिष्कृत कर दिया जाता है। उच्च वर्ग के लोगों द्वारा निम्न व दलित वर्ग के लोगों के साथ बहुत ज्यादा भेद–भाव किया जाता है। उनके लिए तालाबों में अलग घाट, सार्वजनिक कुँए में पानी भरने की पाबंदी होती है। दलितो को कड़ी मेहनत करा कर खाने को भी जूठन दिया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकी ने अपनी एक कविता में उजागर किया है –

"यदि तुम्हे
धकेलकर गाँव से बाहर कर दिया जाये
पानी तक न लेने दिया जाये कुँए से
दुत्कारा–फटकारा जाये
चिलचिलाती दुपहर में
कहाँ जाये तोड़ने को पत्थर
काम के बदले
दिया जाये खाने को जूठन
तब तुम क्या करोगे ?"[1]

आज उच्च वर्ग या शिक्षित वर्ग भी निम्न वर्ग के प्रति हो रहे भेद–भाव को देखते हुए भी चुप रहते है। दलित जाति वालो के विकास या उन पर हो रहे अत्याचार के बारे में बात करना ही नहीं चाहते लेकिन किसी को नीचा दिखाना है या उन्हें गाली देना है तो लोग इन्हीं जातियों का नाम लेकर गाली देते है।

"वे पसंद नहीं करते
जाति पर बात करना
क्योंकि वे नहीं है
पासी–चमार
भंगी–महार
जबकि वे हर रोज करते हैं
इस्तेमाल
इन जातियों की गाली की तरह।" [2]

समाज में दलित वर्ग के प्रति हो रहे भेद भाव व शोषण के प्रति कवि ने लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया है। कवि वाल्मीकी ने दलितों की पीड़ा को स्वयं अनुभव किया है इसलिए दलितों की अंतर्व्यथा को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"सदियों से पीड़ित
दलित
मेरा ह्रदय बन गया है
ज्वालामुखी
फट पड़ने को लालायित
भीतर ही भीतर
मुझे हिला रहा है
बाँहे फड़कती है
जिह्वा मचलती है
प्रगति अवरुद्ध
जाति व्यवस्था के बंधन में
अतीत शोषित प्रताड़ित
इतिहास गहन अंधकार में डूब गया है।" [3]

ओमप्रकाश वाल्मीकी एक दलित साहित्यकार है। उन्होंने दलितो पर हो रहे अत्याचार को देखा है। दलित कवि एक मनुष्य की तरह जीना चाहता है इसलिए वर्ण–व्यवस्था का विरोध करता है। समाज के विसंगति पर क्षोभ प्रकट करता है –

"मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन
कितने ताज्जुब की बात है
जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है
वह दिन कब आएगा

जब बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी।" [4]

जल, जंगल, जमीन और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते आदिवासी समुदाय के बारे में समकालीन कवियों ने अपनी लेखनी चलाये हैं। छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में समाज के आदिवासी वर्ग पर हो रहे शोषण व अत्याचार को चन्द्रकांत देवताले ने इस प्रकार चित्रित किया है –

"पर मैं देख रहा हूँ
बस्तर के जंगल में जन्मांध अंधेरे का दमा
पेड़ों पर टँगे घोंसलों में कैद
चिन्ताओं के छिन्न–भिन्न केंचुल
इन्द्रावती के पानी में ऊभ–चूभ होती हुई गुमनाम सिसकियाँ।" [5]

बेरोजगारी व गरीबी के प्रति–

देश में सरकार जनता के विकास के लिए नई–नई योजनाएँ लागू कर रही है। गरीबी हटाने का नये–नये जतन कर रही है किन्तु समाज के कुछ ऐसे लोग हैं जो उन सुविधाओ को गरीब जनता तक नहीं पहुँचने देते है। स्वयं ही उनका लाभ ले लेते है और गरीब जो है बद्तर जीवन जीने पर मजबूर हो जाते है। वर्तमान समय में जनसंख्या की अधिक वृद्धि से भी बेरोजगारी समस्या बढ़ गई है। समाज का एक वर्ग धनवान से और धनवान होते जा रहे है दूसरी तरफ दूसरा वर्ग जिन्हें एक वक्त का खाना भी नसीब नहीं होता है। अक्सर देखने को मिलता है कि धर्म आस्था के नाम पर लोग द्वारा न जाने कितने दैनिक सामान व खाने की वस्तुएँ नदी–नालो में बहा दिया जाता है। आस्था के नाम पर देवालयो में भोग अर्पित करने के नाम से दूध व अन्य खाद्य पदार्थ विसर्जित कर दिया जाता है जबकि एक ओर ऐसे बच्चे भी होते हैं जिन्हें दूध नसीब नहीं होता है। ये गरीब वर्ग प्रश्न करते है कि जिस देवता को हमने छैनी–हथौड़े से गढ़कर देवालयों में विराजित किये है, प्राण प्रतिष्ठा किये है क्यों वह इस जुल्म को देखता रहता है? कवि ओमप्रकाश वाल्मीकी जी की कविता में ये दृष्टव्य है –

"क्यों नहीं जाग्रत हो जाता देवता
प्राण प्रतिष्ठा के बाद
क्यों रह जाता है जड़
भूख और जुल्म देखकर
न जाने कितना दूध
बहा दिया तुमने नाली में
भूखे बच्चों से छिनकर
अरे! तुम्हारे इन्हीं कुकर्मों ने हमें
कंगाल बना दिया है।" [6]

आज भी हम देखते है कि समाज में कुछ ऐसे वर्ग हैं जो दिन भर गाँव व शहरों की गलियों या रोड पर कबाड़ उठा कर अपनी दिनचर्या व्यतीत करते हैं और उनसे जो कुछ पैसा मिलता है उसी से अपना गुजारा करते है। इनके बच्चे भी स्कूल जाने की अपेक्षा कुछ पैसा मिल जाये करके ये भी वही काम करते हैं। समाज में आर्थिक भिन्नता के कारण गरीब बच्चो के इस तरह के स्थिति को देखकर चन्द्रकांत देवताले ने भी अपनी कविताओं में चित्रित किये हैं –

"थोड़े से बच्चों के लिए
एक बगीचा है
उनके पाँव दूब पर दौड़ रहे हैं
असंख्य बच्चों के लिए
कीचड़–धूल और गन्दगी से पटी
गलियाँ हैं जिनमें वे
अपना भविष्य बीन रहे हैं।" [7]

देश की संसद में गरीबी उन्मूलन, उनकी शिक्षा व विकास को लेकर न जाने कितनी बार बहस छिड़ती है किन्तु गाँव व शहरों में उनकी सुविधा मुहैया केवल कोरम पूर्ति बस रह जाती है। जिसे रामदरश मिश्र ने एक व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है –

"चीथड़े लपेटे भूखे–नंगे लोग
हथेली की ओट देकर
कभी दिल्ली की ओर देखते हैं
कभी अपने शहर की ओर
और आपस में पूछते हैं
भाइयो,
इनकी आपसी बातचीत में
हमारा नाम क्यों सुनाई दे रहा है
बार–बार।" [8]

महिलाओं के प्रति

संविधान ने महिलाओं व पुरूषों को समानता का अधिकार तो दे दिया है। दोनों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, नौकरी के लिए समान अधिकार है किन्तु आज भी महिलाएँ घर व कार्य स्थलों पर शोषण का शिकार हो रही हैं। महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई कानून बनाये जा रहे हैं फिर भी समाज में आज भी बच्चीयाँ व महिलाएँ अपने आप को असुरक्षित महसूस करती हैं। वह किसी पर विश्वास नहीं कर पाती। वर्तमान समाज में महिलाएँ जितनी विकास के क्षेत्र में आगे बढ़ गई है ऊँचे–ऊँचे पदों पर आसीन हैं वही दो साल की बच्ची भी सुरक्षित नहीं है। ओमप्रकाश वाल्मीकी जी महिलाओ की स्थिति को व्यक्त करते हुए कहते हैं –

"सड़क पर चलती
स्त्री भयभीत है
उसे यकीन ही नहीं
सामने से आ रहा है
कोई पुरूष
या फिर
कोई उन्मादित साँड।" [9]

सामाजिक न्याय के लिए कार्य–

समकालीन कविताओं में सामाजिक न्याय एक महत्वपूर्ण पहलू है। कवियो ने अपनी कविताओं में समाज में व्याप्त असमानता, अन्याय, शोषण उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाये हैं। कविताओं में हाशिए पर स्थित समुदाय दलित, मजदूर, गरीब, स्त्री आदि के संघर्षों को प्रस्तुत कर न्याय दिलाने का प्रयास किया जा रहा है। आज समाज में ऐसे भी समाज सेवी या नेता वर्ग है जो गरीब, मजदूर या निरीह जनों को अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए उपयोग करते हैं और उन्हें दूध से मक्खी की भाँति निकाल फेकते हैं –

"वे बेहद खुश हैं
उस आदमी से
जो खड़ा है सिर झुकाए
उनकी भीड़ में
जिसे जब चाहे
करते हैं इस्तेमाल
निर्जीव, जड़ पदार्थ की तरह।"[10]

निष्कर्ष–

समकालीन कविता में सामाजिक चेतना एक मुख्य पहलू है। समाज में परिर्वतन लाने व समाज को बेहतर बनाने में इनकी मुख्य भूमिका है। किसी भी समाज का विकास तभी संभव है जब समाज का हर वर्ग कंधा से कंधा मिलाकर बिना भेदभाव के भाई–चारे के साथ आगे बढ़ेंगे किन्तु समाज में भेद–भाव,

असंतोष, विसंगति व भ्रष्टाचार व्याप्त है। जिसे दूर किये बिना सुगठित व सुन्दर समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। समकालीन कवियों ने समाज के इन्हीं विषयों को अपने काव्य में उजागर करने का प्रयास किये हैं। समकालीन हिन्दी कविताओं में तात्कालीन समय के सामाजिक संघर्षों व उपेक्षित वर्गो के प्रति संवेदना व सहानुभूति व्यक्त करते हुए उन्हें समाज के मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ सूची –

1. सं.रविकांत, प्रतिनिधी कविताएँ ओमप्रकाश वाल्मीकी,राजकमल प्रकाशन दिल्ली : 2024 पृ.20
2. वही पृ. 50
3. वही पृ. 70
4. वही पृ. 23–24
5. सं.प्रभात त्रिपाठी,प्रतिनिधी कविताएँ,चन्द्रकांत देवताल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली : 2022 पृ.66
6. सं.रविकांत, प्रतिनिधी कविताएँ ओमप्रकाश वाल्मीकी,राजकमल प्रकाशन दिल्ली : 2024 पृ.56
7. सं.प्रभात त्रिपाठी,प्रतिनिधी कविताएँ,चन्द्रकांत देवताल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली : 2022 पृ.60
8. रामदरश मिश्र, पचास कविताएँ, वाणी प्रकाशन दिल्ली : 2011 पृ. 23
9. सं.रविकांत, प्रतिनिधी कविताएँ ओमप्रकाश वाल्मीकी,राजकमल प्रकाशन दिल्ली : 2024 पृ.100
10. वही पृ. 73

Email- kamladiwan1981@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 82-85
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संभाजी महाराज की वैचारिक दृढ़ता और शहादत: एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. हरीश कुमार सिंह
एसोसिएट,प्रोफेसर 'इतिहास'
राम स्वरुप ग्रामोद्योग परास्नातक महाविद्यालय, पुखरायां कानपुर देहात

Abstract

"यह शोधपत्र छत्रपती संभाजी महाराज की वैचारिक दृढ़ता और शहादत का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शिवाजी महाराज के उत्तराधिकारी के रूप में संभाजी ने मराठा साम्राज्य को न केवल सैन्य रूप से सुदृढ़ किया, बल्कि उसे धार्मिक-सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षक शक्ति भी बनाया। औरंगज़ेब की कट्टर नीतियों और जबरन धर्मांतरण के विरुद्ध उनका संघर्ष केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि एक गहरे वैचारिक टकराव का प्रतिनिधित्व करता है। 1689 में गिरफ्तारी के बाद दिए गए धर्मांतरण के विकल्प को ठुकराकर उन्होंने क्रूरतम यातनाओं को सहा और शहादत को वरण किया। यह बलिदान भारतीय इतिहास में धर्म, आत्मगौरव और स्वतंत्रता के लिए अद्वितीय उदाहरण बन गया। लोकस्मृति, साहित्य और इतिहास में संभाजी महाराज आज भी अस्मिता, साहस और बलिदान के प्रतीक रूप में पूजे जाते हैं। यह शोध उनकी विचारशीलता, अडिगता और ऐतिहासिक भूमिका को समझने का एक प्रयास है।"

भारत का इतिहास ऐसे महानायकों से भरा पड़ा है जिन्होंने न केवल तलवार के बल पर युद्ध जीते, बल्कि अपनी वैचारिक दृढ़ता और मूल्यों की रक्षा करते हुए अमरता प्राप्त की। इन्हीं शौर्यवान, धर्मनिष्ठ और आत्मगौरव से ओतप्रोत महापुरुषों में संभाजी महाराज का नाम अत्यंत गौरवपूर्ण स्थान रखता है। वे न केवल मराठा साम्राज्य के दुस्साहसी उत्तराधिकारी थे, बल्कि उस विचारधारा के दृढ़ स्तंभ भी थे, जो मातृभूमि, धर्म, संस्कृति और स्वाभिमान के लिए अंत तक अडिग रही।संभाजी महाराज का जन्म 14 मई 1657 को हुआ। वे शिवाजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र थे और बचपन से ही उन्हें एक संतुलित योद्धा, विचारशील प्रशासक और बहुभाषी विद्वान के रूप में प्रशिक्षित किया गया। उन्होंने फारसी, संस्कृत, मराठी और लैटिन जैसी भाषाओं में गहरी रुचि ली और 'बुद्धिभूषण' जैसे ग्रंथ की रचना कर साहित्यिक श्रेष्ठता का प्रमाण दिया।[1] किंतु एक वीर राजपुत्र होने के नाते उनका जीवन केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रहा; उन्होंने राजनीतिक षड्यंत्रों, दरबारी प्रतिस्पर्धाओं और औरंगज़ेब जैसे कट्टर मुगल शासक की धार्मिक आक्रामकता का सीधा सामना किया।यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि शिवाजी महाराज की मृत्यु के बाद संभाजी को केवल सत्ता की बागडोर नहीं संभालनी पड़ी, बल्कि उन्हें एक ऐसे आदर्श की भी रक्षा करनी थी जो मराठा स्वराज्य के मूल में था — धर्म, संस्कृति और आत्मगौरव की रक्षा। औरंगज़ेब की जबरन इस्लामीकरण की

नीति के विरुद्ध उनका संघर्ष मात्र एक राजनीतिक विद्रोह नहीं था, वह एक वैचारिक टकराव था जिसमें संभाजी महाराज ने अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया।मुगल सत्ता द्वारा पकड़ लिए जाने पर उन्हें जबरन इस्लाम स्वीकारने की बात कही गई, किंतु संभाजी महाराज ने अत्यंत क्रूर शारीरिक यातनाओं को झेलते हुए भी अपनी संस्कृति, धर्म और मर्यादा से विमुख होना स्वीकार नहीं किया। यह उनका बलिदान नहीं, बल्कि वैचारिक अमरता थी जिसने उन्हें इतिहास में शहीदों की श्रेणी में स्थापित कर दिया।[2] इस शोधपत्र में हम संभाजी महाराज के जीवन को केवल ऐतिहासिक घटनाओं की शृंखला के रूप में नहीं, बल्कि उनके विचारों की दृढ़ता, आत्मबलिदान की भावना और धर्म के लिए समर्पण की गाथा के रूप में विश्लेषित करेंगे। यह प्रयास है उस महान चरित्र को समझने का, जो आज भी भारत की अस्मिता, साहस और आत्मबल की प्रेरणा बना हुआ है।उनका जीवन सतत संघर्ष का पर्याय बन गया था—परंतु यह संघर्ष केवल सत्ता प्राप्ति का नहीं था, बल्कि विचारों, मूल्यों और सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का था।संभाजी महाराज का यह वैचारिक संघर्ष उनकी संपूर्ण जीवन-यात्रा का केन्द्रीय बिंदु रहा। उन्होंने न केवल युद्धभूमि में शौर्य दिखाया, बल्कि विचारभूमि पर भी अपराजेय दृढ़ता दिखाई। यही उनके चरित्र की विशेषता रही, जिसने उन्हें केवल मराठों का शासक नहीं, अपितु हिंदू स्वाभिमान और सांस्कृतिक संरक्षण का प्रतीक बना दिया। उनका जीवन भारत की वैचारिक वीरता का अमिट उदाहरण है।[3]

संभाजी महाराज का यह वैचारिक संघर्ष उनकी संपूर्ण जीवन-यात्रा का केन्द्रीय बिंदु रहा। उन्होंने न केवल युद्धभूमि में शौर्य दिखाया, बल्कि विचारभूमि पर भी अपराजेय दृढ़ता दिखाई। यही उनके चरित्र की विशेषता रही, जिसने उन्हें केवल मराठों का शासक नहीं, अपितु हिंदू स्वाभिमान और सांस्कृतिक संरक्षण का प्रतीक बना दिया। उनका जीवन भारत की वैचारिक वीरता का अमिट उदाहरण है।

माता सईबाई के निधन के बाद संभाजी का बचपन अनेक पारिवारिक और राजनीतिक तनावों के बीच बीता। सौतेली माता सोयराबाई और उनके समर्थकों के षड्यंत्रों के कारण वे लंबे समय तक राजकीय उपेक्षा और सन्देह के वातावरण में रहे। इस कठिन परिस्थिति ने उन्हें मानसिक रूप से और अधिक सशक्त बनाया। युवावस्था में उन्हें अपने ही परिवार और दरबार में विरोध का सामना करना पड़ा, किंतु वे डिगे नहीं। उनका जीवन सतत संघर्ष का पर्याय बन गया था—परंतु यह संघर्ष केवल सत्ता प्राप्ति का नहीं था, बल्कि विचारों, मूल्यों और सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का था।संभाजी महाराज का यह वैचारिक संघर्ष उनकी संपूर्ण जीवन-यात्रा का केन्द्रीय बिंदु रहा। उन्होंने न केवल युद्धभूमि में शौर्य दिखाया, बल्कि विचारभूमि पर भी अपराजेय दृढ़ता दिखाई। यही उनके चरित्र की विशेषता रही, जिसने उन्हें केवल मराठों का शासक नहीं, अपितु हिंदू स्वाभिमान और सांस्कृतिक संरक्षण का प्रतीक बना दिया। उनका जीवन भारत की वैचारिक वीरता का अमिट उदाहरण है।शिवाजी महाराज के निधन के पश्चात 1680 ई. में संभाजी महाराज ने मराठा साम्राज्य की बागडोर संभाली।[4] यह समय मराठा सत्ता के लिए अत्यंत संवेदनशील और संकटपूर्ण था। एक ओर मुगल सम्राट औरंगज़ेब दक्षिण भारत में अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए अत्यधिक सक्रिय था, तो दूसरी ओर मराठा दरबार के भीतर सौतेली माता सोयराबाई के गुट और अन्य दरबारी विरोधियों की राजनीतिक साजिशें लगातार उनकी सत्ता को चुनौती दे रही थीं। ऐसे जटिल और प्रतिकूल समय में संभाजी महाराज ने अद्वितीय साहस, नेतृत्व क्षमता और वैचारिक स्पष्टता का परिचय दिया।उनका शासन केवल शक्ति और विस्तार तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें एक गहरी वैचारिक चेतना भी अंतर्निहित थी। संभाजी महाराज ने अपने शासन को धार्मिक-सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का माध्यम बनाया। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह सिद्ध किया कि मराठा सत्ता किसी एक जाति या प्रदेश की सत्ता नहीं, बल्कि सम्पूर्ण हिंदू समाज के आत्मसम्मान और अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध शक्ति है। वे धर्मनिरपेक्षता की भावना के साथ-साथ अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए भी समर्पित थे।

उनकी वैचारिक दृढ़ता के प्रमुख आयाम थे—**हिंदू समाज की सुरक्षा और एकता,इस्लामी आक्रांताओं द्वारा जबरन धर्मांतरण का विरोध,धर्म, भाषा और संस्कृति के प्रति अगाध निष्ठा,स्वराज्य की अवधारणा के प्रति अडिग प्रतिबद्धता**[5] संभाजी महाराज का नेतृत्व केवल युद्धक्षेत्र में पराक्रम दिखाने तक सीमित नहीं था, अपितु उन्होंने अपने विचारों के माध्यम से मराठा स्वराज्य को एक वैचारिक आंदोलन का रूप दिया। उनका शासन स्वतंत्रता, अस्मिता और आत्मबल के मूलभूत आदर्शों पर टिका हुआ था, जो आज भी प्रेरणा देता

संभाजी महाराज और औरंगज़ेब के बीच का संघर्ष केवल सैन्य या राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई नहीं था, बल्कि यह दो भिन्न विचारधाराओं की टकराहट थी—एक ओर थी संभाजी महाराज की सांस्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा करने वाली दृष्टि, और दूसरी ओर था औरंगज़ेब का कट्टर इस्लामी विस्तारवाद, जो बलपूर्वक धर्मांतरण, मंदिर विध्वंस और गैर-मुस्लिम समाज के दमन पर आधारित था।औरंगज़ेब ने अपने शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता को समाप्त कर दिया था। उसने जज़िया कर पुनः लगाया, मंदिर तोड़े, और हिंदू राजाओं को मुसलमान बनाने के लिए लगातार दबाव बनाया। संभाजी महाराज ने न केवल इस कट्टरता का विरोध किया, बल्कि अपनी नीतियों और युद्धनीति के माध्यम से एक प्रतिरोध की भावना का नेतृत्व किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि मराठा स्वराज्य किसी भी धार्मिक आक्रामकता के समक्ष झुकने वाला नहीं है।

संभाजी महाराज की अंतिम लड़ाई उनके शासनकाल के अंतिम वर्ष 1689 ई. में दक्षिण भारत के संगमेश्वर (वर्तमान रत्नागिरि ज़िला, महाराष्ट्र) क्षेत्र में हुई थी। उस समय वे अपने सैन्य सहयोगी कविकलश के साथ एक रणनीतिक सभा हेतु संगमेश्वर पहुँचे थे। यह यात्रा गुप्त रूप से की गई थी, परंतु औरंगज़ेब को मराठा खुफिया तंत्र की एक चूक के कारण इसकी सूचना मिल गई।मुगल सेनापति मुक़र्रब ख़ान और हमीदउद्दीन ख़ान के नेतृत्व में एक विशाल मुग़ल सेना ने अचानक हमला कर दिया और संभाजी महाराज तथा कविकलश को बंदी बना लिया गया। इस घटना को मराठा इतिहास में विश्वासघातपूर्ण गिरफ्तारी के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह पूर्णतः असैन्य और अचेतावनी अवस्था में हुआ था।[6] गिरफ्तारी के बाद उन्हें बहादुरगढ़ (औरंगाबाद के पास) लाया गया, जहाँ औरंगज़ेब ने उन्हें इस्लाम स्वीकारने का आदेश दिया। संभाजी महाराज ने इसे सिरे से नकार दिया। परिणामस्वरूप, उन्हें अत्यंत अमानवीय यातनाएँ दी गईं। 40 दिनों तक शारीरिक यातनाएं सहने के पश्चात, 11 मार्च 1689 को उनकी नृशंस हत्या कर दी गई।[7] उनका बलिदान न केवल धार्मिक स्वतंत्रता के लिए एक क्रांतिकारी प्रतीक बन गया, बल्कि मराठा स्वराज्य आंदोलन के लिए भी एक भावनात्मक और वैचारिक प्रेरणा बन गया। उनकी यह अडिगता और वैचारिक दृढ़ता भारतीय इतिहास में दुर्लभ उदाहरण है। अंततः 11 मार्च 1689 को संभाजी महाराज की निर्मम हत्या कर दी गई। यह मृत्यु किसी साधारण योद्धा की नहीं, एक विचारशील, संस्कारित और राष्ट्रनिष्ठ शासक की थी। उनका बलिदान केवल शरीर का नहीं, बल्कि अपने विचारों, सिद्धांतों और सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए जीवन समर्पित करने का प्रतीक था।उनकी शहादत ने यह स्पष्ट कर दिया कि सच्चे नायक तलवार से नहीं, अपने विचारों की अडिगता और मूल्यों की रक्षा से अमर होते हैं। संभाजी महाराज की यह वैचारिक विजय आज भी हमें सत्य, निष्ठा और बलिदान के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।

संभाजी महाराज की शहादत भारतीय इतिहास की एक ऐसी अमर घटना है, जिसने न केवल मराठा समाज को जागृत किया, बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और सांस्कृतिक अस्मिता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। उनका बलिदान एक शासक की मृत्यु भर नहीं था, वह एक विचारधारा की विजय थी—एक ऐसी विचारधारा जो धार्मिक स्वतंत्रता, मातृभूमि के प्रति समर्पण और आत्मगौरव की रक्षा के लिए अंतिम क्षण तक संघर्ष करना सिखाती है।संभाजी महाराज की गौरवगाथा महाराष्ट्र के जनमानस में लोकगीतों, पोवाड़ों (वीरगाथाओं) और संत साहित्य के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी जीवंत रही है। लोककवियों और गाथाकारों ने उन्हें धर्मरक्षक, स्वराज्य के शूरवीर और अस्मिता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। उनकी शहादत ने मराठा शक्ति को नष्ट करने के बजाय

और अधिक प्रखर बना दिया। उनके बलिदान से प्रेरणा लेकर राजाराम, ताराबाई और पेशवा बाजीराव जैसे नेतृत्वकर्ताओं ने मराठा साम्राज्य को और अधिक दृढ़ता के साथ खड़ा किया।

इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि संभाजी महाराज की मृत्यु एक मोड़ थी, जहाँ से मुगलों का पतन और मराठों का पुनरुत्थान शुरू हुआ।[8] उनके साहस और बलिदान ने यह सिद्ध कर दिया कि विचारों को तलवार से नहीं मारा जा सकता।संभाजी महाराज की स्मृति आज भी भारत के अनेक स्मारकों, संग्रहालयों, और शौर्य उत्सवों में सजीव है। उनकी जीवनगाथा भारतीय युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है। वे केवल इतिहास के पन्नों के पात्र नहीं, बल्कि उस जीवित चेतना के प्रतीक हैं जो संघर्ष, निष्ठा और बलिदान की गहराइयों से जन्म लेती संभाजी महाराज का जीवन शौर्य, विद्वत्ता और वैचारिक दृढ़ता का अद्वितीय उदाहरण है। उन्होंने न केवल मराठा साम्राज्य की रक्षा की, बल्कि धर्म, संस्कृति और आत्मसम्मान के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। उनकी शहादत एक वीर योद्धा की नहीं, बल्कि एक विचारधारा की जीत थी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सच्चा नेतृत्व मूल्यों की रक्षा में निहित होता है, न कि केवल सत्ता में। आज भी उनकी गाथा लोकस्मृति और इतिहास में अमर है, जो स्वतंत्रता, साहस और आत्मबल की प्रेरणा देती है। वे भारतीय अस्मिता के अमर प्रतीक हैं।संभाजी महाराज का जीवन और बलिदान हमें यह सिखाता है कि सत्ता और बल से विचारों को नहीं जीता जा सकता। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि सच्चा नेतृत्व केवल शासन चलाने में नहीं, अपितु अपने मूल्यों की रक्षा में होता है,उनकी शहादत आज भी भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृति की रक्षा के आदर्श रूप में अंकित है। उनके विचार और साहस आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे।

संदर्भ सूची

1. **सरदेसाई, गोविंद सखाराम.** *New History of the Marathas*, Vol. 1. Bombay: Phoenix Publications, 1946, **p. 186–189**.
2. **सरदेसाई, गोविंद सखाराम.** New History of the Marathas, Vol. 1. Bombay: Phoenix Publications, 1946, **p. 190–196**.
3. **Jadunath Sarkar.** *Shivaji and His Times*. Calcutta: Longmans, Green & Co., 1920, **p. 346–349**
4. **Jadunath Sarkar.** History of Aurangzib, Vol. 5. Calcutta: M.C. Sarkar & Sons, 1920, **p. 368–375**.
5. **Ranade, M.G.** *Rise of the Maratha Power*. Bombay: University of Bombay, 1900, **p. 110–115**
6. Sarkar, Jadunath. History of Aurang, Vol. IV, Longmans, Green & Co., 1920, pp. 416–420.
7. Mahadev Govind. Rise of the Maratha Power, Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1961, p. 134.
8. **Satish Chandra.** Medieval India: From Sultanat to the Mughals, Part II. Har-Anand Publications, 2005, **p. 227–230**.

harishcsjmu09@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 86-89
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

न्यीशी लोकोक्तियों और कहावतों में न्यीशी समाज की पारम्परिक न्याय व्यवस्था

डॉ. मेमा चिरी
सहायक प्रध्यापक,
देरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर अरुणाचल प्रदेश, 791113

अरुणाचल प्रदेश भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित एक सुंदर पर्वतीय राज्य है, जो विविध संस्कृतियों और परम्पराओं का अद्भुत संगम है। यहाँ न्यीशी समुदाय जनसंख्या की दृष्टि से सबसे अधिक है। यह समुदाय 'आबो तानी' (पिता तानी) की संतान माना जाता है। तानी वंशजों में आदी, गालो, आपातानी, तागिन और न्यीशी आते हैं। किसी भी समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए न्याय व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। न्यीशी समाज में भी अपनी एक विशिष्ट पारम्परिक न्याय प्रणाली पाई जाती हैं, जिसे 'न्यीले' कहा जाता है। यह प्रथागत न्याय व्यवस्था समुदाय के भीतर विवादों के समाधान और सामाजिक संतुलन बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है। डॉ. नाबाम नाखा हीना के अनुसार, "न्यीले का अर्थ है ऐसे बुजुर्गों की परिषद् जो समाज की परम्पराओं, प्रथाओं, रीतियों और प्रथागत कानूनों में निपुण होते हैं, और जो विवादों का समाधान करने के लिए नियुक्त किए जाते हैं।"[1]

न्यीले में किसी भी प्रकार के विवादों का समाधान खोजा जाता है। मुख्यत: 'न्यीमे यालुङ' (स्त्री संबंधी विवाद), 'दोचो यालुङ' (चोरी संबंधी यालुङ), 'कदे यालुङ' (खेती संबंधी विवाद), 'सबे यालुङ' (मिथुन संबंधी विवाद), 'न्यीदा यालुङ' (विवाह संबंधी विवाद), 'मिङराना यालुङ' (हत्या संबंधी विवाद) आदि उल्लेखनीय हैं। श्री माता प्रसाद अपनी पुस्तक 'मनोरम भूमि अरुणाचल' में लिखते हैं, "न्यीले को किसी भी प्रकार के जगड़े, चोरी, बेईमानी, अपहरण, बलात्कार, खेती के जगड़े, शादि-विवाह के विवादों को निपटाने तथा सामाजिक उत्सव मनाने अन्य सामाजिक कार्यों में फेसला देने दोषी व्यक्ति को दण्डित करने का पूरा अधिकार है।"[2]

न्यीले के विषय कई प्रकार के होते हैं। यह मूलत: घटनाओं की प्रकृति पर निर्भर करता है। कुछ घटनाएँ अत्यंत जटिल नहीं होती और उनका समाधान आसानी से निकाल लिया जाता है। किन्तु गम्भीर एवं बड़ी घटनाओं का समाधान खोजने में कभी-कभी कई महीने और वर्षों का समय लग जाता है। डॉ. नाबाम नाखा हीना लिखते हैं कि 'न्योदो न्योको न्यीले' को सबसे बड़ा न्यीले माना जाता है। 'न्योदो' का अर्थ बाहर के लोगों से है; अर्थात यह उन विवादों को कहा जाता है जो किसी दूसरे प्रांत या क्षेत्र से जुड़े होते हैं। दूसरा प्रकार 'नामपम न्यीले' है, जिसमें एक गाँव और दूसरे गाँव के बीच के विवाद शामिल होते हैं। तीसरा, 'न्योबो न्यीते न्यीले' अर्थात दो या दो से अधिक वंशों के बीच होने वाले विवाद। चौथा 'नामपम या गुतुङ गोरा बारीक' अथवा 'गोरा न्यीले' है, इसमें गाँव के भीतर के विवादों का समाधान खोजा जाता है। पाँचवां, 'नामबुङ न्यील बारीक' है, जिसमें घर के भीतर हुए विवादों का हल खोजा जाता है। छठा, 'इमेक बारीक' अथवा 'इमेक न्यीले' है, जिसमें परिवार के बीच आपसी विवादों - जैसे पति-पत्नी, माता-पिता-संतान, और भाई-बहन के जगड़ों का समाधान किया जाता है।

नामबुङ बरक कम हतअ इपो मुमाब
नामपम बरक कम न्येदो लिङमुमाब

भावार्थ - ‘नामबुङ’ (घर-परिवार) से जुड़े ‘बरक’ (विवाद) को ‘हतअ’ (घर के बाहर) नहीं ले जाना चाहिए और ‘नामपम’ (गाँव) से जुड़े विवादों को ‘न्येदो’ (गाँव के बाहर) नहीं ले जाना चाहिए।

घर, परिवार तथा गाँव से जुड़े विवादों को सार्वजनिक स्थलों पर नहीं लाना चाहिए, बल्कि इन्हें घर के भीतर ही सुलझाने का प्रयास करना चाहिए। जब तक विवाद घर के भीतर रहता है, तब तक समझौते की गुंजाइश बनी रहती है। किन्तु वही विवाद यदि सार्वजनिक हो जाए, तो मेल-मिलाप की संभावना कम हो जाती है। गोपनीयता से ही एकता और अनुशासन कायम रहता है। कहा भी जाता है - ‘दोल हात तो कोतर तरलिन कुबालो, बारीक हे आसो देकु’ अर्थात आंतरिक पारिवारिक विवाद यदि सार्वजनिक हो जाए, तो समस्या का समाधान नहीं होता, बल्कि वह और अधिक बढ़ जाती है। जो व्यक्ति अपने घर, परिवार या गाँव से जुड़े विवादों को बाहरी लोगों के सामने लाता है, उसके लिए कठोर दंड का प्रावधान भी बताया गया है, जैसे कहा जाता है – ‘न्योसो दुलु-न्योल सातर तरगे’[3] अर्थात ‘जो व्यक्ति किसी मामले को सार्वजनिक करता है, वह उसके किसी भी परिणाम के लिए उत्तरदायी होता है।’

न्यीले के लिए कोई निश्चित स्थान तय नहीं होता। यह यालुङ (विवाद) की प्रकृति पर निर्भर करता है। जब तक विवाद सार्वजनिक नहीं होता, उसका समाधान घर के भीतर ही खोजा जाता है। किन्तु वही विवाद यदि सार्वजनिक हो जाए, तो ‘न्यीले लापांग’ (न्यीले के लिए तय किए गए सार्वजनिक स्थल) पर उसका समाधान खोजा जाता है। जैसे कहा जाता है –

‘न्यीले न्यागम हे न्यीले मारम लो, बीकु न्यागम हे सङबे लो’

भावार्थ - ‘न्यीया’ (व्यक्ति) अपने विवादों का हल ‘मारम’ (चूल्हा) के आस-पास बने स्थानों पर बैठकर खोजता है, और ‘बीकु’ (बंदर) अपने जगड़े पेड़ों की डालियों पर।

न्यीले के प्रधान सदस्य को ‘न्यागम आब’ कहा जाता है। ये प्राचीन परम्परा और संस्कृति के संवाहक होते हैं तथा पौराणिक संदर्भों के ज्ञाता माने जाते हैं। डॉ. नाबाम नाखा हीना के अनुसार, “न्येगम आब वे होते हैं जो प्रथागत न्याय व्यवस्था में दक्ष होते हैं, वाचन कला में निपुण और विवादों को सुलझाने में कुशल होते हैं।”[4] इसलिए कहा जाता है – ‘न्यागम युनाम मे, न्युबू युनाम मे, माजी युनाम मे अकिन गतअ’ अर्थात बहुत सारे वक्ता, अनुष्ठानिक और ‘माजी’ (पारम्परिक घंटीनुमा कीमती वस्तु) में केवल कुछ ही गिने-चुने समाज में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। इनका मूल्य भी अधिक होता है और ये क्षेत्र विशेष में अत्यधिक प्रतिष्ठित माने जाते हैं। जैसे कहा जाता है – ‘न्युबू रोन बोहम नामदू कादन, न्यागम रोनबो ङम पिङबू कादन’ अर्थात झूठे अनुष्ठानिक की पहचान उनके घर में बना ‘नामदू’ (प्रमुख द्वार में बनी बांस की दीवार) से होती है और झूठे वक्ता की पहचान उनके घऱ के भीतर बना ‘न्योदङ’ (प्रमुख स्थान) से।

‘नामदू’ में मिथुन के ‘रङ’ (सींग), ‘लोदप’ (मिथुन के कंधे की हड्डी), ‘हीतुङ’ (बलि किए गए जानवरों के खून से भरा बांस का पात्र), चील के पंख आदि टांगे जाते हैं। ‘न्योदङ’ (चूल्हे के आस-पास बना प्रमुख स्थान) की दीवार पर मिथुन के सींग, शेर के दांत, ‘हरचा’ (लौकी का पात्र), ‘उजुक’ (लौकी का पात्र) आदि लटकाए जाते हैं। न्योदङ को गृह स्वामी अथवा गृह देवता का वास स्थान माना जाता है। यह जगह अत्यंत शुभ और पवित्र मानी जाती है। न्योदङ घर के स्वामी की प्रतिष्ठा और सम्मान का प्रतीक होता है। इसलिए कहा जाता है – ‘न्यीते बोगा न्योदङ’ अर्थात धनी, सम्पन्न और ज्ञानी व्यक्ति की पहचान न्योदङ से होती है। समाज को सुव्यवस्थित बनाए रखने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये लोग अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर समाज को दिशा प्रदान करते हैं। साथ ही यह भी कहा जाता है - ‘ददक तायिङ हम कोला चोबो, दोन्यी पोपुम हम कोचो बो’ अर्थात विषैला कुकरमुत्ता को सबसे पहले पहचानने वाला और उगते सूरज की पहली किरणों को देखने वाला वही होता है, जो

ज्ञान और अनुभव में सिद्ध हो। अभ्यास से ही वाचन में दक्षता आती है। कहा जाता है – 'तागे न्यागम, कागे जिङमो' अर्थात एक सफल वक्ता वही बनता है, जिसमें किसी दूसरे ज्ञानी वक्ता को सुनने की ललक हो। और एक कुशल शिल्पकार वही बनता है, जो दूसरे निपुण शिल्पकारों को देखकर सीखने का प्रयास करता है। इसी निरंतर प्रयास और सीखने की प्रवृत्ति से व्यक्ति में परिपक्वता आती है और उसकी कुशलता में वृद्धि होती है।

न्युबू बूदा बोहम ताजर लङदुङ ते
न्यागम गामदा बोहम कोतर लङदुङ ते

भावार्थ - जो व्यक्ति सफल अनुष्ठानिक और दक्ष वक्ता बनेगा, उसकी नियति 'आने दोन्यी' (सूर्य माता) ने पहले ही तय कर दी थी।

'ताजर' एक प्रकार के बांस का नाम है, जिसका आकार छड़ी के तरह पतला होता है। इसे अनुष्ठानों में छड़ी रूप में प्रयोग किया जाता है और यह शुभ माना जाता है। यह 'न्युबू' (अनुष्ठानिक) को दिशा प्रदान करता है। अनुष्ठान के दौरान मंत्रों का उच्चारण करते हुए, इसके सहारे 'उयू मोको' (आत्मिक जगत) में प्रवेश किया जाता है। यह मनुष्य और आत्मिक जगत के बीच सेतु का कार्य करता है। इसी प्रकार, 'कोतर' (बांस को छीलकर बनाई गई पतली डंडी) का प्रयोग दक्ष 'न्यागम' (वक्ता) द्वारा किया जाता है। कोतर की लम्बाई लगभग दस से बारह इंच होती है। कोतर को बुद्धि और तर्कशीलता का प्रतीक माना जाता है। केवल बुद्धिमान और ज्ञानी व्यक्ति ही इसके प्रयोग में सक्षम होता है। एक कोतर को तथ्य के समान माना जाता है। इसके माध्यम से 'न्यागम आब' (प्रधान वक्ता) दोनों पक्षों के विवादों का समाधान खोजता है। अनौपचारिक न्याय प्रकिया में कोतर को ऐसा माना जाता है जैसे किसी अलिखित दस्तावेज में बिन्दु का कार्य।

'न्यागम-न्युबू' (अनुष्ठानकर्ता और वक्ता) द्वारा लिए गए निर्णयों का पालन करना अनिवार्य होता है। ऐसा न करने पर व्यक्ति का जीवन संघर्षपूर्ण और दखमय हो जाता है। कहा जाता है कि यदि कोई उनके निर्णयों का उल्लघंन करता है, तो वह गंभीर विपत्तियों का सामना कर सकता है, यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी हो सकती है। समाज भी ऐसे व्यक्ति को अस्वीकार कर देता है और वह सामाजिक रूप से बहिष्कृत हो जाता है। इसका कारण यह है कि न्यीले का प्रधान सदस्य समाज के प्रतिनिधि होते हैं, और उनके निर्णयों में पूरे गांव की सामूहिक स्वीकृति निहित होती है। श्री माता प्रसाद के अनुसार, "जनजातियों का सामाजिक जीवन उनके समुदाय में प्रचलित रीति-रिवाज के अनुसार चलता है, जो विलेज कौंसिल (गाँव सभा) के नियंत्रण होता है। जो लोग समाज के रीति-रिवाज का पालन नहीं करते उनका सामाजिक बहिस्कार तक कर दिया जाता है।"[5]

इस समाज में अपराध करने वालों के लिए सजा भी तय होती है। जैसे कहा जता है – 'योसी बोहम सुतु लो, दचो बोहम पाम्प लो' अर्थात व्यभिचारी करने वालों की सजा 'सुतु' (कटे हुए पेड़ का अंतिम हिस्सा) में बांधकर दी जाती है और चोरी करने वालों को 'पाम्प लो' (सार्वजनिक स्थल) में ले जाया जाता है। यह पारम्परिक न्याय व्यवस्था का एक सशक्त उदाहरण रहा है। ऐसा माना जाता है – 'योसी दोचो चोरब रेनङ, मारम हे मिकदुकन' अर्थात व्यभिचारी और चोरी करना आरम्भ कर दे तो घर-परिवार का माहौल बिगड़ता है और सुख, शांति भंग हो जाती है। 'दोचो बोहम चङदो, योसी बोहम माहलो' अर्थात चोरी और व्यभिचारी करने पर सख्त जुर्माना लगाया जाता है ताकि समाज का संतुलन बना रहे। अपराध की प्रकृति के आधार पर जुर्माना तय किया जाता है, गम्भीर व संगीन अपराध जैसे हत्या करने पर मृत व्यक्ति के विभिन्न अंगों के लिए मूल्य तय किया जाता है, जैसे सिर, आँख, कान, हाथ, कलेजा आदि। 'सबे' (मिथुन), 'माजी' (घंटीनुमा कीमती वस्तु), 'ताल' (थाली), 'रोर' (दाव), 'तासंग' (माला) आदि पारम्परिक कीमती वस्तुओं से जुर्माना देना पड़ता है।

न्यायिक प्रक्रिया के दौरान निर्णायकों को अत्यंत सतर्क और संयमित रहना आवश्यक है। उन्हें मादक पदार्थों और नशीली चीजों से दूर रहने की सलाह दी जाती है, ताकि किसी के साथ अन्याय न हो सके। कहा जाता है -

‘उदङ ङे रूङलुङ, चिङबुम ङे रूङजी’[6] अर्थात जो लोग शराब में ही डूबे रहते हैं, उनके कानों तक सत्य की बातें नहीं पहुंच पाती, और जो व्यक्ति केवल भोजन में लिप्त रहता है, उसकी आंखों में आसानी से धूल झोंकी जा सकती है। इसलिए, न्यायाधीशों को चाहिए कि वे निर्णय करते समय अपना मन शांत रखें और स्वयं भी ऐसे समय में मांस-मदिरा का परित्याग करें। शराबी वैसा नहीं सुनता जैसा कहा जाता है, और भोजन में व्यस्त व्यक्ति का ध्यान बातों में नहीं, बल्कि खाने में लगा रहता है। इसी संदर्भ में एक लोकोक्ति प्रचलित है - ‘तासु हे पुरूक बागया, इकी हे मुतुङ बागया’ अर्थात ‘तासु’ (जंगली बिल्ली) ‘पुरूक’ (मुर्गी) को ले जाती है और बिना कारण ‘इकी’ (कुत्ता) ‘मुतुङ’ (जली हुई लकड़ी) से मार खाता है। इसका आशय यह है कि यदि न्याय करते समय सतर्कता न बरती जाए, तो अपराध किसी और का होता है लेकिन दंड किसी निर्दोष को मिल जाता है।

निर्णय देते समय व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखा जाता है। कहा जाता है – ‘तातक कम लअपअ गालो मिङतिङ यारो होस दोकमा, तानो हम ओक कोइ गालो मिङतिङ न्यीछअ चिकस दोकमा’ अर्थात मेंढक तथा घोंघे के जीभ और पूंछ नहीं होती, यानि उनमें मांस बहुत कम होता है। इसका अर्थ है कि गरीब व्यक्ति के पास देने के लिए कुछ नहीं होता। उनके पास केवल उनका शरीर ही बचता है। यदि इस बात का ध्यान न रखा जाए, तो न्याय अन्याय में बदल सकता है और न्याय का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जाता है।

न्यीले में किसी भी बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान किया जाता है। कहा जाता है – ‘पोबम रातर रापे कुल, कामकयो सोकिङ गालो तक’ अर्थात ‘पोबम’ (बांस से बनी बड़ी टोकड़ी) में कोदो से तैयार मदीरा को भर दी जाती है। फिर उसमें उथले हुए पानी की बूंदों को धीरे-धीरे चारों ओर से डाला जाता है। टोकरी के भीतर लगे ‘काकम ओको’ (काकम नामक पत्तों) की नली के सहारे वह मदीरा छनकर नीचे रखे पात्र में इकट्ठा हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि समस्या चाहे पोबम जैसी बड़ी क्यों न हो, उसका समाधान काकम पत्तों की नली के समान अवश्य खोजा जा सकता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि न्यीशी समाज की न्याय व्यवस्था अत्यंत सशक्त और संगठित है। आज भी न्यीले की प्रासंगिकता बनी हुई है और अनेक विवादों का समाधान पारम्परिक तरीकों से किया जाता है। भले ही वर्तमान समय में पुलिस व्यवस्था और कॉर्ट-कचहरी की सुलभ हो गए हो, फिर भी लोगों में प्रथागत न्याय प्रणाली के प्रति आस्था बनी हुई है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें समय की बचत होती है, भाषा की कोई बाधा नहीं होती और खर्चे भी न्यूनतम आता है। इस प्रकार यह न्याय व्यवस्था समाज में संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

संदर्भ सूची –

1. Dr. Nabam Nakha Hina, CUSTOMARY LAWS OF NYISHI TRIBE OF ARUNACHAL PRADESH, AUTHOR PRESS, P. 65
2. श्री. माता प्रसाद, मनोरम भूमि अरुणाचल, प्रभात प्रकाशन, 1995, पृ. 176
3. Dr. Nabam Nakha Hina, THE Nyishi Words And Proverbs, Authorspress, p. 225
4. Dr. Nabam Nakha Hina, CUSTOMARY LAWS OF NYISHI TRIBE OF ARUNACHAL PRADESH, AUTHOR PRESS, P. 64
5. श्री. माता प्रसाद, मनोरम भूमि अरुणाचल, प्रभात प्रकाशन, 1995, पृ. 168
6. अप्रकाशित शोध ग्रंथ, डॉ. मेमा चिरी, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश

फॉन नं -7005608821

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 90-97
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दक्षिण भारत में हिंदी की भूमिका

ESWARI.A
ASSISTANT PROFESSOR - HINDI
RATHINAM COLLEGE OF ARTS AND SCIENCE,
POLLACHI MAIN ROAD, EACHANARI, COIMBATORE-641021

शोध सार:

दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रसार, उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक भूमिका तथा वर्तमान स्थिति पर केंद्रित है। हिंदी, जो भारत की राजभाषा है, अब केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रही, बल्कि दक्षिण भारत में भी इसका प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। यह अध्ययन इस बात की गहन विवेचना करता है कि कैसे तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है। इसमें विशेष ध्यान दिया गया है कि किस प्रकार महात्मा गांधी के प्रयास, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना, पर्यटन, सिनेमा, शैक्षणिक संस्थानों और रोजगार की आवश्यकता जैसे तत्व हिंदी के प्रसार में सहायक बने। इसके अतिरिक्त, यह शोध सांस्कृतिक विविधता में एकता, भाषा के माध्यम से सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने की दिशा में हिंदी की भूमिका को रेखांकित करता है। यह लेख दर्शाता है कि किस प्रकार एक संपर्क भाषा के रूप में हिंदी दक्षिण भारत में सांस्कृतिक और भाषाई पुल का कार्य कर रही है।

बीज शब्द:

हिंदी, दक्षिण भारत, भाषा नीति, सांस्कृतिक एकता, गांधीजी, एपीए शैली, भाषाई विविधता

दक्षिण भारत में हिंदी की भूमिका

भारत एक विशाल और विविधताओं से परिपूर्ण राष्ट्र है, जहाँ अनेक भाषाएँ, धर्म, जातियाँ, और संस्कृतियाँ सह-अस्तित्व में हैं। यह विविधता न केवल भारत की सांस्कृतिक समृद्धि का प्रतीक है, बल्कि इसकी सामाजिक और भाषाई जटिलताओं को भी दर्शाती है। हिंदी, जो भारत की राजभाषा है, न केवल उत्तर भारत में व्यापक रूप से बोली जाती है, बल्कि अब धीरे-धीरे दक्षिण भारत के भी कई भागों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रही है।

संविधान की आठवीं अनुसूची में समाविष्ट भाषाओं में हिंदी को प्रमुख स्थान प्राप्त है, जबकि दक्षिण भारत की प्रमुख भाषाएँ – तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम – भी संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। भारत सरकार द्वारा संचालित 'राजभाषा प्रचार योजना' के माध्यम से गैर-हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी शिक्षण को बढ़ावा दिया गया है (PIB, 2023)।

दक्षिण भारत, जो तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ जैसी भाषाओं का क्षेत्र है, वहाँ हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार एक चुनौतीपूर्ण किन्तु आवश्यक प्रक्रिया रही है। यह क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से हिंदी विरोधी आंदोलनों का साक्षी रहा है, विशेषतः तमिलनाडु में। फिर भी, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तकनीक, शिक्षा, पर्यटन, सिनेमा और व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ी है। 2011 की जनगणना के अनुसार, शहरी क्षेत्रों में युवाओं के बीच हिंदी सीखने की प्रवृत्ति में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। इसके अतिरिक्त, सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों और मल्टी-नेशनल फर्मों में द्विभाषिक दक्षता (हिंदी-अंग्रेजी) अब एक वांछनीय योग्यता मानी जा रही है।

इस आलेख के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है कि हिंदी किस प्रकार दक्षिण भारत में संपर्क भाषा के रूप में उभर रही है, और यह प्रक्रिया किस प्रकार राष्ट्रीय एकता को सशक्त बनाने में सहायक है। इसमें उन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारकों की भी चर्चा की गई है, जो इस भाषायी परिवर्तन को प्रभावित कर रहे हैं। साथ ही, महात्मा गांधी के विचारों और प्रयासों के आलोक में हिंदी की भूमिका को ऐतिहासिक और समकालीन संदर्भों में समझने का प्रयास भी किया गया है। इसके अतिरिक्त, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जैसे दक्षिण भारत में जन्मे राष्ट्रीय नेताओं ने भी हिंदी में संवाद करते हुए राष्ट्रीय एकता के सशक्त उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

भारत की विभिन्न संस्कृतियाँ

भारत की सांस्कृतिक विविधता विश्व में अद्वितीय मानी जाती है। यहाँ की भाषा, धर्म, जाति, परंपरा और रीति-रिवाजों की बहुलता इस राष्ट्र की एकता को परिभाषित करती है। भारत में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है, किन्तु संविधान की आठवीं अनुसूची के अनुसार कुल 22 भाषाओं को मान्यता प्राप्त है, और 400 से अधिक भाषाएँ व बोलियाँ दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होती हैं (Wikipedia, 2024)। यह भाषिक विविधता भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक समृद्धि की परिचायक है।

भारत को हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिख धर्मों की जन्मभूमि के रूप में जाना जाता है। ये सभी धार्मिक परंपराएँ भारतीय समाज की विविधता में योगदान करती हैं। हिन्दू धर्म, जो बहुसंख्यक जनसंख्या का धर्म है, स्वयं में शैव, वैष्णव, शक्त, स्मार्त जैसे पंथों में विभाजित है, जो इसके आंतरिक वैविध्य को दर्शाता है (तिवारी, 1982)।

वेशभूषा और खानपान की दृष्टि से भी भारत अत्यंत विविधतापूर्ण है। पंजाब का परांठा, गुजरात का ढोकला, दक्षिण का डोसा-इडली, बंगाल की माछ-भात, असम की थाली और कश्मीर का वज़वान – ये सभी क्षेत्रीय खानपान की सांस्कृतिक झलक प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार से वेशभूषा में भी क्षेत्रीयता स्पष्ट दिखाई देती है – जैसे कर्नाटक में इल्लकल साड़ी, तमिलनाडु में कांजीवरम, उत्तर भारत में सलवार-कुर्ता तथा पश्चिम में गुजराती घाघरा-चोली आदि।

भारत के प्रमुख धर्मों में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध और यहूदी शामिल हैं। इन सभी धर्मों के अनुयायी एक ही भूखंड पर सह-अस्तित्व की भावना के साथ रहते हैं। सामाजिक मान्यताओं, रीतियों और संस्कारों में विभिन्नता होते हुए भी भारतीय संस्कृति ने सभी को एक सूत्र में बांधने का कार्य किया है। यूनेस्को (2020) ने भी भारत को 'इंटरकनेक्टेड कल्चरल डेस्टिनेशन' के रूप में मान्यता दी है।

पर्व और जयंतियाँ

भारत में उत्सव केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं। गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, गाँधी जयंती जैसे राष्ट्रीय पर्व न केवल देश की उपलब्धियों का उत्सव हैं, बल्कि ये सभी जातियों, धर्मों और भाषाओं के नागरिकों को एक साझा मंच पर लाते हैं।

भारत की सांस्कृतिक विशेषता यह है कि यहाँ लोग एक-दूसरे के त्योहारों में भाग लेते हैं, भले ही वे किसी अन्य धर्म के अनुयायी हों। उदाहरण के लिए, दीपावली, ईद, क्रिसमस, और बैसाखी जैसे पर्व भारत की बहु-धार्मिक

समाज में मिल-जुल कर मनाए जाते हैं। बुद्ध पूर्णिमा, महावीर जयंती और गुरु पर्व जैसे आयोजनों में विभिन्न धर्मों के अनुयायियों की सहभागिता यह प्रमाणित करती है कि भारत में आध्यात्मिकता सार्वभौमिक मूल्य है।

भारत अपने पारंपरिक और लोक नृत्यों के लिए भी विख्यात है। शास्त्रीय नृत्य जैसे भरतनाट्यम, कथक, ओडिसी, मणिपुरी और मोहिनीअट्टम देश के अलग-अलग क्षेत्रों की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं। इसी प्रकार लोक नृत्यों में पंजाबी भाँगड़ा और गिद्दा, गुजराती गरबा, राजस्थानी घूमर, असमिया बिहू, महाराष्ट्र का लावणी और तमिलनाडु का कोलाट्टम जनजातीय और ग्रामीण जीवन की जीवंत अभिव्यक्तियाँ हैं।

सांस्कृतिक शोधकर्ताओं के अनुसार, इन नृत्यों और उत्सवों के आयोजन से न केवल सांस्कृतिक पहचान सशक्त होती है, बल्कि वे क्षेत्रीय भाषा, संगीत, वेशभूषा और परंपराओं को भी संरक्षित रखने का कार्य करते हैं (Sharma, 2020)। संस्कृति मंत्रालय द्वारा प्रतिवर्ष 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक महोत्सव' जैसे आयोजनों में इन कलाओं को एक राष्ट्रीय मंच प्रदान किया जाता है।

भारतीय संस्कृति: विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति

भारतीय संस्कृति की उत्पत्ति सिंधु-सरस्वती सभ्यता से मानी जाती है, जो लगभग 5000 वर्ष पूर्व विकसित हुई थी। यह संस्कृति केवल धार्मिक विश्वासों तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक पक्ष को छूती है – चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य, व्यापार, विज्ञान या समाज।

भारत में 'विविधता में एकता' का दर्शन केवल नारा नहीं, बल्कि जनमानस का स्वाभाविक भाव है। अलग-अलग धर्मों, भाषाओं, खानपान और जीवनशैली के बावजूद भारतीय समाज एक सामूहिक ताने-बाने की तरह है, जिसमें विभिन्न रंग एक साथ गुँथे हुए हैं। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता इसे वैश्विक स्तर पर सम्मान और आकर्षण का केंद्र बनाती है।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) ने भारत की परंपराओं, त्योहारों और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को विश्व सांस्कृतिक धरोहरों की सूची में शामिल किया है – जिनमें कुंभ मेला, योग, रामलीला, और बंगाल की दुर्गा पूजा जैसे आयोजन प्रमुख हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति अपनी जड़ों से जुड़ी हुई होने के साथ-साथ वैश्विक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

भारत में परिवार व्यवस्था, सामाजिक ताने-बाने, भाषा की अभिव्यक्ति, रीति-रिवाजों का पालन और धार्मिक सहिष्णुता सब मिलकर एक ऐसी संस्कृति का निर्माण करते हैं जो आधुनिकता और परंपरा दोनों का सामंजस्यपूर्ण संतुलन प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि भारत की संस्कृति आज भी जीवंत, समावेशी और सार्वभौमिक मूल्यों से परिपूर्ण है।

सांस्कृतिक मूल्य और परंपरा से लगाव

भारत, जिसे सांस्कृतिक विविधता की भूमि कहा जाता है, अपने नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक परंपराओं के लिए वैश्विक स्तर पर सम्मानित है। यहाँ के लोगों में दया, सहिष्णुता, सेवा-भाव, सौम्यता और आपसी सहयोग की भावना सदियों से व्याप्त है। भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आधुनिकता को अपनाने के बावजूद वह अपनी जड़ों और सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा हुआ है।

भारत की सांस्कृतिक नींव अहिंसा, करुणा और सेवा पर आधारित है, जिसे महात्मा गांधी ने अपने जीवन और विचारों से सुदृढ़ किया। गांधी जी का यह कथन कि "अगर तुम सच में बदलाव लाना चाहते हो, तो क्रोध से नहीं, प्रेम और विनम्रता से बात करो," आज भी सांस्कृतिक नीति का मूलमंत्र है (Gandhi, 1948)। उन्होंने भारत को केवल एक राजनीतिक राष्ट्र नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक समाज के रूप में देखा था।

आज भी भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित है, जहाँ बच्चों को परंपरागत मूल्यों की शिक्षा परिवार के बुजुर्गों से मिलती है। यह सामाजिक संरचना जीवन में अनुशासन, आदर और सहिष्णुता को बढ़ावा देती है। शोधकर्ता रामचंद्र गुहा के अनुसार, "भारतीय संस्कृति में सबसे बड़ा गुण उसकी आत्म-सुधार की प्रवृत्ति और विविधताओं को आत्मसात करने की क्षमता है" (Guha, 2015)।

भारत में योग, ध्यान, आयुर्वेद और धार्मिक अनुष्ठानों की परंपरा न केवल आत्मिक शांति का मार्ग है, बल्कि यह सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य का आधार भी है। यूनेस्को द्वारा योग को विश्व सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा मानना, भारतीय आध्यात्मिक मूल्य की वैश्विक मान्यता का प्रतीक है।

भारतीय संस्कृति: अतिथि देवो भवः

भारतीय परंपरा में अतिथि को देवता का स्थान दिया गया है। 'अतिथि देवो भवः' केवल एक वाक्य नहीं, बल्कि जीवन पद्धति है, जो प्रत्येक भारतीय परिवार के व्यवहार में परिलक्षित होती है। यह विचार न केवल घरेलू आतिथ्य में, बल्कि धार्मिक और सामाजिक आयोजनों में भी देखा जा सकता है। भारत आने वाले पर्यटकों को यह अनुभव प्रत्यक्ष रूप से होता है, जब वे यहाँ के गर्मजोशी से स्वागत और सांस्कृतिक सौहार्द का अनुभव करते हैं।

भारतीय संस्कृति में नैतिक शिक्षा, व्यवहार कुशलता, विनम्रता और सहिष्णुता को उच्च स्थान प्राप्त है। यह गुण बच्चों में बाल्यकाल से ही रोपित किए जाते हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में पीढ़ी दर पीढ़ी एक सामंजस्य और मूल्यनिष्ठता बनी रहती है।

भारतीय धार्मिक परंपराएँ भी जीवन के हर पक्ष को निर्देशित करती हैं – जैसे व्रत, पूजा, यज्ञ, गंगा स्नान, सूर्य नमस्कार, ध्यान और सत्संग। इन सभी धार्मिक गतिविधियों का उद्देश्य केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक सद्भाव भी है। साथ ही, विभिन्न धर्मों की उपस्थिति के बावजूद, भारत में सांप्रदायिक सौहार्द और धार्मिक सह-अस्तित्व की परंपरा बनी रही है।

इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, "भारत की सांस्कृतिक निरंतरता केवल उसके धार्मिक ग्रंथों में नहीं, बल्कि लोगों के जीवन व्यवहार और आपसी संबंधों में देखी जाती है" (Thapar, 2004)। यही संस्कृति आज भी भारत को विश्वपटल पर एक विशिष्ट पहचान दिलाती है – एक ऐसा राष्ट्र जहाँ आध्यात्मिकता और आधुनिकता एक साथ पनपती हैं।

दक्षिण भारत में हिंदी का बढ़ता प्रभाव

भारत में हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्य हिंदी भाषी माने जाते हैं। इन राज्यों में हिंदी न केवल संवाद का प्रमुख माध्यम है, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और प्रशासनिक कार्यों में भी इसका व्यापक उपयोग होता है। दूसरी ओर, दक्षिण भारत – जिसमें तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और केरल शामिल हैं – वहाँ की स्थानीय भाषाएँ जैसे तमिल, कन्नड़, तेलुगु, और मलयालम प्रमुखता से बोली जाती हैं। इसके बावजूद, हाल के वर्षों में हिंदी का प्रभाव इन राज्यों में उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है।

2011 की जनगणना और अन्य भाषा आधारित शोध रिपोर्टों के अनुसार, दक्षिण भारत में हिंदी जानने वालों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। तमिलनाडु जैसे राज्य, जहाँ ऐतिहासिक रूप से हिंदी के विरोध का प्रचलन रहा है, वहाँ भी अब युवा वर्ग और सेवाक्षेत्र में हिंदी बोलने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। व्यक्तिगत अनुभवों और यात्रा संस्मरणों में भी यह परिलक्षित होता है कि स्थानीय ऑटो चालकों, दुकानदारों और सेवा प्रदाताओं द्वारा टूटी-फूटी हिंदी में संवाद किया जा रहा है – यह परिवर्तन की एक स्पष्ट झलक है।

कांग्रेस नेता शशि थरूर ने भी अपने एक भाषण में इस बिंदु को उठाया था कि दक्षिण भारत के लोग, हिंदी भाषी उत्तर भारतीयों की तुलना में, दूसरी भाषाओं को अपनाने के प्रति अधिक खुले और लचीले हैं। यह भाषा-

स्वीकार्यता दक्षिण भारत के शिक्षा प्रणाली, सॉफ्टवेयर उद्योग, और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापक प्रभाव का परिणाम है, जहाँ द्विभाषिक या त्रिभाषिक दक्षता एक आम आवश्यकता बन चुकी है (Tharoor, 2023)।

सिनेमा जगत ने निभाया बड़ा रोल

दक्षिण भारत में हिंदी के प्रति दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में मनोरंजन उद्योग, विशेष रूप से सिनेमा, ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पहले जहाँ भाषा विवाद राजनीतिक बहस और क्षेत्रीय अस्मिता से जुड़ा मुद्दा था, वहीं अब सिनेमा ने इन भाषायी सीमाओं को पार कर सांस्कृतिक सेतु का कार्य किया है। आज तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ फिल्मों को हिंदी भाषी दर्शकों द्वारा न केवल सराहा जाता है, बल्कि इन फिल्मों का हिंदी में डब संस्करण भी बहुत लोकप्रिय है।

दूसरी ओर, दक्षिण भारत में भी हिंदी फिल्मों का प्रसार और उनकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ी है। हिंदी फिल्म अभिनेता और उनकी फिल्मों का स्थानीय प्रशंसकों में बड़ा वर्ग है, जो हिंदी को केवल एक भाषा ही नहीं, बल्कि मनोरंजन और राष्ट्रीय पहचान से जोड़ कर देखता है।

इसके अतिरिक्त, ओटीटी प्लेटफॉर्म जैसे नेटफ्लिक्स, अमेज़न प्राइम, और डिज़्नी+हॉटस्टार ने क्षेत्रीय भाषाओं की सामग्री को हिंदी में प्रस्तुत कर एक नई संस्कृति को जन्म दिया है – जहाँ एक तमिल दर्शक हिंदी फिल्म देख रहा है, और एक हिंदी दर्शक मलयालम वेब सीरीज़ का आनंद ले रहा है। यह भाषा विनिमय न केवल सांस्कृतिक दृष्टि से सकारात्मक है, बल्कि भाषायी समावेशिता को भी बढ़ावा देता है।

भारत सरकार की 'तीन-भाषा नीति', एनईपी 2020 में दिए गए भाषा शिक्षण दिशा-निर्देश, और स्कूलों में हिंदी को वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाए जाने की नीतियाँ भी इस प्रभाव को बढ़ावा देती हैं। इन प्रयासों के माध्यम से हिंदी अब केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह धीरे-धीरे एक अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में स्थापित होती जा रही है।

दक्षिण भारत में हिंदी का बढ़ता प्रभाव

भारत में हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्य हिंदी भाषी माने जाते हैं। इन राज्यों में हिंदी न केवल संवाद का प्रमुख माध्यम है, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और प्रशासनिक कार्यों में भी इसका व्यापक उपयोग होता है। दूसरी ओर, दक्षिण भारत – जिसमें तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और केरल शामिल हैं – वहाँ की स्थानीय भाषाएँ जैसे तमिल, कन्नड़, तेलुगु, और मलयालम प्रमुखता से बोली जाती हैं। इसके बावजूद, हाल के वर्षों में हिंदी का प्रभाव इन राज्यों में उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है।

2011 की जनगणना और अन्य भाषा आधारित शोध रिपोर्टों के अनुसार, दक्षिण भारत में हिंदी जानने वालों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। तमिलनाडु जैसे राज्य, जहाँ ऐतिहासिक रूप से हिंदी के विरोध का प्रचलन रहा है, वहाँ भी अब युवा वर्ग और सेवाक्षेत्र में हिंदी बोलने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। व्यक्तिगत अनुभवों और यात्रा संस्मरणों में भी यह परिलक्षित होता है कि स्थानीय ऑटो चालकों, दुकानदारों और सेवा प्रदाताओं द्वारा टूटी-फूटी हिंदी में संवाद किया जा रहा है – यह परिवर्तन की एक स्पष्ट झलक है।कांग्रेस नेता शशि थरूर ने भी अपने एक भाषण में इस बिंदु को उठाया था कि दक्षिण भारत के लोग अनेकता में एकता की इस छवि को मैं नत मस्तक हो प्रणाम करता हूँ। इकबाल के शब्दों में:

"सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा।
हम बुलबुले हैं इसके, ये गुलिस्तां हमारा।"
भारत की सांस्कृतिक एकता"

भारत की सांस्कृतिक एकता उसकी सबसे बड़ी पहचान है। यह केवल धर्मों का सहअस्तित्व नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में एक सांझा दृष्टिकोण और सामूहिक चेतना को दर्शाती है। यह एकता, भले ही विविधता के समुद्र में तैर रही हो, फिर भी एक सुदृढ़ संस्कृति की प्रतिनिधि है। भारत में यह एकता विभिन्न परंपराओं, आस्थाओं, जीवन मूल्यों और रीति-रिवाजों में स्पष्ट रूप से झलकती है।

यह देश, जहाँ ढाई कोस पर भाषा और स्वाद बदलते हैं, वहाँ भी एकता की भावना अडिग है। संविधान द्वारा स्वीकृत 22 भाषाएँ, अनेक धर्मों, जातियों, और समुदायों के होते हुए भी भारतीय संस्कृति एक सशक्त सूत्र में बंधी हुई है। धार्मिक रीतियों और पर्व-त्योहारों की विविधता होने के बावजूद, देश भर में इनका उत्सव भाव, सहयोग और भाईचारे के साथ मनाया जाना सांस्कृतिक एकता का उदाहरण है।

भारत में परिधान, खान-पान, बोली और व्यवहार में विविधता होते हुए भी लोग एक-दूसरे की परंपराओं का सम्मान करते हैं। यह परंपरा केवल सामाजिक सौहार्द ही नहीं बढ़ाती, बल्कि राष्ट्रीय भावना को भी प्रबल करती है। तीर्थ स्थलों की संख्या और विविधता के बावजूद, ये सभी सांस्कृतिक संगठनों के सूत्रधार के रूप में काम करते हैं। जैसे अमरनाथ से लेकर रामेश्वरम तक, या बद्रीनाथ से लेकर कन्याकुमारी तक – यात्रा करने वाला भारतीय केवल धार्मिक नहीं, सांस्कृतिक एकता का संदेशवाहक भी बन जाता है।

इतिहासकारों के अनुसार, भारत की सांस्कृतिक एकता का मुख्य कारण इसकी समावेशी सोच और आत्मसात करने की शक्ति है, जिसने विभिन्न युगों और आक्रांताओं के प्रभावों को आत्मसात कर एक बहुरंगी संस्कृति का निर्माण किया (Chakrabarty, 2017)। यही कारण है कि भारत की संस्कृति समय के थपेड़ों के बावजूद आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है।

गांधीजी और हिन्दी

महात्मा गांधी न केवल स्वतंत्रता आंदोलन के नेतृत्वकर्ता थे, बल्कि वे एक सांस्कृतिक विचारक भी थे। उनका भाषा-दर्शन भारत की विविधता को ध्यान में रखते हुए एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उन्होंने कहा था कि “हिंदी भारत की जनभाषा है और यही इसे राष्ट्रीय संपर्क भाषा बनाने का आधार बनाती है” (Gandhi, 1942)।

गांधीजी का मानना था कि भारत की एकता भाषाई समरसता के बिना अधूरी है। उन्होंने 'यंग इंडिया', 'हरिजन सेवक' और 'हिंदी नवजीवन' जैसे प्रकाशनों में बार-बार यह लिखा कि भाषा संघर्ष को नहीं, संवाद को उत्पन्न करे। उनका यह दृष्टिकोण न केवल हिंदी के समर्थन में था, बल्कि सभी भारतीय भाषाओं के सम्मान में भी था।

गांधीजी अंग्रेजी के विरोधी नहीं थे, किंतु वे मानते थे कि किसी भी विदेशी भाषा को राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति नहीं बनाया जा सकता। उनका मत था कि हिंदी को किसी पर थोपा न जाए, बल्कि यह स्वेच्छा से, समानता और आपसी समझ के साथ स्वीकार की जाए। इसीलिए उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बनाया और आजीवन इसके लिए संघर्षरत रहे।

हिंदी को जनमानस से जोड़ने के उनके प्रयासों का प्रमाण यह है कि उन्होंने दक्षिण भारत में भी इसके प्रचार के लिए आंदोलन चलाया और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव रखी। यह केवल भाषायी अभियान नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक आंदोलन था, जो आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

उपसंहार

"जियो या वन दो"

यह वाक्य केवल सहिष्णुता की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भारतीय समाज की भाषाई दृष्टिकोण का आधार बन सकता है। दक्षिण भारत में हिंदी के प्रति बढ़ता आकर्षण यह दर्शाता है कि लोगों में भाषा को लेकर स्वाभाविक जिज्ञासा और उपयोगिता की समझ विकसित हो रही है। यह लगाव केवल बाह्य नहीं, बल्कि आंतरिक और उपयोग के अनुभव पर आधारित होना चाहिए। जब हम भाषाई विविधता को स्वीकार कर, संवाद के लिए एक साझा भाषा का चुनाव करते हैं, तब अनेक समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

भाषा किसी जाति या समुदाय की निजी संपत्ति नहीं होती। यह एक सामाजिक संसाधन है जो अभिव्यक्ति, संवाद और समझ को सुलभ बनाती है। हिंदी को राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार करना केवल राष्ट्रीयता का प्रतीक नहीं, बल्कि व्यावहारिक आवश्यकता भी है। यह आवश्यक है कि लोग हिंदी को स्वाभाविक रूप से अपनाएँ – न कि मजबूरी में या विरोध में।

हमें न केवल अपनी मातृभाषा से प्रेम करना चाहिए, बल्कि अन्य भाषाओं का भी आदर करना चाहिए। भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में हर नागरिक को कम-से-कम एक संपर्क भाषा अवश्य आनी चाहिए, ताकि भाषायी बाधाएँ राष्ट्रीय संवाद में रुकावट न बनें। हिंदी इस संदर्भ में एक सहज विकल्प है, जिसकी जड़ों में भारतीयता और विविधता के लिए सम्मान है।

इसलिए, यह आवश्यक है कि हम न तो अपनी मातृभाषा को त्यागें, न ही संपर्क भाषा से परहेज करें। मातृभाषा को बनाए रखते हुए, मातृभूमि के लिए एक साझा भाषा का चयन ही भारत के बहुलतावादी लोकतंत्र की पहचान है।

"संयुक्त हम खडे बंटे हम गिरे"

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गांधी, एम. के. (1942). भारत की जनभाषा हिन्दी. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंडल।
2. तिवारी, भोलानाथ. (1982). हिन्दी भाषा की सामाजिक भूमिका. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा।
3. तिवारी, यतीन्द्र. (1984). समकालीन दक्षिण भारतीय भाषा साहित्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
4. शशि थरूर. (2023). हिंदी बनाम क्षेत्रीय भाषाएँ: भारतीय राजनीति में भाषा का स्थान. नई दिल्ली: प्रेस सूचना ब्यूरो।
5. चक्रवर्ती, दीपेश. (2017). भारत की सांस्कृतिक बहुलता. दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. ठाकुर, रमेश. (2019). भारत की भाषाई राजनीति. कोलकाता: प्रभात प्रकाशन।
7. राजभाषा विभाग. (2021). भारत में राजभाषा हिन्दी का स्वरूप और प्रयोग. नई दिल्ली: गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
8. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा. (2020). हिंदी प्रचार और दक्षिण भारत. मद्रास: सभा प्रकाशन।
9. प्रकाश, ओ. पी. (2007). हिन्दी और भारतीय एकता. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
10. शर्मा, के. एन. (2016). भारत की सांस्कृतिक एकता में हिंदी की भूमिका. वाराणसी: भारती प्रकाशन।
11. मिश्रा, नलिन. (2020). गांधी और भारतीय भाषाएँ. पटना: संवाद प्रकाशन।
12. अग्रवाल, वी. पी. (2018). भाषा और समाज: भारत का संदर्भ. दिल्ली: एशिया पब्लिकेशन।
13. UNESCO. (2020). Intangible Cultural Heritage of India. यूनेस्को। https://ich.unesco.org
14. Ethnologue. (2023). Languages of the World: Hindi as Third Most Spoken Language. SIL International. https://www.ethnologue.com
15. Ministry of Education. (2020). नई शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार। https://education.gov.in
16. PIB. (2023). हिंदी दिवस पर राजभाषा विभाग की रिपोर्ट. प्रेस सूचना ब्यूरो। https://pib.gov.in

17. वर्मा, एस. एन. (2015). हिंदी सिनेमा और भाषायी प्रभाव. मुंबई: सिनेमा अध्ययन संस्थान।
18. पांडेय, सुरेश. (2022). दक्षिण भारत में हिंदी भाषा की स्वीकृति. बेंगलुरु: भारतीय भाषा अनुसंधान केंद्र।
19. गुप्ता, मंजुला. (2019). सांस्कृतिक मूल्य और आधुनिक भारत. जयपुर: संस्कृति प्रकाशन।
20. त्रिपाठी, शशांक. (2021). भाषाई विविधता और राष्ट्रीय एकता. भोपाल: भारतीय लोकवाणी।

revakaleeswari1999@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 98-99
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

1857 की क्रांति में आगरा क्षेत्र की भूमिका का अध्ययन

Harsh kumar
Research scholar history,
Dr.Shrikrishna singh
professor history,
P.K.K.Government Degree college Jalalabad Shahjahanpur

प्रस्तावना -

सन् 1757 प्लासी युद्ध के पश्चात औपनिवेशिक शासन द्वारा अपनाई गई नीतियों तथा उसके स्वरूप के विरुद्ध असंतोष के रूप में 1857 का प्रथम बड़ा एवं व्यापक विद्रोह हुआ। जिसका प्रभाव आगरा क्षेत्र पर भी पड़ा। ब्रिटिश विस्तारवादी नीतियों, आर्थिक शोषण तथा धार्मिक नीतियों ने भारतीय राज्यों के शासको, जमीदारों, व्यापारियों, सीपाहियों, किसानों, शिल्पकारों, मौलवियों तथा पंडितों इत्यादि की स्थिति को आंतरिक रूप से प्रतिकूल प्रभावित किया। यह असंतोष धीरे-धीरे 1857 के हिंसक तूफान के रूप में भड़का जिसने अंग्रेज़ी साम्राज्य की न्यू हिला दिया।

1857 का विद्रोह जिसे सिपाही विद्रोह, भारत की प्रथम स्वतंत्रता संग्राम क्रांति व संग्राम के नाम से जाना जाता है। यह विद्रोह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक सशस्त्र विद्रोह था। यह विद्रोह लगभग दो वर्षों तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साथ आगरा क्षेत्र में भी स्फुटित हुआ । इस विद्रोह की शुरुआत मेरठ छावनी से प्रारंभ हुआ, परंतु कुछ समय बाद या बड़ा स्वरूप लेकर उभरा, परिणाम स्वरुप विद्रोह का अंत भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्ति समाप्त होकर शक्ति ब्रिटिश क्राउन के हाथ में जा पहुंची। सन् 1813 में कंपनी ने एक तरफा मुक्त व्यापार नीति अपनाने पर ब्रिटिश व्यापारियों को आयात करने की पूरी छूट मिल गई, परंपरागत तकनीक से बनी भारत की वस्तुएं कंपनी के सामने टिक ना सकी और भारतीय शहरी हस्तशिल्प को अकल्पनीय क्षति उठानी पड़ी। भारतीय रियासतों के संबंध में कंपनी की प्रभावी नियंत्रण, सहायक संधि तथा व्यपगत के सिद्धांत जैसे नीतियों से जनता असंतोष एवं विप्लव को और तीव्र बल प्रदान किया। कंपनी प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार विशेष रूप से पुलिस, अदालतों तथा निम्न अधिकारियों में जो असंतोष के कुछ कारण में एक कारण था। काले गोरे का भेद स्पष्ट रूप से देखने से तथा भारतीयों की उपेक्षा से जन असंतोष और भी बढ़ा दिया। नौकरियों में योग्यता के बजाय धर्म को पद का आधार बनाया गया। इसके अलावा एनफील्ड बंदूक के बारे में फैली अफवाह ने सिपाहियों की आशंका को अधिक बढ़ा दिया था। सिपाहियों को लगा कि कंपनी उनकी जाति और धर्म परिवर्तन करवाना चाह रही है।

उद्देश्य-

1. 1857 के विद्रोह में आगरा क्षेत्र की के लोगों की भूमिका को जानना।

2. 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का अध्ययन करना।
3. 1857 के विद्रोह के बारे में जानकारी प्रदान करना।

1857 के विद्रोह में आगरा क्षेत्र का योगदान-

आगरा किला अंग्रेजों की एक बड़ी सैनिक छावनी थी। 1857 की क्रांति में आगरा क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। विद्रोह की खबरें जब आगरा पहुंची तब पैदल सेवा में विद्रोह का ऐलान कर करके दिल्ली की तरफ बढ़ने लगे। 30 जुलाई तक अंग्रेज को किले में जाने के लिए मजबूर कर दिया। 44 वीं एवं 67वीं रेजीमेंट की दो कंपनियों ने विद्रोह किया और दिल्ली की कोच कूच कर दिया। आगरा के हिंदू और मुसलमान दोनों ने ही विद्रोह में सक्रिय रूप से सम्मिलित रहे। आगरा क्षेत्र में विद्रोह का प्रचार मौलवी अहमद शाह एवं शहजादा फिरोज शाह द्वारा किया गया। आगरा की पुलिस भी विद्रोह तथा विद्रोहियों के साथ हिस्सा लेने के लिए कुछ लोग विद्रोह में सम्मिलित हुए। 'आगरा के स्वतंत्रता सेनानियों की अमर गाथा' नामक पुस्तक में वर्णन है कि दिल्ली सम्राट के शहजादे का आगमन आगरा में हुआ था। 28 मई को नसीराबाद और 3 जून को नीमच की विद्रोही सेनानियों का आगरा आगमन हुआ। कंपनी की सहायता के लिए आए करौली रियासत के सेनानायक सैफुल्लाह खां ने अपने सेना को वापस भेजा। धौलपुर के देवहंस गुजर ने खेरागढ़ तहसील एवं जाजऊ में आक्रमण करके अंग्रेजी राज को समाप्त कर दिया था। जुलाई में आगरा की लगभग सभी तहसीलों एवं थानों में क्रांतिकारियों का नियंत्रण स्थापित हो गया था। आगरा के पुलिस अधिकारी मुराद अली के नेतृत्व में आगरा पुलिस सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया था। मुराद अली ने आगरा शहर की गलियों में ढोल नगाड़े पिटवाकर अंग्रेजी राज समाप्त होने और बादशाह का शासन शुरू होने की घोषणा किया। आगरा क्षेत्र के ठाकुर गोविंद सिंह, ठाकुर हीरा सिंह, चाद बाबा, पृथ्वी सिंह आदि ने भी अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। आगरा क्षेत्र के आम किसान भी इसमें सहायता प्रदान किया था। तात्या टोपे भी कुछ समय आगरा क्षेत्र में शरण ली थी।

निष्कर्ष -

1857 की क्रांति भारत में अंग्रेजी शासन इतिहास की एक अद्भुत पूर्व घटना थी। जिसके फलस्वरूप भारती समाज के कई वर्ग आपस में एकजुट हुए। वैसे तो यह विद्रोह वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहा। परंतु इसने भारतीय राष्ट्रवाद के विजारोपण करने में सफल रहा। साथ ही 1857 के विद्रोह में आगरा क्षेत्र की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - आर सी अग्रवाल
2. हमारे राष्ट्रपिता- गोपाल प्रसाद व्यास
3. संवैधानिक विकास तथा स्वाधीनता संघर्ष -सुभाष कश्यप
4. भारत का मुक्ति संग्राम -अयोध्या सिंह
5. हिस्ट्री आपकी नेशनल कांग्रेस- पट्टाभी सीतारमैया
6. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आगरा का योगदान- मनोहर लाल शर्मा
7. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष- बिपिन चंद्र

Mob.no.8448063565

Email.Harshrajdeva@gmail.com

Email.Skrishana51@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 100-101
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ भीमराव अंबेडकर का बौद्ध धर्म के साथ संबंध का अध्ययन

Dinesh kumar
Research scholar history,
Dr.Shrikrishna singh
professor history,
P.K.K.Government Degree college Jalalabad Shahjahanpur

परिचय-

विश्व भर में अनेक धर्म को माना जाता है। जिसमें कुछ प्राचीन धर्म तो कुछ मध्यकालीन धर्म या कुछ आधुनिक धर्म है। समाज एवं सभ्यता के अनुसार धर्म का उदय हुआ। धर्म से तात्पर्य यह है कि 'धारति इति धर्मः' अर्थात धारण करने योग्य जो हो। हिंदू, बौद्ध, जैन, सिख, पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम मुख्य धर्म जो भारत के साथ विश्व भर में प्रचलित हैं। हिंदू इन्हीं धर्म में एक प्राचीन धर्म है। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का जन्म भी हिंदू धर्म के महार जाति में हुआ था। जो हिंदू धर्म के वर्ण व्यवस्था के चतुर्थ वर्ण शुद्र में आता है। हिंदू धर्म में चार वर्ण है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यही वर्ण व्यवस्था बाद के कालखंड में जाति का स्वरूप लेती है। जाति व्यवस्था एक सामाजिक पदानुक्रम है, जो कई सदी से निरंतर चली आ रही है। यह व्यवस्था जन्म को आधार मानकर कई जातियों में विभाजित किया जाता है। यह जाती विभाजन सामाजिक गतिशीलता को सीमित करता है। इस जाति व्यवस्था से छुआछूत उच्च- नीच जैसी कुरीतियों को जन्म दिया है। जहां पर कुछ निम्न जाति के लोगों को अछूत माना जाता है, तथा उनके साथ बराबरी का व्यवहार नहीं होता, इस प्रकार के जाति व्यवस्था के कारण ही दलितों को असमानता और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। इन्हीं सभी कर्मों से प्रभावित होकर डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का हिंदू धर्म के साथ विश्वास में कमी आयी। तथा उनका झुकाव बौद्ध धर्म के जाति विरोधी दृष्टिकों करुणा, अहिंसा, सत्य के साथ नैतिकता एंव सदाचार से अधिक प्रभावित हुए।

उद्देश्य

1. डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के बौद्ध धर्म के साथ संबंध का अध्ययन करना।
2. डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के धर्म संबंधित विचार को जानना।
3. डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के बौद्ध धर्म से संबंधित विचार का वर्णन करना।

डॉ भीमराव अंबेडकर का बौद्ध धर्म के साथ झुकाव

भारतीय धर्म में एक हिंदू धर्म की विसंगतियों की आलोचना करने वाले डॉक्टर भीमराव अंबेडकर को नास्तिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि डॉक्टर भीमराव अंबेडकर धर्म में अटूट आस्था रखते थे। उन्होंने अपने जीवन काल में

लगभग सभी प्रचलित धर्म का अध्ययन किया। परंतु वे सदैव उस धर्म को पसंद करते थे। जिसमें मानव- मानव एक समान हो तथा जिसमें जाति धर्म के नाम पर भेदभाव ना व्याप्त हो। वह हिंदू धर्म की रूढ़िवादिता तथा तमाम सामाजिक असमानता के कारण आग्रह करने पर ना सुधार होने से अपना धर्म परिवर्तन करने का प्रारंभ में विचार लिया था। हिंदू धर्म परिवर्तन करने से पूर्व उन्होंने ईसाई, इस्लाम, सिख आदि सभी मुख्य धर्म पर विचार किया। किंतु इन सभी धर्म में कुछ खामियां मिलने से राष्ट्रवादी विचारों से उनकी पुष्टि ना हो सकने तथा डॉक्टर भीमराव अंबेडकर विदेशी धर्म को स्वीकार नहीं कर सकते थे, जो उनके स्वदेश प्रियता का परिचायक कहा जाए जा सकता है। अंततः डॉक्टर भीमराव अंबेडकर बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। जिसका उद्भव एवं विकास भारतीय उपमहाद्वीप में हुआ था। बौद्ध धर्म में किसी भेदभाव के बिना सभी मानव समाज को अपना लेने के नियम थे। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर मनु को अभारतीय मानते थे। क्योंकि उनका मानना था कि मनुस्मृति ही हिंदू धर्म में वर्ण व्यवस्था का रूढ़ि रूप देने का आधार माना। उनका विरोध आडंबर एवं अंधविश्वासों से था। उनका कहना था, कि पूरे समाज पर और समाज की चेतना पर अंधविश्वासों का कोहरा व्याप्त है। उन्होंने उन धर्माचार्य का डटकर विरोध किया जो देश की एकता और अखंडता को प्राथमिकता ना देकर ऐसे अचार नियम बनाकर समाज को समाज के लोगों पर दैवी आदेश के रूप में स्थापित करने में लगे थे। उनके दृष्ट में ऐसे उपदेश शूद्रों को सदैव गुलाम बनाए रखना चाहते हैं। शुद्र वेद पाठ नहीं कर सकता था। शुद्र पशुपालन गाय पाल नहीं सकता था, गाय का दूध उनके घर नहीं होना चाहिए। धर्म प्रवचन सुनने के अधिकार से वे वंचित थे। धन संग्रह नहीं कर सकते थे। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर की विचारधारा लिक से हटकर बिल्कुल नवीन था। जो आधुनिक स्वतंत्र समाज के हित में थी। इसलिए अंततः डॉ भीमराव अंबेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा अपने समर्थकों के साथ लिया।

निष्कर्ष

बौद्ध धर्म अपने सरलता, बोधगम्यता और लोकप्रियता के साथ अपने भावनात्मक तत्वों, आसान नैतिक संहिता और स्थानी भाषा के उपयोग के कारण डॉक्टर भीमराव अंबेडकर इससे आकर्षित हुए। बौद्ध धर्म का भारतीय संस्कृति पर बहुत गहरा प्रभाव है। बौद्ध धर्म में विश्व भर में करुणा, सत्य, अहिंसा जैसे महान आदर्शवादी गुना का प्रचार किया आता है। आतः यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म में व्याप्त समानता, स्वतंत्रता और भारतीयता के मूल्यों के कारण बौद्ध धर्म स्वीकार किया, जो उन्हें हिंदू धर्म में नहीं मिला था। बौद्ध धर्म में उन्हें अस्पृश्यता जाति व्यवस्था भेदभाव से मुक्ति जैसे मार्ग दिखे थे जिसे उन्होंने दलित उत्थान तथा दलित को सशक्त बनाने और उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने में मदद कर सकता था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. युगपुरुष अंबेडकर -राजेंद्र मोहन भटनागर
2. अंबेडकर एक जीवन- शशि थरूर
3. बुद्ध और अंबेडकर- डॉ सुरेंद्र अज्ञात
4. अछूत कौन और कैसे- जुगल किशोर
5. डॉक्टर अंबेडकर लाइफ एंड मिशन- धनंजय किर
6. डॉक्टर अंबेडकर स्मरण और स्मृतियां- रितु नानक, चंद्र बाबा साहब
7. दलित दस्तावेज- एम आर विद्रोही

Mob.no.9911250279, Email.dineshkumar9717@gmail.com , Email.Skrishana51@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 102-106
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Exploring the Influence of SHGs on Women's Development in Sonitpur District of Assam

Dr. Manali Upadhyay
Guide
Professor, RNTU,
Dr. Ravindra Pathak
Co-guide
Dean& Professor, RNTU,
Naimisha Saikia
Research Scholar,
Rabindranath Tagore University, Bhopal, MP, India

Abstract
This paper examines the functioning and impact of Self-Help Groups (SHGs) in the Mazgaon Gram Panchayat of Sonitpur District. The district, primarily an agricultural region, is home to various major crops and animal husbandry, which contributes significantly to rural income and employment opportunities. SHGs play a crucial role in empowering economically disadvantaged groups, facilitating their engagement in income-generating activities. However, challenges such as business management issues, lack of essential knowledge due to illiteracy, complex loan formalities and insufficient training hinder their progress. The transformative power of education and industrialization has led to significant shifts in societal perspectives and attitudes. Empowerment, including economic and political dimensions, is essential for sustainable progress. The innovative concept of micro-financing through SHGs has empowered women by placing economic control in their hands, fostered self-confidence, and reduced dependency on men, marking a significant stride towards gender equality and self-sufficiency.

Keywords: Women education, women entrepreneurship, Self-help groups

Introduction

Self Help Groups, commonly consisting of ten to twenty individuals within a specific community, are usually formed with the explicit aim of addressing either social or economic needs among their members. These groups are characterized by their self-governance and peer-controlled nature, uniting people who share similar socio-economic backgrounds and a mutual aspiration to work together towards a shared goal. The significance of such groups is particularly pronounced in a country like India, where a significant portion of the population, residing in both rural and urban areas, grapples with poverty that proves insurmountable through individual

efforts alone. This underscores the pivotal role that collective action plays in uplifting marginalized communities by providing them with a platform for self-empowerment. For individuals seeking self-employment opportunities and financial autonomy, access to credit is a fundamental requirement. In this context, Self-help groups (SHGs) play a crucial role by offering collateral-free loans to those segments of society that traditionally face challenges in securing financial support from conventional banking institutions. Consequently, the prospects for successful income generation are considerably heightened when individuals opt to engage with SHGs, as opposed to pursuing independent endeavors. The growing involvement of women in these self-help initiatives further underscores the potential for driving entrepreneurial development and igniting financial progress, thereby fostering the creation of new job opportunities and contributing to the expansion of the Gross Domestic Product (GDP). This concerted effort not only translates into tangible economic advancements but also yields invaluable social benefits by combating feelings of despondency and dismantling prevalent social barriers. Education and industrialization have led to significant societal shifts, transforming perceptions and behaviors. Empowerment, encompassing economic and political aspects, is crucial for sustainable development. Micro-financing through Self-Help Groups (SHGs) has given women agency over their economic resources, fostering self-assurance and reducing reliance on men. This strategy has revolutionized financial inclusivity and empowered women by providing them with opportunities to participate in economic activities. This ripple effect resonates across societal structures, creating a more equitable and empowered environment for all involved. This innovative approach to financial inclusion is a significant step towards gender parity and self-reliance.

Review of literature

According to a study conducted by Sammaiah (2022), self-help empowerment was thoroughly analyzed within the context of impoverished rural communities. The study highlighted the formation of groups comprising rural residents who, collectively motivated to eradicate poverty, banded together to uplift their economic standing. Through participation in the Self-Help Group program, these individuals experienced a significant enhancement in their general knowledge, awareness levels, and negotiation skills.

Elam et al. (2019) further delved into the disparity between men and women in choosing entrepreneurial paths, with their research revealing a notable prevalence of men opting for entrepreneurial endeavors versus women. This gap in entrepreneurial pursuits among genders underscores an important area for intervention and support to foster greater gender equality in economic opportunities and outcomes.

Moreover, research conducted by **Samisetty and Ch (2022)** shed light on the proliferation of Self-Help Groups (SHGs) among rural Indian women as a means to engage in independent economic activities and advance their own socio-economic statuses. Leveraging insights gleaned from a field survey, the study explored the impact of banking connections on social change and the socio-economic development of SHGs. The opinions expressed by SHG participants' revealed valuable perspectives on the correlation between participation in SHGs and subsequent advancements in social change and overall economic progress.

Vermani and Sihag (2022) conducted a study that underscored the pivotal role of SHGs as a practical instrument for fostering women's economic empowerment. Recognizing the crucial link between women's empowerment and national economic prosperity, the study highlighted the positive influence of SHG membership on income levels, employment opportunities, and savings profiles.

In a separate study by **Leelavathi and Murugesan (2020)**, the research objectives centered on examining socio-economic data and exploring the employment as well as income-generating potential of self-help organizations. By assessing the multifaceted impacts of self-help initiatives on individuals' economic well-being and employment prospects, the study aimed to contribute to a comprehensive understanding of the role played by self-help groups in driving positive socio-economic change within communities.

The general state of SHG in rural areas, including their reputation as a family, the rearing of their children, their schooling, managing domestic issues, their finances, and numerous activities, may be something for which one can be satisfied after the research is finished.

Objectives of the study

1. To study the income generating activities adopted by women entrepreneurs.
2. To study the impactful factors of women entrepreneurship.
3. To study the problem faced by the women entrepreneurs.

Functions of SHGs

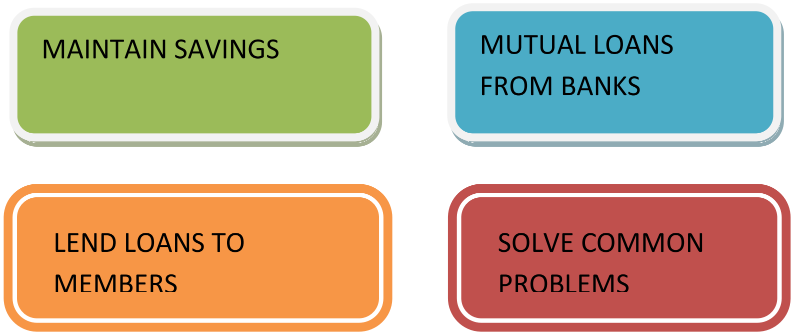

Need for SHGs

The lack of access to credit and financial services in India is a major issue, with four main reasons being lack of guaranteed security, weak community networks, poor credit assimilation capacity, and insufficient reach of institutions. The Reserve Bank of India has created the Financial Inclusion Index (2021) to measure this, focusing on three dimensions: access, usage, and quality. Community networks play a crucial role in credit linkage, promoting self-employment and empowering women, especially in rural areas.

Benefits of SHGs

Financial inclusion is crucial for ensuring that all individuals have access to financial services and opportunities. By enhancing the efficiency of government services, we can improve the overall effectiveness of public institutions. Social integrity is essential for building trust and cohesion within communities. Gender equality and women's empowerment are key factors in creating a more inclusive and equitable society. Active participation in democracy is vital for ensuring that the voices of all citizens are heard and represented. Changes in the standard of living can lead to improvements in overall quality of life for individuals and communities. Increasing employment opportunities is essential for driving economic growth and reducing poverty. Lastly, bank literacy plays a significant role in enhancing financial education and empowering individuals to make informed decisions about their finances.

Methodology

The Study is related to entrepreneurship development through SHGs in Sonitpur District of Assam, the study constitutes all the SHGs constituted mainly by Women. It has seven Blocks. Out of the seven blocks, one block i.e., Gabharu block has been selected. In Gabharu block there are 8 Panchayats, out of eight; one Mazgaon Panchayat (there are 159 SHGs functioning with 10 members in each group) has been drawn out for the purpose of drawing samples for this study keeping in view of achieving the objectives of the study. It deals with the rural women entrepreneur who has adopted different income generating activities. The respondents are taken from the member of SHGs through which women are engaged themselves in different income generating activities .Thirty SHGs from gram Panchayat has been selected for the purposive random sampling method. From these thirty SHGs, five members from each SHG are selected for the present study.130 women entrepreneurs are selected from Mazgaon Panchayat to study. The primary data for collecting the information is a set of structured interview schedule and face to face interview.

Results and Discussion

Income generating activities adopted by women entrepreneurs: On the basis of local resources, there are different economic activities which are undertaken by SHG members.

Table 1: Income generating activities adopted by respondents

Sl. No	Income generating activities	Frequency	Percentage (%)
1	Tailoring/Weaving	26	20
2	Agricultural farm/Food Processing	59	45
3	Animal husbandry	45	35

From the above table it has been seen that out of total respondents highest 59 sample respondents i.e. 45% have taken agriculture farm activity as their income generating activity. Another activity under taken by the sample respondents is animal husbandry where 35% are engaged. Tailoring /weaving activity by 20%. It is found from the study that agriculture is the primary occupation of the most of the women entrepreneurs.

Impactful factors of women entrepreneurship: The present study focuses on various impactful factors of women in rural areas that influence their entrepreneurial choice.

Table 2: Impactful factors of women entrepreneurship

Sl. No.	Impactful factors	Frequency	Percentage (%)
1	Self-employment	60	46
2	Socio-economic status	35	27
3	Family responsibility	35	27

From the above table it has been seen that out of total respondents highest 60 sample respondents i.e. 46% have taken self-employment as their impactful factor. Another factor under taken by the sample respondents is family responsibility where 35% are engaged in Socio-economic activities. It is found from the study that self-employment is the impactful factors of the most of the women entrepreneurs.

<u>Problem faced by women entrepreneurs:</u> In recent time, women are interested in entrepreneurial activity. A variety of problems are faced by the entrepreneurs in establishing and running their business .The following table shows the major constraints faced by women entrepreneur.

<u>Table 3: Problem faced by women entrepreneurship</u>

Sl. No.	Problems faced by women entrepreneurship	Frequency	Percentage (%)
1	Social problems	23	18
2	Financial problems	30	23
3	Other problems(lack of resources)	77	59

From the above table it has been seen that out of total respondents highest 30 sample respondents i.e. 23% have financial problem faced by women entrepreneurs. Another problem is lack of resources where 59% are engaged followed by social problems by 18%. It is found from the study that other problems are the major problem faced by the most of the women entrepreneurs.

Conclusion

Self Help Groups (SHGs) are pivotal entities in providing essential credit access to individuals living in poverty, a critical aspect in the overarching goal of poverty alleviation. Moreover, the substantial impact of SHGs extends to the realm of women's empowerment, as these groups offer support and assistance to economically disadvantaged women, aiding them in cultivating valuable social connections. The pursuit of financial autonomy through self-employment opportunities not only fosters economic independence but also acts as a catalyst for the enhancement of various societal indicators such as literacy rates, healthcare quality, and effective family planning strategies. In essence, the multifaceted contributions of SHGs transcend mere financial assistance, encompassing a holistic approach towards sustainable development and inclusive growth.

References

1. Samisetty S, Ch SC. Impacts of bank linkage on social transformation and socio-economic development of SHGs: A Case Study of Warangal District. International Transaction Journal of Engineering, Management, & Applied Sciences & Technologies. 2022;13(4):1-10.
2. Hechevarría D, Bullough A, Brush C, Edelman L. Highgrowth women's entrepreneurship: Fueling social and economic development. J Small Business Managed. 2019;57:5-13. DOI: 10.1111/jsbm.12503.
3. Leelavathi M, Murugesan R. Employment and Income Generation Opportunities among Self Help Group of Krishnagiri District in Tamil Nadu. European Journal of Molecular & Clinical Medicine. 2020;7(05):1065-1071.
4. Vermani S, Sihag R. Self Help Groups: An approach for economic empowerment of rural women in India. Asian Journal of Agricultural Extension, Economics & Sociology. 2022;40(4):107-113.
5. Ayogu DU, Agu EO. Assessment of the contribution of women entrepreneur towards entrepreneurship development in Nigeria. International Journal of Current Research and Academic Review. 2015;3(10):190-207.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 107-111
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

‘पार्टिशन’ कहानी में साम्प्रदायिकता के दुष्प्रभावों का सामाजिक विश्लेषण

मनीष कुमार
शोधार्थी,
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सारांश :-
भारत जैसे बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश में सांप्रदायिकता एक अत्यंत जटिल और गंभीर समस्या बनकर उभरी है। प्रारंभ में जहां इसका संबंध केवल राजनीतिक उद्देश्यों से था, वहीं अब यह समाज और संस्कृति का हिस्सा बनती जा रही है। इसका सीधा असर विभिन्न समुदायों के बीच अविश्वास, तनाव और दूरी के रूप में देखा जा सकता है। इससे न केवल समाज की नैतिकता को क्षति पहुँची है, बल्कि देश की एकता और धर्मनिरपेक्ष ढांचे पर भी गंभीर संकट उत्पन्न हुआ है। कुछ धार्मिक कट्टरपंथी और चरमपंथी ताकतें इस जहर को फैलाने का कार्य कर रही हैं, जिससे सहिष्णुता और भाईचारे की भावना कमजोर पड़ रही है। इन्हीं स्थितियों को स्वयं प्रकाश की कहानी ‘पार्टिशन’ बेहद संवेदनशील ढंग से उजागर करती है। कहानी का मुख्य पात्र कुर्बान भाई विभाजन के समय अपनों को खोकर भी सांप्रदायिक नहीं बनते, परंतु आज़ाद भारत में लगातार हो रहे भेदभाव और सामाजिक अलगाव उन्हें सांप्रदायिक होने पर मजबूर कर देते हैं। यह कहानी न केवल विभाजन के दुष्परिणामों की ओर संकेत करती है, बल्कि आज के समाज में व्याप्त कट्टरता और सांप्रदायिकता की भी सशक्त आलोचना प्रस्तुत करती है।

बीज शब्द :- कहानी, सांप्रदायिकता, स्वयं प्रकाश, कुर्बान भाई, विभाजन, पीड़ा, धार्मिक असहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, सांस्कृतिक।

विषय प्रवेश :-

स्वयं प्रकाश हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार हैं, जिनका कथा लेखन मुख्यतः एक बेहतर समाज और बेहतर दुनिया के निर्माण की दिशा में समर्पित है। वे “एक अधिक सुंदर, कम क्रूर, अधिक न्यायपूर्ण और अधिक समतापूर्ण समाज बनाने का सपना देखते हैं।”[1] उनकी कहानियाँ सामाजिक सरोकार की कहानियाँ हैं जो साधारण जीवन के साधारण चरित्रों, घटनाओं, जीवन की स्थितियों और तमाम उतार-चढ़ाव से बुनी हुई हैं। स्वयं प्रकाश ने अपने लेखन के माध्यम से समाज के सामने सांप्रदायिकता, जातिवाद, छुआछूत, स्त्री विमर्श, और मध्यवर्गीय सामाजिक समस्याओं जैसी गंभीर मुद्दों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वयं प्रकाश का लेखन स्पष्ट रूप से एक समतामूलक समाज के स्वप्न के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। उनकी कहानी 'पार्टीशन' सांप्रदायिकता का सरोकार कराती है। यह कहानी "प्रगतिशील रुझान तथा हिंदू-मुस्लिम संबंधों के उजले और काले पक्षों पर केन्द्रित एक सशक्त और विचारोतेजक कहानी है जो कि

न सिर्फ पार्टीशन के अतीत के दर्द को जीती है बल्कि वर्तमान समय में मौजूद सांप्रदायिक दंश को भी बड़ी संजीदगी से उकेरती है।"[2] इस कहानी में सांप्रदायिक उन्माद से भरे तत्वों द्वारा कुर्बान भाई को शिकार बनाया जाता है।

सन 1947 में भारत-पाक विभाजन के समय हुए दंगों में कुर्बान भाई अपना सब कुछ खो देते हैं। उनके दो भाइयों का कत्ल कर दिया गया, दुकान जला दी गई, सभी रिश्तेदार पाकिस्तान चले गए, इन सब घटनाओं से आहत कुर्बान भाई के पिता सदमे में चले गए और उनकी भी मृत्यु हो गई, नौकर घर की पूंजी लेकर भाग गए। "चूंकि आमतौर से भारतीय राजनीति और आम भारतीय जनता समावेशी विचारधारा और साझे मूल्यों की पैरोकार रही है अतः उसने अपने इसी अपनापे से बहुत से मुसलमानों को पाकिस्तान जाने से रोका तो कुछ मुसलमान अपनी भारतीय मातृभूमि के मोह के कारण, तो कुछ अपनी राष्ट्रभक्ति के कारण भारत में ही रह गए।"[3] अतः दंगों का भयानक त्रासदी झेलने के बाद भी मातृभूमि से मोह और अपनत्व के कारण कुर्बान भाई भी पाकिस्तान नहीं गए।

दंगों के बाद कुर्बान भाई का जीवन संघर्षों से भरा रहा। विभाजन से पहले उनका जीवन अत्यंत समृद्ध और सुखद था—"कुर्बान भाई के पिता का अजमेर में रंग का लंबा-चौड़ा कारोबार था। दो बड़े-बड़े मकान थे... नया बाजार में खूब बड़ी दुकान थी... कुर्बान भाई उस वक्त अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे। न भविष्य की चिंता थी न बुढ़ापे का डर। मज़े से ज़िन्दगी गुज़र रही थी। इश्क, शायरी, हॉस्टल, ख्वाब!"[4] लेकिन विभाजन के बाद सांप्रदायिक तनाव ने समाज को गहराई से प्रभावित किया। मुसलमानों को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा और रोजगार देना भी समाज के लिए असहज हो गया। अतः कुर्बान भाई को "कोई काम, कोई नौकरी नहीं मिली जो उस दौर में मुसलमानों का मिलना बेहद मुश्किल था।"[5] इस भेदभावपूर्ण मानसिकता ने कुर्बान भाई जैसे कई मुसलमानों को आजीविका के लिए संघर्षरत बना दिया। यह स्थिति उस समय की सामाजिक असहिष्णुता और धार्मिक असमानता को दर्शाती है, जिसने समावेशिता के सारे रास्ते बंद कर दिए।

जीवन यापन करने के लिए उचित रोजगार न मिलने के कारण कुर्बान भाई "उतरते गए मजदूरी तक, हम्माली तक... छुटफुट कारीगरी तक... इंसानियत तक नए-नए काम सीखे। मजबूरी सीखा ही देती है। साइकिल के पंचर जोड़ें, पीपों-कनस्तरों की झालन लगायी, ताले, छतरियाँ, लालटेन ठीक कीं.... चुनरी- बंधेज की रंगाई में काम किया... हाथी दाँत कि चूडियां काटीं.... शहर-दर-शहर।"[6] सांप्रदायिक उन्माद सामाजिक और आर्थिक अस्थिरता को बढ़ाता है, जबकि मशीनीकरण ने पारंपरिक और कारीगर कामकाज को हटा दिया, जिससे व्यक्तियों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। अतः इसका प्रभाव कुर्बान भाई पर भी पड़ा और वे अपने सभी छोटे-मोटे रोजगार से हाथ धो बैठे, जिसके कारण उन्हें अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।

इन कठिन संघर्षों के बाद, अंततः कुर्बान भाई ने एक बुजुर्ग नामाज़ी मुसलमान से पचास रुपए उधार लेकर ऐन आज़ाद चौक पर एक छोटी सी दुकान खोल ली। समय के साथ, अपनी ईमानदारी और अच्छे संस्कारों के कारण उनकी प्रतिष्ठा धीरे-धीरे बढ़ती गई। "यही वजह है कि एक बार जो यहाँ से सामान ले जाता है, दूसरी बार और कहीं नहीं जाता। यों चारों तरफ बड़ी-बड़ी दुकानें हैं — सिंधियों की, मारवाड़ियों की। पर कुर्बान भाई का मतलब है, ईमानदारी। कुर्बान भाई का मतलब है, उधार की सुविधा और भरोसा।"[7]

कुर्बान भाई पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। वे दुकानदारी के साथ-साथ शेर-ओ-शायरी के भी शौकीन थे। जब उनकी दुकान ठीक से जम गई, तो वे अखबार और साहित्यिक पत्रिकाएं मंगवाने लगे। इन गुणों के कारण कुर्बान भाई की पहचान कस्बे के पढ़े-लिखे लोगों के बीच एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में बनने लगी। इससे प्रभावित होकर लेक्चरर, अध्यापक, पत्रकार जैसे बुद्धिजीवी उनकी दुकान पर बैठने लगे और धीरे-धीरे वह दुकान पढ़े-लिखों का अड्डा बन गई। इन लोगों से कुर्बान भाई की साहित्यिक एवं सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा होने लगी। इस बौद्धिक संगति का प्रभाव उनकी सोच पर पड़ा। उनके दिमाग में भी काफी मज़हबी कबाड़ भरा हुआ था, किंतु इन पढ़े-लिखे "लोगों के संपर्क में आने से पहले से ही उदार और प्रगतिशील कुर्बान भाई का दृष्टिकोण निरंतर परिष्कृत होता गया और वे अतीत की कुंठा उपजाने वाली स्मृतियों की बजाय भविष्य की बेहतरी के स्वप्न को तरजीह देने लगे।"[8] उनका धार्मिक रूप से कट्टर नजरिया धीरे-धीरे बदलने लगा। वे हफ्ते में एक दिन छुट्टी रखने लगे। पहले वे नियमित रूप से शुक्रवार की नमाज़ पढ़ने जाते थे, पर अब वह भी छोड़ दी। यह बदलाव दर्शाता है कि वे मजहबी पहचान से ऊपर उठकर इंसानियत को प्राथमिकता देने लगे थे। धीरे-धीरे उनका अधिकांश समय उन्हीं मित्रों के साथ बीतने लगा, और इस कारण उनके समुदाय के पुराने मित्र—लतीफ साहब, हाजी साहब, इमाम साहब—उनसे दूर होते गए। जब कोई व्यक्ति धर्म की सीमाओं से ऊपर उठकर इंसानियत और विचारों को महत्व देता है, तो वह सामाजिक आलोचना का पात्र बनता है और कभी-कभी अकेलेपन व असुरक्षा का भी अनुभव करता है। कुर्बान भाई ऐसे ही एक भारतीय मुसलमान हैं, जो सेक्युलर सोच को अपनाते हैं, मगर समाज उन्हें पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता।

परिणामस्वरूप कुर्बान भाई, जो एक समय अपने समुदाय के सक्रिय सदस्य थे, अब अपने खुले विचारों और बहुसंख्यक मित्रों से निकट संबंधों के कारण अपने ही समुदाय के लोगों के संदेह के घेरे में आ जाते हैं। "कभी-कभी होने वाली राजनीतिक सभाओं में जाने को और कस्बे की राजनीति में दिलचस्पी लेने का उनके लिए खतरनाक समझकर बिरादरी वाले उन्हें रोकने जरूर लगे।"[9] अतः धार्मिक सीमाओं से परे जाकर मित्रता निभाने के कारण कुर्बान भाई सम्प्रदायवादियों की नज़रों में खटकने लगते हैं। ऐसे ही कुछ सांप्रदायिक उन्माद से ग्रसित लोग, जो स्वयं को देशप्रेमी कहते थे, उनकी दुकान पर भीड़ लगाने लगे। "यह देशप्रेमी लोग वस्तुतः कट्टर हिंदूवादी शक्तियाँ थीं, जो कुर्बान भाई को डराकर दुकान से उन्हें खदेड़ना चाहती थीं।"[10] इसका सशक्त उदाहरण वकील ऊखचंद का हाली गोम्या है, जो सांप्रदायिक उन्माद से प्रेरित होकर योजनाबद्ध तरीके से बैलगाड़ी का अगला हिस्सा कुर्बान भाई की दुकान के चबूतरे पर टिका देता है। जब कुर्बान भाई इसे हटाने को कहते हैं, तो वह अनसुना करता है, और जब वे स्वयं हटाते हैं, तो उनका गिरेबान पकड़ लेता है और गालियाँ बकता है।

घटना तब और भयावह हो जाती है जब गोम्या, ऊखचंद के पूछने पर झूठ बोलता है—"म्हनै कूटै!" यानी "मुझे मार रहा है।" ऊखचंद पूछते हैं कि कौन, तो वह कहता है—"ये मींयों।" गोम्या कुर्बान भाई को भली-भांति जानता है, किन्तु जानबूझकर उनका नाम नहीं लेता, बल्कि "मियां" कहकर सांप्रदायिक कटाक्ष करता है, जो कुर्बान भाई की समूची मानवीय और व्यक्तिगत पहचान को रौंदकर उन्हें केवल उनके धर्म तक सीमित कर देता है। जब कोई जानकार व्यक्ति उन्हें "कुर्बान भाई" कहने के बजाय "मियां" कहकर पुकारता है, तो यह उन्हें अजनबीपन का गहरा बोध कराता

है। इस घटना से आहत कुर्बान भाई को एहसास होता है कि जिस सामाजिक सुरक्षा और आत्मविश्वास के बल पर उन्होंने पाकिस्तान न जाकर भारत में रहने का निर्णय लिया था, वह सब एक छलावा था। सांप्रदायिक ताकतें उन्हें यह सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि "मैं एक मिनट-भर में 'कुर्बान भाई' से 'मियां' हो जाऊंगा, यह कभी सोचा क्यों नहीं? अपनी मेहनत का खाते हैं। फिर भी ये लोग हमें अपनी छाती का बोझ समझते हैं।....पाकिस्तान चले जाते... तो लाख गुरबत बर्दाश्त कर लेते... कम से कम ऐसी ओछी बात तो नहीं सुननी पड़ती।"[11]

पार्टीशन' कहानी केवल सांप्रदायिक पीड़ा नहीं, बल्कि उस खोखले समाज की भी आलोचना करती है जो स्वयं को सेक्युलर कहता है, पर ज़रूरत के समय पीछे हट जाता है। कुर्बान भाई पर हुए अन्याय के समय उनके कुछ प्रगतिशील और बुद्धिजीवी मित्र भी साथ नहीं देते, जिससे सामाजिक नैतिकता की वास्तविकता उजागर होती है।

कुर्बान भाई जैसे संवेदनशील, प्रबुद्ध और उदार सोच वाले व्यक्ति को विभाजन के दौरान हुए भयंकर दंगे भी सांप्रदायिक नहीं बना सके, परंतु आज़ाद भारत के तथाकथित लोकतांत्रिक और सेक्युलर वातावरण में घटती इन घटनाओं ने उन्हें मजहबी पहचान की ओर लौटने पर विवश कर दिया। कहानीकार लिखते हैं कि "कई दिन बाद जब एक दोपहर मैं आज़ाद चौक से गुजर रहा था जिसका नाम अब संजय चौक कर दिया गया था- और वह शुक्रवार का दिन था- मैंने देखा कि कुर्बान भाई की दुकान के सामने लतीफ भाई खड़े हैं....। और कुर्बान भाई दुकान में ताला लगा रहे हैं।...और उन्होंने टोपी पहन रखी है.... और फिर दोनों मस्जिद की तरफ चल दिए हैं।"[12] यह स्पष्ट करता है कि कुर्बान भाई का टोपी पहनना और मस्जिद की ओर जाना केवल धार्मिक आचरण नहीं, बल्कि उस वापसी की निशानी है जिससे कुर्बान भाई ने कभी खुद को अलग कर लिया था। वे अब फिर से उसी मजहबी दायरे में लौट गए हैं।

कहानीकार यह सच्चाई उजागर करना चाहता है कि बहुसंख्यक समुदाय के कट्टरपंथी और सांप्रदायिक प्रयासों के चलते कुर्बान भाई जैसे धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील व्यक्ति को भी सामाजिक और सांस्कृतिक असुरक्षा का भय सताने लगता है, और वे अंततः साम्प्रदायिकता की ओर झुकने को विवश हो जाते हैं। यह केवल कुर्बान भाई की नियति नहीं, बल्कि उस समूचे समाज की विफलता का प्रतीक है, जो अपने ही सच्चे और ईमानदार नागरिकों को न पहचान सका और न ही स्वीकार कर सका। आज़ादी के दशकों बाद भी यदि किसी व्यक्ति को केवल धार्मिक अल्पसंख्यक होने के कारण अपमानित और संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सांप्रदायिकता अब केवल एक समस्या नहीं रही, बल्कि हमारे सामाजिक ढांचे का एक स्थायी हिस्सा बन चुकी है।

निष्कर्ष :-

'पार्टिशन' कहानी यह दर्शाती है कि साम्प्रदायिकता केवल हिंसा तक सीमित नहीं रहती, वह व्यक्ति की पहचान, आजीविका और आत्मसम्मान को भी नष्ट कर देती है। स्वयं प्रकाश ने इस कहानी के माध्यम से एक संवेदनशील साहित्यकार की भूमिका निभाते हुए सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक सशक्त हस्तक्षेप किया है। कुर्बान भाई की त्रासदी दरअसल एक समूचे समुदाय की पीड़ा का प्रतीक बन जाती है। यह कहानी वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है, जहाँ साम्प्रदायिक तनाव आज भी समाज को विभाजित कर रहे हैं। साहित्य के माध्यम से ऐसे मुद्दों को उजागर कर समाज में चेतना और संवेदना का विकास संभव है।

संदर्भ :-

1. स्वयं प्रकाश, रेणु व्यास, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण: 2023, भूमिका से
2. असंभव के विरुद्ध: कथाकार स्वयं प्रकाश, संपादक कनक जैन, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या-322
3. वही, पृष्ठ संख्या-322
4. चर्चित कहानियां, स्वयं प्रकाश, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या-37
5. वही, पृष्ठ संख्या-38
6. वही, पृष्ठ संख्या-38
7. वही, पृष्ठ संख्या-37
8. स्वयं प्रकाश सृजनात्मकता के आयाम- 4, संपादक पल्लव, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2024, पृष्ठ संख्या-37
9. चर्चित कहानियां, स्वयं प्रकाश, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या-40
10. असंभव के विरुद्ध: कथाकार स्वयं प्रकाश, संपादक कनक जैन, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या-324
11. चर्चित कहानियां, स्वयं प्रकाश, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या-41
12. वही, पृष्ठ संख्या-43

E-mail- maneeshk269@gmail.com,mob.no. 7880985722

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 112-126
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ସାଂସ୍କୃତିକ ଐତିହ୍ୟ ସଂରକ୍ଷଣରେ ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟର ଭୂମିକା

(The Role of Musical Instruments in Preserving Cultural Heritage of the Paraja Tribe)

Dr. Prahallad Khilla
Assistant Professor of Odia,
P.G. Department of Language and Literature,
Fakir Mohan University, Balasore, Odisha, Pin. 756089

ସାରାଂଶ / Abstract:

ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ସଂସ୍କୃତି ଓ ପରମ୍ପରାର ସଂରକ୍ଷଣରେ ସେମାଙ୍କର ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟର କଣ ଅବଦାନ ରହିଛି ସେସମ୍ପର୍କର୍କିତ ଏକ ଅନୁଶୀଳନ ଏହି ନିବନ୍ଧର ମୁଖ୍ୟ ବିଷୟବସ୍ତୁ। ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ମଧ୍ୟରେ ସାମାଜିକ ସଂହତି ଓ ସାମ୍ପ୍ରଦାୟିକ ବନ୍ଧନରେ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ରହିଛି। ସେମାନଙ୍କର ରୀତିନୀତି ଓ ଉତ୍ସବାଦିରେ ବାଦ୍ୟସରଞ୍ଜାମ ଗୁଡ଼ିକ ହିଁ ମୁଖ୍ୟ ଭୂମିକା ଗ୍ରହଣ କରେ। ସେମାନଙ୍କର ସାମାଜିକ ଚଳଣି, ଅନୁଷ୍ଠାନ, ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟ ସହିତ ଅତପ୍ରତ ଭାବରେ ଯୋଡ଼ିତ। ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନର ସୁନ୍ଦରତା ବାଦ୍ୟ, ନୃତ୍ୟ ଓ ଗୀତ ମାଧ୍ୟମରେ ବିକଶିତ ହୋଇଥାଏ। ଏମାନଙ୍କର ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟ ମଧ୍ୟରେ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା, ଟଇଲା, ଟାଙ୍ଗୁ, ଢୋଲ, ବଂଶୀ, ଟିଡ଼ିବିଡ଼ି ଆଦି ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ। ସେମାନଙ୍କର ବିଭିନ୍ନ ସାମାଜିକ ଓ ସାଂସ୍କୃତିକ ସେମାନଙ୍କର ବିଭିନ୍ନ ସାମାଜିକ ଓ ସାଂସ୍କୃତିକ କାର୍ଯ୍ୟକ୍ରମରେ ଏହି ବାଦ୍ୟର ଭୂମିକା ଅତ୍ୟନ୍ତ ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ହୋଇଥାଏ। ତେଣୁ ଏହା ସେମାନଙ୍କ ଭାଷାରେ "ସାଜ' (Orchestra) ବାଜା ନାମରେ ପରିଚିତ। ଗୀତର ସ୍ୱର ଓ ବାଦ୍ୟର ତାଳରେ ଲୋକାଜୀବନର ସୁଖ ଦୁଃଖର ସ୍ୱର ଝଙ୍କୃତ ହୋଇଥାଏ। ତେଣୁ ଉଭୟ ବାଦ୍ୟ ଓ ଗୀତ ପ୍ରତି ବ୍ୟକ୍ତିର ଅନୁରାଗ ନିବିଡ଼। ଅନୁରାଗରୁ ଆନନ୍ଦ ଜନ୍ମେ। ଏହିଦୃଷ୍ଟିରୁ ଆନନ୍ଦ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅଟେ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟରୁ ହିଁ ନିର୍ଭେଜାଲ ସୁଖ ପ୍ରାପ୍ତହୋଇଥାଏ। ଏହିକାରଣରୁ ଶ୍ରବଣରୁ ଆନନ୍ଦ ପ୍ରାପ୍ତି ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ପରଜା ଆଦିବାସୀ ନିତିଦିନିଆ ଜୀବନ ଚର୍ଯ୍ୟାରେ ବାଦ୍ୟକୁ ପ୍ରମୁଖ ସ୍ଥାନ ଦେଇଆସିଛି। ଏହା ମଣିଷର ଚିତ୍ତବୃତ୍ତିକୁ ପ୍ରଭାବିତ କରେ; ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ଅନୁଭୂତି ମଧ୍ୟ ଜାଗ୍ରତ କରେ। ତେଣୁ ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟରେ ଦେବଦେବୀ ପୂଜାର୍ଚ୍ଚନାର କ୍ଷେତ୍ରରେ ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ରହିଛି। ଏହିପରି ଭାବରେ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ଏକ ମହତ୍ତର ଜୀବନବୋଧର ସ୍ମାରକୀ ବହନ କରୁଥିବା ହେତୁ ସେମାନଙ୍କ ସାଂସ୍କୃତିକ ଐତିହ୍ୟ ସଂରକ୍ଷଣ ଓ ବିକାଶରେ ଏହାର ଅତୁଳନୀୟ ଭୂମିକା ରହିଛି। ସମ୍ପ୍ରତି ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସଂସ୍କୃତିରେ ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ବ୍ୟବହାର ଓ ଗୁରୁତ୍ୱ ଉପରେ ଆଧୁନିକୀକରଣ ଏବଂ ସହରୀକରଣର ପ୍ରଭାବ ପଡ଼ିଛି, କିନ୍ତୁ ସାଂସ୍କୃତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ ଯେକୌଣସି ପରିବର୍ତ୍ତନକୁ ଗ୍ରହଣ କଲେ; ତାହା ସଂସ୍କୃତିର ପ୍ରସାର ଦିଗରେ ସହାୟକ ହୋଇପାରିବ। ଯୁଗୀୟ ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ଅନୁସାରେ ସଂସ୍କୃତିର ପ୍ରଦର୍ଶନଶୀଳ ଦିଗ ବଦଳିବା ଆବଶ୍ୟକ, ନଚେତ ଏକ ବିକଶିତ ସାଂସ୍କୃତିକ

ଜୀବନର କଳ୍ପନା କରାଯାଇ ପାରିବ ନାହିଁ। ଏଦୃଷ୍ଟିରୁ ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସଂସ୍କୃତି ନିକଟରେ ଅନେକ ଆହ୍ୱାନ ଓ ସୁଯୋଗ ମଧ୍ୟ ରହିଛି।

ଭିତ୍ତିଶବ୍ଦ/ Keywords:

ପରଜା ଆଦିବାସୀ, ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର, ସାଂସ୍କୃତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧ, ଆଦିବାସୀ ଓ ହରିଜନ ନିର୍ଦ୍ଦେଶାବଳୀ, ଦ୍ରାବିଡ଼ ଭାଷାଗୋଷ୍ଠୀ ଅନ୍ତର୍ଗତ ଭାଷା, ସାଇଲୋଡ଼ିଖେଳ, ଢେମସାନାଚ, ସାଜ ବାଜା ବା Orchestra, ଦେଶୀଆ ନାଚ, ଦେଶୀୟ ବାଦ୍ୟ, ଅବିଭକ୍ତ କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲା, ତତ୍ ବା ତାରଯୁକ୍ତ ବାଦ୍ୟ, ଅବନଦ୍ଧ ବାଦ୍ୟ, ଛାଉଣି ହୋଇଥିବା ବାଦ୍ୟ, ଶୁଷିର ବା ଛିଦ୍ରଯୁକ୍ତ ବାଦ୍ୟ, ଘନ ବା ଧାତୁନିର୍ମିତ ବାଦ୍ୟ।

1. ସୂଚନା/ Introduction:

ଓଡ଼ିଶାରେ ଆଦିକାଳରୁ ବାସ କରିଆସୁଥିବା ଆଦିମ ଅଧିବାସୀ (aborigine) ମାନେ ହିଁ ବର୍ତ୍ତମାନର ଆଦିବାସୀ ନାମରେ ପରିଚିତ। ଭାରତୀୟ ସମ୍ବିଧାନର ଆଦିବାସୀ ଓ ହରିଜନ ନିର୍ଦ୍ଦେଶାବଳୀ ୧୯୫୦ ଓ ପରବର୍ତ୍ତୀ ସମୟରେ ସଂଶୋଧିତ ୧୯୭୬ ନିର୍ଦ୍ଦେଶାବଳୀ ଅନୁସାରେ ଓଡ଼ିଶାରେ ବାସ କରୁଥିବା ଜନଜାତିମାନଙ୍କ ମଧ୍ୟରୁ ୬୨ଟି ସମ୍ପ୍ରଦାୟକୁ ଚିହ୍ନଟ କରି ଭାରତୀୟ ସମ୍ବିଧାନର ୨୪୨ ଧାରାରେ 'ଆଦିବାସୀ' ରୂପେ ସ୍ୱୀକୃତି ପ୍ରଦାନ କରାଯାଇଛି। ବର୍ତ୍ତମାନ ଓଡ଼ିଶା ଓ ସମ୍ବିଧାନ (ଅନୁସୂଚିତ ଜାତି ଓ ଅନୁସୂଚିତ ଜନଜାତି) ସଂଶୋଧନ ଆଦେଶ ଅନ୍ତର୍ଗତ ଅଧିନିୟମ, ୨୦୨୪ର ସଂଖ୍ୟା- ୬, ଦିନାଙ୍କ ୧୫.୦୨.୨୦୨୪ ଏବଂ ଆଇନ ବିଭାଗ ଅଧିସୂଚନା ସଂଖ୍ୟା ୨୨୩୨-I-Legis-୦୫/୨୪/L ଦିନାଙ୍କ ୨୦.୦୨.୨୦୨୪ ଅନୁସାରେ ପୁନଃପ୍ରକାଶିତ ଏକ ତାଲିକାରେ 'ମୁକା ଦୋରା' ଓ 'କୋଣ୍ଡା ରେଡ୍ଡି' ନାମରେ ଦୁଇଟି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ନାମୋଲ୍ଲେଖ ପୂର୍ବକ ଓଡ଼ିଶାର ଜନଜାତି ସଂଖ୍ୟାକୁ ୬୨ରୁ ୬୪କୁ ବୃଦ୍ଧି କରାଯାଇଛି।**୧** ଏଥିରେ 'ମୁକା ଦୋରା' ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ଅବିଭକ୍ତ କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲାରେ (କୋରାପୁଟ, ନବରଙ୍ଗପୁର, ରାୟଗଡ଼ା, ମାଲକାନଗିରି) ବାସକରୁଥିବା କଥା ମଧ୍ୟ ଉଲ୍ଲେଖ ରହିଛି।

ଏହି ଆଦିବାସୀମାନଙ୍କର ମୂଳଗୋଷ୍ଠୀ ଶବର ସମ୍ପ୍ରଦାୟ। ଏମାନେ କ୍ରମଶଃ ଶାଖା, ଉପଶାଖା, ଗୋଷ୍ଠୀ, ଉପଗୋଷ୍ଠୀ, ଅନ୍ତର୍ଗୋଷ୍ଠୀ ଓ ପରିବାର ଗୋଷ୍ଠୀରେ ବିଭାଜିତ ହୋଇ ସତୁରୀ ପ୍ରକାରର ହୋଇଥିବାର କଥା ଡକ୍ଟର ବେଣୀମାଧବ ପାଢୀ 'ପୁରାତନ କଳିଙ୍ଗର ସାମାଜିକ ଇତିବୃତ୍ତ' ପୁସ୍ତକରେ ଉଲ୍ଲେଖ କରିଛନ୍ତି।**୨** ପରବର୍ତ୍ତୀ ସମୟରେ ଓଡ଼ିଶା ସରକାର ୧୩୭ଟି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଏକ ତାଲିକା ପ୍ରସ୍ତୁତ କରି ଆଦିବାସୀରୂପେ ସାମ୍ବିଧାନିକ ସ୍ୱୀକୃତି ପ୍ରଦାନ ପାଇଁ କେନ୍ଦ୍ର ସରକାରଙ୍କୁ ଚିଠି ମାଧ୍ୟମରେ ଅବଗତ କରାଇଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ଏହି ଅବଗତି ଆଧାରରେ ଭାରତ ସରକାର ଓଡ଼ିଶାରେ ବାସ କରୁଥିବା ସେହି ୧୩୭ଟି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ବାର୍ତ୍ତମାନିକ ସଂସ୍କୃତି ତଥା ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନଧାରା ସମ୍ପର୍କରେ କ୍ଷେତ୍ର ଅଧ୍ୟୟନର ବିବରଣୀ ଉପସ୍ଥାପନ ନିମିତ୍ତ ନିର୍ଦ୍ଦେଶ ଦେଇଥିଲେ। କିନ୍ତୁ ବର୍ତ୍ତମାନ ସୁଦ୍ଧା ଉପଯୁକ୍ତ କ୍ଷେତ୍ର ଅଧ୍ୟୟନର ବିବରଣୀ ପ୍ରସ୍ତୁତ କରାଯାଇପାରି ନାହିଁ।**୩** ଓଡ଼ିଶାରେ ବାସ କରୁଥିବା ଆଦିବାସୀମାନଙ୍କର ମୂଳବାସସ୍ଥାନ ଛୋଟନାଗପୁର ମାଳଭୂମି ବୋଲି ଗବେଷକମାନେ ପ୍ରକାଶ କରିଥାନ୍ତି। କାଳକ୍ରମେ ସେହିଠାରୁ ସେମାନେ ସ୍ଥାନାନ୍ତରିତ ପ୍ରକ୍ରିୟାରେ ବିନ୍ଧ୍ୟପର୍ବତମାଳା ଅତିକ୍ରମ କରି ଓଡ଼ିଶାର ପର୍ବତ ଓ ଜଙ୍ଗଲ ପରିବେଷ୍ଟିତ ଅଞ୍ଚଳମାନଙ୍କରେ ବସତି ସ୍ଥାପନ କରି ରହିଆସୁଥିବା ଜଣାଯାଏ।

ସମ୍ପ୍ରତି ଓଡ଼ିଶାର ପ୍ରାୟ ସବୁ ଜିଲ୍ଲାରେ ଆଦିବାସୀ ସହାବସ୍ଥାନ ପରିଲକ୍ଷିତ ହେଉଥିଲେ ହେଁ ସାନ୍ତାଳମାନଙ୍କ ସଂଖ୍ୟା ମୟୂରଭଞ୍ଜ ଜିଲ୍ଲାରେ, ଶବର ଓ କୁଲି ଜନଜାତିର ସଂଖ୍ୟା ଅବିଭକ୍ତ ସମ୍ବଲପୁର ଜିଲ୍ଲାରେ, ଗଣ୍ଡମାନଙ୍କର ସଂଖ୍ୟା କଳାହାଣ୍ଡି ଜିଲ୍ଲାରେ ଏବଂ ବଣ୍ଡା, କନ୍ଧ, ଗଦବା, ଭୂମିଆ, ମାଟିଆ, ଅମନାତ୍ୟ, ଡିଡାୟୀ, ଭତରା, ପରଜା, କୋଣ୍ଡାଦୋରା ପ୍ରମୁଖ ଆଦିବାସୀମାନଙ୍କର ସଂଖ୍ୟା ଅବିଭକ୍ତ କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲାରେ ସର୍ବାଧିକ ହୋଇଥିବା କ୍ଷେତ୍ର ଅଧ୍ୟୟନରୁ ଜଣାପଡ଼େ। ଆଦିବାସୀ ଶିକାରପ୍ରିୟ। ଜଙ୍ଗଲଜାତ ଦ୍ରବ୍ୟ ସଂଗ୍ରହ ସହିତ ନଦୀ ଓ ଝରଣାର ମଧୁର ଜଳ ପାନ କରି ସ୍ୱଚ୍ଛନ୍ଦ ଜୀବନ ବଞ୍ଚିବା ଭିତରେ ଶଲପ, ଖଜୁରୀ ଆଦି ବୃକ୍ଷର ରସ ଓ ମଦ୍ୟ ଆଦି ପାନ କରି ଜୀବନକୁ ଉପଭୋଗ କରିବା ଏମାନଙ୍କର ପାରମ୍ପରିକ ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନର ପ୍ରବୃତ୍ତି। ଜନଜାତି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଲୋକେ ଅତ୍ୟନ୍ତ ପରିଶ୍ରମୀ ଓ କର୍ମଠ କିନ୍ତୁ ବର୍ତ୍ତମାନସର୍ବସ୍ୱ। କାରଣ ଏମାନେ ନିଜକୁ ପ୍ରକୃତିର ସନ୍ତାନ ବୋଲି ମନେ କରନ୍ତି। ଫଳରେ ପ୍ରକୃତି ବା ଧରଣୀ ମାଁ ତା'ର ଅଙ୍କୁର ସହିତ କଦାପି ଅନ୍ୟାୟ କରେ ନାହିଁ- ଏହି ଆତ୍ମବିଶ୍ୱାସ ଓ ଜୀବନ ଦର୍ଶନ ହିଁ ବର୍ତ୍ତମାନସର୍ବସ୍ୱ ଆଦିବାସୀ ଚିନ୍ତାଚେତନାର ବିଶେଷତ୍ୱ। ସରଳପଣ, ନମ୍ରତା, ସହିଷ୍ଣୁତା ଓ ମାନବୀୟସମ୍ବେଦନା ଆଦି ଗୁଣାବଳୀ ଏମାନଙ୍କ ଭିତରେ ଅବସ୍ଥାନ କରେ। ସେହିପରି ଏମାନେ ଭାରି ସ୍ୱାଭିମାନୀ

ଓ ନ୍ୟାୟ ମାର୍ଗର ଅନୁଗାମୀ ମଧ୍ୟ। ପ୍ରକୃତି ହିଁ ଆଦିବାସୀ ମଣିଷଙ୍କର ସ୍ୱର୍ଗ, ପ୍ରକୃତିର କଲ୍ୟାଣରେ ଜୀବନର କଲ୍ୟାଣ ନିହିତ -ଏହି ବିଶ୍ୱାସରେ ଏମାନଙ୍କର ଜୀବନ ଗତିଶୀଳ। ଫଳରେ ପ୍ରକୃତିର ବିଭିନ୍ନ ଉପାଦାନକୁ ଦେବତାର ଆସନରେ ଆସୀନ କରାଇ ପରମ ଶ୍ରଦ୍ଧା ଓ ଭକ୍ତି ସହକାରେ ପୂଜାର୍ଚ୍ଚନା କରିବା ଭିତରେ ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଆଧାତ୍ମିକ ଚେତନା ପରିବ୍ୟାପ୍ତ। ବର୍ଷର ବିଭିନ୍ନ ସମୟରେ ନାନା ପର୍ବପର୍ବାଣି ପାଳନ, ଯାନିଯାତ୍ରା ମହୋତ୍ସବ ଆୟୋଜନର ଅବସରରେ ଏମାନଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ଚେତନା ବିକଶିତ ହୋଇଥାଏ। ନିଜର ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନର ମହନୀୟତାକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ ଏହି ମାଟିରେ ଯେତେ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଆଦିବାସୀ ପ୍ରକୃତି-ସଂସ୍କୃତି ମୂଳକ ଜୀବନ ବଞ୍ଚିବାକୁ ଭଲ ପାଆନ୍ତି ସେମାନଙ୍କ ଭିତରୁ 'ପରଜା' ବହୁପରିଚିତ ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ। ନୃତ୍ୟ, ଗୀତ, ବାଦ୍ୟ ଓ ସଙ୍ଗୀତ ପରଜା ମାନଙ୍କ ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନଧାରାର ପ୍ରମୁଖ ଆଧାର। ଏହିକ୍ରମରେ ଏହି ପ୍ରବନ୍ଧରେ ପରଜାମାନଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନଧାରାରେ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ଭୂମିକା ସମ୍ପର୍କରେ ସାମାନ୍ୟ ଆଲୋଚନା କରାଯାଇଛି।

ସାଧାରଣତଃ ପୁରୁଷାନୁକ୍ରମରେ ଗଡ଼ିଆସୁଥିବା ପରମ୍ପରା ବା ଚଳଣିର ପ୍ରଚଳିତ ରୂପକୁ ସଂସ୍କୃତି କୁହାଯାଏ। ସଂସ୍କୃତି ହେଉଛି ଜୀବନ ବଞ୍ଚିବାର ଏକ ଛାଞ୍ଚ; ଯେଉଁଠାରେ ସାମାଜିକ ବିଶ୍ୱାସ, ସଂସ୍କାର, ପ୍ରଥା, ପୂଜାପାର୍ବଣ, ଉତ୍ସବଅନୁଷ୍ଠାନ, ଖେଳକୁଦ, ଅଭିନୟ, ବାଦ୍ୟ, ନୃତ୍ୟ, ଗୀତ, ପୋଷାକ ପରିଚ୍ଛଦ, ପ୍ରେମ, ପରିଣୟ, ଜୀବିକା-ଜୀବନ, ଜନ୍ମ-ମୃତ୍ୟୁ ସଂସ୍କାରର ପ୍ରତିଫଳନ ରୂପାୟିତ ହୋଇଥାଏ। ସଂସ୍କୃତିର ପରିଭାଷା ସମ୍ପର୍କରେ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ଗବେଷକ, ସମାଲୋଚକ, ଆପଣା ଦୃଷ୍ଟିକୋଣ ଜନିତ ଅଭିମତ ଉପସ୍ଥାପନ କରିଥିଲେ ମଧ୍ୟ ଏ ସମ୍ପର୍କରେ ସମାଜଶାସ୍ତ୍ରୀ Edward Burnett Tylorଙ୍କ ମତ ଏକ ବିଧିବଦ୍ଧ ପରିଭାଷାର ଅଧିକ ନିକଟବର୍ତ୍ତୀ ମନେ ହୁଏ। ଟେଲରଙ୍କ ଭାଷାରେ "Culture is that complex whole which includes knowledge, belief, art, moral, law, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society."**୪** ଅର୍ଥାତ୍ ସଂସ୍କୃତି ଏକ ଜଟିଳ ସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ଯେଉଁଠାରେ ଜ୍ଞାନ, ବିଶ୍ୱାସ, କଳା, ନୀତି, ରୀତି, ବିଧି, ନିୟମ ତଥା ସାମାଜିକ ପ୍ରାଣୀ ହିସାବରେ ମନୁଷ୍ୟଦ୍ୱାରା ଅର୍ଜିତ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଯୋଗ୍ୟତା ଓ ଆଦର୍ଶ ନିହିତ ଥାଏ। ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ବଂଶାନୁକ୍ରମିକ ପରମ୍ପରାରୁ ପ୍ରାପ୍ତ ହୋଇଥିବା ଜ୍ଞାନର ସଂଗଠିତ ରୂପ ହେଉଛି ସଂସ୍କୃତି। ଲୋକ ସଂସ୍କୃତି ଅଧ୍ୟୟନ ପରିପ୍ରେକ୍ଷୀରେ Jonas bally, Stith Thomspon, Archer Tylor, ଡ. ସତ୍ୟେନ୍ଦ୍ର ପ୍ରମୁଖ ବିଦ୍ୱାନ ସଂସ୍କୃତି ପରମ୍ପରାର ପ୍ରବାହରେ ବିଦ୍ୟମାନ ରହେ ବୋଲି ମତ ଦେଇଛନ୍ତି।**୫** ପରଜାଆଦିବାସୀ ସଂସ୍କୃତି ପ୍ରତି ଦୃଷ୍ଟିପାତ କଲେ ସେମାନଙ୍କର ଚଳଣି ହିଁ ସେମାନଙ୍କର ସଂସ୍କୃତିକୁ ବିଶେଷିତ କରୁଥିବା ଲକ୍ଷ୍ୟ କରିହୁଏ।

2. ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ପରିଚୟ/ Introduction to the Paraja community:

'ପରଜା' ଶବ୍ଦ ସଂସ୍କୃତ 'ପ୍ରଜା' ଶବ୍ଦରୁ ଗୃହୀତ ଯାହାର ଅର୍ଥ ସାଧାରଣ ଜନତା। ପରଜା ଅର୍ଥାତ ରଜା ଶାସିତ ଦେଶ ବା ରାଜ୍ୟର ପ୍ରଜା (ଲୋକସମୂହ)। ପରଜାଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ଓଡ଼ିଶାର କଳାହାଣ୍ଡି, ସୁନ୍ଦରଗଡ଼, କେନ୍ଦୁଝର ଜିଲ୍ଲା ସମେତ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଜିଲ୍ଲାମାନଙ୍କରେ ବସବାସ କରୁଥିଲେ ହେଁ ଅବିଭକ୍ତ କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲାରେ ହିଁ ଏମାନଙ୍କର ସଂଖ୍ୟାଗରିଷ୍ଠତା ରହିଛି। ଏମାନେ କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲାର କୋରାପୁଟ, ସିମିଳିଗୁଡ଼ା, ନନ୍ଦପୁର, ପଟାଙ୍ଗି, ଲକ୍ଷ୍ମୀପୁର, ଲମତାପୁଟ, ଜୟପୁର, ବୋରିଗୁମ୍ମା, ବୈପାରିଗୁଡା ଓ କୁନ୍ଦୁରା, ନବରଙ୍ଗପୁର ଜିଲ୍ଲାର ନବରଙ୍ଗପୁର, ନନ୍ଦାହାଣ୍ଡି, କୋଷାଗୁମୁଡ଼ା, ତେନ୍ତୁଳିଖୁଣ୍ଟି, ପାପଡ଼ାହାଣ୍ଡି, ଡାବୁଗାଁ, ଝରିଗାଁ ଆଦି ବ୍ଲକ, ମାଲକାନଗିରି ଜିଲ୍ଲାର ମାଲକାନଗିରି ଓ କୁଡୁମୁଲୁଗୁମ୍ମା ବ୍ଲକ ଏବଂ ରାୟଗଡ଼ା ଜିଲ୍ଲାର ରାୟଗଡ଼ା ଓ କାଶୀପୁର ବ୍ଲକ ଅଞ୍ଚଳରେ ବହୁସଂଖ୍ୟାରେ ସ୍ଥାୟୀବାସିନ୍ଦା ରୂପେ ରହିଆସୁଛନ୍ତି। କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲା ଗେଜେଟିୟର୍ (୧୯୪୫)ରେ ଶ୍ରୀ ଆର୍.ସି.ବେଲ୍ ପରଜାମାନଙ୍କୁ ଆଠ ଭାଗରେ ବିଭକ୍ତ କରିଛନ୍ତି। ସେମାନେ ହେଲେ-

I. ପେଙ୍ଗୋପରଜା (Pengo Porojas)
II. ପାରେଙ୍ଗ ପରଜା (Preng Porojas)
III. କନ୍ଧ ପରଜା (Kondh Porojas)
IV. କୋଣ୍ଡା ପରଜା (Konda Porojas)
V. ଝୋଡ଼ିଆ ପରଜା, (Jhodia Porojas)
VI. ବାରେଙ୍ଗ ପରଜା, (Bareng Porojas)
VII. ସୋଡ଼ାବିଶିଆ ପରଜା, (Sodabisia Porojas)

VIII. ବଣ୍ଡାପରଜା (Bonda Porojas)୭

ସାମାଜିକ ଓ ଅର୍ଥନୈତିକ ଦୃଷ୍ଟିକୋଣରୁ ଏମାନେ 'ବଡ଼ପରଜା' ଓ 'ସାନପରଜା' ରୂପେ ପରିଚିତ। ସେହିପରି ଭୌଗଳିକ ପରିବେଶ ବା ଅଞ୍ଚଳ ଭେଦରେ 'ଡଙ୍ଗରଲା ପରଜା' ବା 'ଡଙ୍ଗରିଆ ପରଜା' ଓ 'ଗାଡ଼ଖଣ୍ଡିଆ ପରଜା' (ନଇକୂଳିଆ) ଭେଦରେ ମୁଖ୍ୟତଃ ଦୁଇଟି ଗୋଷ୍ଠୀରେ ବିଭକ୍ତ। ବଡ଼ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଚଳଣି ଓ ଜୀବିକାନିର୍ବାହ ପ୍ରଣାଳୀ ଅପେକ୍ଷାକୃତ ଉନ୍ନତ ହୋଇଥିବାସ୍ଥଳେ ସାନପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନଧାରା ଅବହେଳିତ ଓ ଅନୁନ୍ନତ।

ପରଜାମାନେ ବ୍ୟବହାର କରୁଥିବା ଭାଷା 'ପାର୍ଜୀ' ବା ପର୍ଜା/ ପରଜା ଭାଷା ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହା ସେମାନଙ୍କର ମାତୃ ଭାଷା। ଏତଦ୍‌ବ୍ୟତୀତ ପେଙ୍ଗୋ ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ସେମାନଙ୍କର ମାତୃଭାଷା ରୂପେ "ପେଙ୍ଗୋ ଭାଷା" ନାମରେ ଅନ୍ୟଏକ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଭାଷା ବ୍ୟବହାର କରିଥାନ୍ତି। ଉଭୟ 'ପାର୍ଜୀ' ଓ 'ପେଙ୍ଗୋ' ଦ୍ରାବିଡ଼ ଭାଷାଗୋଷ୍ଠୀ ଅନ୍ତର୍ଗତ ଭାଷା।୭ ପରଜାମାନେ ଅନ୍ୟ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ସହିତ ଭାବବିନିମୟ ସମୟରେ ସାଧାରଣତଃ 'ଦେଶୀଆ ଭାଷା' ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତି। 'ଦେଶୀଆ ଭାଷା' ତେଲୁଗୁ, ଛତିଶଗଡ଼ି ଓ ଓଡିଆ ଭାଷାର ଏକ ମିଶ୍ରିତ ରୂପ। ପରଜାମାନଙ୍କ ସମେତ ଏ ଅଞ୍ଚଳରେ ବସବାସ କରୁଥିବା ଅନ୍ୟ ସମସ୍ତ ଆଦିବାସୀ ଓ ଅଣଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ନିଜନିଜ ମାତୃଭାଷାର ପରିପୂରକ ଭାଷା ରୂପେ ଦେଶୀଆ ଭାଷା ବ୍ୟବହାର କରିଥାନ୍ତି। ଦେଶୀଆ ଭାଷା ଅବିଭକ୍ତ କୋରାପୁଟ ଜିଲ୍ଲାର ପ୍ରମୁଖ ଯୋଗାଯୋଗ ମୂଳକ ଭାଷା ବା ସଂଯୋଜକ ଭାଷା।

ପରଜାମାନଙ୍କର ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନର ମେରୁଦଣ୍ଡ ହେଉଛି କୃଷି। ପାହାଡ଼ିଆ ଭୂମିରୁ ଏମାନେ ଧାନ, ମାଣ୍ଡିଆ, ବିରି, କୋଳଥ, ସୁଆଁ, ଅଳସି, କାନ୍ଦୁଲ/ହରଡ, ମକା ଆଦି ଶସ୍ୟ ଅମଳ କରୁଥିବାବେଳେ ଖାଲଜମି/ ବିଲରୁ ଏହି ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ମୁଖ୍ୟତଃ ପ୍ରଚୁର ପରିମାଣରେ ଧାନ ଅମଳ କରିଥାନ୍ତି ଯାହା 'ବେଡ଼ା ଧାନ' ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏଠାରେ 'ବେଡ଼ା' ଅର୍ଥାତ ଖାଲଜମିକୁ ବୁଝାଏ। ମାଣ୍ଡିଆ ଓ ଧାନ ପରଜାଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ପ୍ରଧାନ ଖାଦ୍ୟ ଶସ୍ୟ । ଭୂମିହୀନ ପରଜାମାନେ ଅନ୍ୟର ଜମିରେ ମୂଲ ଲାଗି ବା ଦିନ ମଜୁରିଆ ରୂପେ କାମ କରି ଜୀବିକା ନିର୍ବାହ କରିଥାନ୍ତି। ଏପରିକି କେତେକ ଅଞ୍ଚଳରେ ସାହୁକାର ବା ମହାଜନ ଶ୍ରେଣୀର ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷଙ୍କ ଅଧୀନରେ ରହି 'ଗୋତି' ଖଟିବା ଭଳି ନିନ୍ଦନୀୟ ପ୍ରଥା (ଗୋତିପ୍ରଥା) ୧୯୯୬-୯୭ ମସିହା ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ମଧ ପରଜାମାନଙ୍କ ସାମାଜିକ ଜୀବନକୁ କବଳିତ କରି ରଖିଥିବା ଘଟଣା କ୍ଷେତ୍ର ଅଧ୍ୟୟନରୁ ଜଣାପଡ଼ିଛି। ବର୍ତ୍ତମାନ ଗୋତି ପ୍ରଥାରେ ପୂର୍ଣ୍ଣଚ୍ଛେଦ ପଡ଼ିଛି। କିନ୍ତୁ ଏବେବି ଅଞ୍ଚଳ ଭେଦରେ ପରଜାମାନେ ଗାଇଜଗୁଆଳୀ କାର୍ଯ୍ୟକୁ ରୋଜଗାରର ପନ୍ଥା ଭାବରେ ଗ୍ରହଣ କରି ସନ୍ତୋଷ ଲାଭ କରୁଛନ୍ତି। ଏହି କାର୍ଯ୍ୟ ବାବଦରେ ସେମାନେ ଗ୍ରାମବାସୀଙ୍କ ଠାରୁ ପ୍ରତିମାସରେ ବା ଏକବର୍ଷ ପାଇଁ ନିର୍ଦ୍ଧାରିତ ପରିମାଣର ଅର୍ଥ ସହିତ କିଛି ଶସ୍ୟ ମଧ ପାରିଶ୍ରମିକ ଆକାରରେ ପ୍ରାପ୍ତ ହୋଇଥାନ୍ତି। ଏସବୁ ସତ୍ତ୍ୱେ ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟରେ ଅନେକେ ଆଜି ଉଚ୍ଚଶିକ୍ଷିତ। କେତେକ ସରକାରୀ ଚାକିରୀରେ ମଧ ସଂସ୍ଥାପିତ। ଆଧୁନିକତାର ସ୍ପର୍ଶ ଲାଭ କରି ତଥା ସହରାଭିମୂଖୀ ହୋଇ ପରଜାମାନେ ଆଜି ଆତ୍ମ ନିର୍ଭରଶୀଳ ମଧ ହୋଇପାରିଛନ୍ତି। କିନ୍ତୁ ବ୍ୟକ୍ତି ଯେତେ ଶିକ୍ଷିତ ହେଉ ନା କାହିଁକି ଜନ୍ମରୁ ମିଳିଥିବା ସଂସ୍କାରକୁ ସହଜରେ ସେ କେବେ ଛାଡ଼ିପାରେ ନାହିଁ। ତେଣୁ ଯେକୌଣସି ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ହେଉନା କାହିଁକି ନିଜ ଗାଁ ମାଟି ଠାରୁ ଦୂରରେ ରହୁଥିବା ପରଜା ବିଭିନ୍ନ ପର୍ବପର୍ବାଣି, ଦେବଦେବୀଙ୍କର ପୂଜାପାଠ, ଯାନିଯାତ୍ରା ତଥା ଜନ୍ମ-ବିବାହ-ମୃତ୍ୟୁ ଆଦି ସାମାଜିକ ସଂସ୍କାର ଅବସରରେ ନିଜ ଗାଁକୁ ଫେରି ଆସି ଜାତିଭାଇଙ୍କ ସହିତ ସୁଖଦୁଃଖ ବାଣ୍ଟିବାରେ ଅବହେଳା କରେ ନାହିଁ। ବିଭିନ୍ନ ଉତ୍ସବ ଅନୁଷ୍ଠାନ ସମୟରେ ହେଉ ଅଥବା ନିର୍ମଳ ଜହ୍ନରାତିରେ ମନୋରଞ୍ଜନ ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ, ଗାଁ ଦାଣ୍ଡରେ ବାଜା ବାଜିଲେ ପରଜାମାନଙ୍କ ତନୁମନରେ ଅପୂର୍ବ ଶିହରଣ ଖେଳିଯାଏ। ବାଦ୍ୟର ତାଳେତାଳେ ପାଦ ଆପଣାଛାଏଁ ନାଚିନାଚି ଚାଲିବା ସହିତ ଯୁବତୀମାନଙ୍କର ସୁମଧୁର କଣ୍ଠରୁ ଗୀତର ଲହରୀ ଛୁଟି ଆସେ; ଏହାହିଁ ପରଜାଆଦିବାସୀ ଜୀବନର ବିଶେଷତ୍ୱ। ଜନ୍ମଠାରୁ ଆରମ୍ଭ କରି ନିଶ୍ଚିତ ମୃତ୍ୟୁକୁ ଆଲିଙ୍ଗନ କରିବା ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ସାମାଜିକ ସଂସ୍କାରର ପ୍ରତିପାଦରେ ଗୀତ ଓ ନୃତ୍ୟ ସହିତ ବାଦ୍ୟର ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ସେମାନଙ୍କର ସଂସ୍କୃତିକୁ ଜୀବନ୍ତ କରିଥାଏ।

୩.ପରଜା ଲୋକଜୀବନରେ ବାଦ୍ୟର ଭୂମିକା/ Role of Musical Instruments in social life of the Paraja Tribe:

ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟ ସହିତ ବ୍ୟକ୍ତି ହୃଦୟର ନିବିଡ଼ ସମ୍ବନ୍ଧ ରହିଛି। ସଙ୍ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟର କୁହୁକ ତାନ ହସୁଥିବା ବ୍ୟକ୍ତିକୁ କନ୍ଦାଇପାରେ। ଦୁଃଖରେ ମ୍ରିୟମାଣ ବ୍ୟକ୍ତିର ମୁଖମଣ୍ଡଳରେ ହସର ରେଖା ମଧ ଫୁଟାଇପାରେ। ବର୍ତ୍ତମାନ

ସମୟର ଦୂରଦର୍ଶନ ବା ଟି.ଭି. ଓ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ବୈଦ୍ୟୁତିକ ଯନ୍ତ୍ରପାତି ଏକ ଛୋଟିଆ ରିମୋଟ୍ ଦ୍ୱାରା କ୍ରିୟାଶୀଳ ହେଉଥିବାପରି ସଙ୍ଗୀତ, ବାଦ୍ୟର ସ୍ୱର ଓ ତାଳ ବ୍ୟକ୍ତିର ଚିତ୍ତବୃତ୍ତିକୁ ନିୟନ୍ତ୍ରିତ କରିବାର ଯୋଗ୍ୟତା ରଖିଥାଏ। ରିମୋଟରେ ଥିବା ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ବୋତାମ ସବୁକୁ ଟିପିବା ଦ୍ୱାରା ଏକ ସୂକ୍ଷ୍ମ ବୈଦ୍ୟୁତିକ ତରଙ୍ଗ ଜାତ ହୋଇ ଟି.ଭି.କୁ ଆଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟଜନକ ଭାବରେ ନିୟନ୍ତ୍ରଣ କରିପାରୁଥିବା ପରି ବିଭିନ୍ନ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରରୁ ଉତ୍ପନ୍ନ ଧ୍ୱନି ବା ଶବ୍ଦତରଙ୍ଗ ମନୁଷ୍ୟମନର ସୂକ୍ଷ୍ମସତ୍ତାକୁ ବିଶେଷ ଭାବରେ ଉଚ୍ଚାଟିତ କରିଥାଏ। ବ୍ୟକ୍ତି ଅଥବା କୌଣସି ପ୍ରାଣୀର ସୂକ୍ଷ୍ମ ଶରୀରଟି ଅତ୍ୟନ୍ତ ସମ୍ବେଦନଶୀଳ। ଏହା ଏକ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ସୂତ୍ର ଓ ଅନୁପାତରେ ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟର ଶାସ୍ତ୍ରୀୟ ଗୁଣାବଳୀ ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ। ଏହି କାରଣରୁ କୌଣସି ଯୋଗୀଟିଏ ଯେବେ କେନ୍ଦରା ବଜାଇ ଦ୍ୱାର ସମ୍ମୁଖରେ ଯୋଗୀଗୀତର କରୁଣ ମୂର୍ଚ୍ଛନା ତୋଳେ କେହି ଗୃହିଣୀ ଦ୍ୱାର ଫିଟାଇ ଯୋଗୀର ଭିକ୍ଷାଥାଳ ପୂର୍ଣ୍ଣ ନ କରିପାରିଲେ ନାହିଁ ପଛେ; କିନ୍ତୁ ଯେତେ ସମ୍ଭ୍ରମଶୀଳା କୁଳବଧୂ ହୋଇଥିଲେ ହେଁ ସମସ୍ତ ପ୍ରକାର ଗୃହଜଞ୍ଜାଳରୁ କିଛି ସମୟ ପାଇଁ ମନ ଫେରାଇନେଇ ଝରକା ପାଖରେ କାନଦେଇ ଗୀତ ଓ କେନ୍ଦରାର ହୃଦୟ ଦ୍ରବିଭୂତକାରୀ କରୁଣ ରାଗିଣୀ ଶୁଣିବାର ଆଗ୍ରହରୁ ନିବୃତ୍ତ ରହିପାରେ ନାହିଁ। ବଂଶୀ କ୍ଷେତ୍ରରେ ମଧ୍ୟ ସେହି ସମାନ ଅନୁରାଗ। ବଂଶୀ ବାଜିଲେ ଯେକୌଣସି ସହୃଦୟବ୍ୟକ୍ତି ତା'ର କୁହୁକସ୍ୱରରେ ଅଧିର ହୋଇପଡ଼ିବା ସ୍ୱାଭାବିକ। ବିଶିଷ୍ଟ ଦାର୍ଶନିକ ଆରିଷ୍ଟୋଟଲଙ୍କ ବିଚାରରେ "ଆମର ହୃଦୟ ସହିତ ଲୟ ଓ ଛନ୍ଦର(harmony and rhythm) ଏକପ୍ରକାର ଆତ୍ମିକ ଯୋଗ ଅଛି। ଯେ ଯେତେ ପରିମାଣରେ ପ୍ରଭାବିତ ହେବେ, ସେ ସେତେ ଦ୍ରବିଭୂତ ଓ ସୁଖାତ୍ମକ ଆଶ୍ୱସ୍ତି ଅନୁଭବ କରିବେ। ଯେଉଁ ରାଗିଣୀରେ ଏହିପରି ପ୍ରଭାବ ଥାଏ, ତାହା ଶ୍ରୋତାକୁ ଏକ ନିଷ୍କଳୁଷ ଆନନ୍ଦ ଦାନକରେ। ମନୋବେଗକୁ ପ୍ରକାଶ କରିବାର ଶକ୍ତି ବଂଶୀର ଅଧିକ।"୮ ବଂଶୀ କେବଳ ନୁହେଁ ମହୁରି, ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ସ୍ୱର ଓ ତାଳ ଶ୍ରବଣରେ ମଧ୍ୟ ମନରେ ଅହେତୁକ ପୁଲକ ଜାତ ହୋଇ ଚିତ୍ତବୃତ୍ତିକୁ ଆହ୍ଲାଦିତ କରିଥାଏ। ତେଣୁ ନୃତ୍ୟ, ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟ ସହିତ ଯିଏ ଯେତେ ମାତ୍ରାରେ ସଂଶ୍ଳିଷ୍ଟ ସିଏ ସେତିକି ପରିମାଣରେ ଆନନ୍ଦିତ ହୁଏ। ଏହି କାରଣରୁ ପ୍ଲେଟୋ, ଟମାସ୍ ଏକ୍ୟୁସନ, ମୁରାଟରୀ ପ୍ରମୁଖ ବିଶିଷ୍ଟ ଦାର୍ଶନିକ ତଥା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ର ବିଶାରଦବୃନ୍ଦ ଦର୍ଶନ ଓ ଶ୍ରବଣ ମାଧ୍ୟମରେ ପ୍ରକୃଷ୍ଟ ଆନନ୍ଦ ପ୍ରାପ୍ତି ହେଉଥିବା ସିଦ୍ଧାନ୍ତକୁ ସ୍ୱୀକାର କରିଛନ୍ତି। ଆନନ୍ଦ ପ୍ରାପ୍ତି ହିଁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନୁଭୂତିର ମୂଳ ହେତୁ।**୯** ପରଜା ସେହି ନୃତ୍ୟଗୀତ ଜଗତର ଅଭିଜ୍ଞ କଳାକାର। ପରଜା ଆଦିବାସୀଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନ ନୃତ୍ୟଗୀତମୟ ଜୀବନ। ତା ଜୀବନର ପ୍ରତିଟି ସାମାଜିକ ଚଳଣି ଓ ଅନୁଷ୍ଠାନ ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟ ଯୋଡ଼ିତ। ସେମାନଙ୍କ ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବିକଶିତ କରିବାରେ କିପରି ବିଭିନ୍ନ ପ୍ରକାର ବାଦ୍ୟର ଭୂମିକା ରହିଛି ସେ ସମ୍ପର୍କିତ ସଂକ୍ଷିପ୍ତ ସୂଚନା ପ୍ରଦାନ ହିଁ ଆଲୋଚନାର ପ୍ରସଙ୍ଗ।

3.1. ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନରେ ବାଦ୍ୟର ଗୁରୁତ୍ୱ/ Role of Musical Instruments in Cultural Life:

ଗୀତ ସହିତ ବାଦ୍ୟ ସଂଯୋଜିତ ହେଲେ ସାଙ୍ଗୀତିକ ମୂଲ୍ୟ ବୃଦ୍ଧିଘଟିବା ସହିତ ତାହା ଶ୍ରୁତିମଧୁର ହୋଇଥାଏ। ଗୀତ ଓ ବାଦ୍ୟର ମିଳିତ ପ୍ରଭାବରୁ ହିଁ ନୃତ୍ୟର ସୃଷ୍ଟି। ତେଣୁ ମନୋରଞ୍ଜନ କ୍ଷେତ୍ରରେ ବାଦ୍ୟର ଭୂମିକା ଅତୁଳନୀୟ। ସଙ୍ଗୀତର ତାଳ ଓ ଲୟକୁ ନିୟନ୍ତ୍ରଣ କରିବା ନିମିତ୍ତ ଭାରତୀୟ ସଙ୍ଗୀତ କ୍ଷେତ୍ରରେ ବିଭିନ୍ନ ପ୍ରକାର ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ବ୍ୟବହୃତ ହୋଇଥାଏ। ନାଟ୍ୟଶାସ୍ତ୍ରର ପ୍ରଣେତା ଭରତମୁନି ଓ ସଙ୍ଗୀତ ରତ୍ନାକର ଗ୍ରନ୍ଥର ପ୍ରଣେତା ସାରଙ୍ଗ ଦେବ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ପ୍ରକାର ଭେଦ ନିରୂପଣ କରିବାକୁ ଯାଇ ସେଗୁଡ଼ିକୁ ଚାରି ଭାଗରେ ବିଭକ୍ତ କରିଛନ୍ତି। ଯଥା-

- ତତ୍ ବା ତାରଯୁକ୍ତ ବାଦ୍ୟ (Stringed Instruments)
- ଅବନଦ୍ଧ ବାଦ୍ୟ/ ଛାଉଣି ହୋଇଥିବା ବାଦ୍ୟ (Percussion Instruments)
- ଶୁଷିର ବା ଛିଦ୍ରଯୁକ୍ତ ବାଦ୍ୟ (Wind Instruments)
- ଘନ ବା ଧାତୁନିର୍ମିତ ବାଦ୍ୟ (Solid Instruments)**୧୦**

ତତ୍ ଓ ଶୁଷିର ଶ୍ରେଣୀର ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ସଙ୍ଗୀତର ସ୍ୱର ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ ହୋଇଥିବାବେଳେ ଆନନ୍ଦ ଓ ଘନ ଶ୍ରେଣୀର ବାଦ୍ୟ ସଙ୍ଗୀତର ତାଳ ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ। ବାଦ୍ୟର ପ୍ରକୃଷ୍ଟ ତାଳ ଓ ଲୟ ସହିତ ତାଳ ଦେଇ ସଙ୍ଗୀତ ପ୍ରଭାବଶାଳୀ ସାବ୍ୟସ୍ତ ହୋଇଥାଏ। ଅପରପକ୍ଷରେ ତାଳ ଓ ଲୟର ଅସଂଗତି ସୃଷ୍ଟି ହେଲେ ଗୀତ ଛନ୍ଦହରା ଓ ବିକୃତ ମନେହୁଏ। ତେଣୁ ବାଦକକୁ ଏ ଦିଗରେ ବିଶେଷ ସାବଧାନତା ଅବଲମ୍ବନ କରିବାକୁ ହୋଇଥାଏ। ପରଜାମାନଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନଧାରାରେ ମଧ୍ୟ ଭରତମୁନିଙ୍କ ନିର୍ଦ୍ଦେଶିତ ଚାରିପ୍ରକାର ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ବ୍ୟବହାର ଲକ୍ଷ୍ୟ କରାଯାଏ। ଏତଦ୍‌ବ୍ୟତୀତ ପରଜାମାନେ ନିଜର ଉପସ୍ଥିତ ବୁଦ୍ଧି ଓ କୌଶଳ ପ୍ରୟୋଗ କରି ସେମାନଙ୍କର

ଦୃଷ୍ଟିପଥାରୁଢ଼ ହେଉଥିବା ଯାବତୀୟ ବସ୍ତୁ ଓ ବିଭିନ୍ନ ଉପକରଣକୁ ତାତ୍‌କାଳିକ ବା ଆଶୁବାଦ୍ୟ ରୂପେ ବ୍ୟବହାର କରିଥାନ୍ତି। ଏହାକୁ ଆଲୋଚକମାନେ 'ଦେଶୀୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର' ନାମରେ ନାମିତ କରିଛନ୍ତି।୧୧

ପରଜାମାନେ ସଙ୍ଗୀତ ଓ କଳାନୁରାଗୀ ଜନଜାତି। ପ୍ରତିଟି ରାତିରେ ଏମାନେ ଗାଁର ସଦରଦାଣ୍ଡ ବା ବେରଣମୁଣ୍ଡାରେ ଏକତ୍ରିତ ହୁଅନ୍ତି। ସେହିଠାରେ ସେମାନଙ୍କ ପାଖରେ ଥିବା ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା, ଟଇଲା, ଚାଙ୍ଗୁ, ଢୋଲ, ବଂଶୀ, ଚିଡ଼ିବିଡ଼ି ଆଦି ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟ ବାଜେ। ବାଦ୍ୟର ତାଳେତାଳେ ଧାଙ୍ଗଡ଼ା ଧାଙ୍ଗଡ଼ୀଙ୍କ ମନରୁ ପଦ ପରେ ପଦ ଯୋଡ଼ିହୋଇ ଗୀତର ସୁଅ ଛୁଟେ। ନିଜ ଚାରିପାଖର ପରିବେଶ ଓ ପରିସ୍ଥିତିକୁ ଉପଜୀବ୍ୟ କରି ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ଗୀତର ପଦ ରଚନା କରିପାରୁଥିବା ସଦୃଶ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ବଜାଇବାରେ ମଧ୍ୟ ଏମାନେ ଅତ୍ୟନ୍ତ କୁଶଳୀ। ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟରେ ଆବାଳବୃଦ୍ଧ ଊଣା ଅଧିକେ ବିଭିନ୍ନ ବାଦ୍ୟ ପରିବେଷଣର କୌଶଳ ସହିତ ପରିଚିତ। ଗୀତ ପରି ବାଦ୍ୟ ନିର୍ମାଣ ଓ ପରିବେଷଣ ମଧ୍ୟ ଏମାନଙ୍କର ଏକ ପାରମ୍ପରିକ କଳା। ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା, ଟଇଲା, ଚିଡ଼ିବିଡ଼ି, ଚାଙ୍ଗୁ, ଢୋଲ ସମେତ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ଏମାନେ ନିଜେ ବିଭିନ୍ନ ସମୟରେ ତିଆରି କରି ନିଜପାଖରେ ରଖନ୍ତି ଓ ଆବଶ୍ୟକ ସମୟରେ ତାହା ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତି। ଏହା ପୁରୁଷାନୁକ୍ରମିକ ଧାରାରେ ଗୋଟିଏ ପିଢ଼ିରୁ ଅନ୍ୟ ପିଢ଼ିକୁ ଗତିକରି ପରମ୍ପରାକୁ ଅକ୍ଷୁର୍ଣ୍ଣ ରଖିଥାଏ।

ବିଭିନ୍ନ ଉତ୍ସବ ଅନୁଷ୍ଠାନ ଅବସରରେ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଭାବରେ ବାଦ୍ୟର ବ୍ୟବସ୍ଥା କରାଯାଇଥାଏ। ଏକାଧିକଦିନ ବ୍ୟାପୀ ଅନୁଷ୍ଠିତ ହେଉଥିବା ବିଭିନ୍ନ ପର୍ବପର୍ବାଣି, ଦେବଦେବୀଙ୍କ ପୂଜାର୍ଚ୍ଚନା, ଶିଶୁର ନାମକରଣ, କନ୍ୟାପୁଷ୍ପବତୀ ହେବା, ବିବାହ ଓ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଉତ୍ସବ, ଯାନିଯାତ୍ରା ସମୟରେ ସାଧାରଣତଃ ଡମ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ବାଦ୍ୟକାରମାନେ ନିଯୁକ୍ତ ହୋଇ ବାଦ୍ୟପରିବେଷଣ କରିଥାନ୍ତି। ଡମମାନଙ୍କର ପିଉଳ ମହୁରି ଓ ଚର୍ମ ଛାଉଣିଯୁକ୍ତ ବାଜା ନ ବାଜିଲେ ଏମାନଙ୍କର କୌଣସି ମାଙ୍ଗଳିକ କାର୍ଯ୍ୟ ଅନୁଷ୍ଠିତ ହୁଏ ନାହିଁ। ଡମମାନେ ମହୁରି ସମେତ 'ଗାଦ୍' ବା ନାଙ୍ଗରା, ଢୋଲ, ଢାପୁ, ଟାମକ୍ ଓ ଚିଡ଼ିବିଡ଼ି ବ୍ୟବହାର କରି ବାଦ୍ୟର ମଧୁର ମୂର୍ଚ୍ଛନା ସୃଷ୍ଟି କରନ୍ତି। ଏହିସବୁ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ପରିବେଷଣରେ ଏମାନେ ବେଶ୍ ପାରଙ୍ଗମ ଓ କୁଶଳୀ। ଡମମାନେ ଏହାକୁ ନିଜର କୌଳିକବୃତ୍ତି ଭାବରେ ଗ୍ରହଣ କରିଥିବା ହେତୁ ଏହି ବାଦ୍ୟଯୋଡ଼କୁ ସାଧାରଣତଃ 'ଡମ ବାଜା' ନାମରେ ନାମିତ କରାଯାଇଥାଏ। ଏହି ବାଦ୍ୟ ହିଁ ପରଜାମାନଙ୍କର ମାଙ୍ଗଳିକ ବାଦ୍ୟ। ମାଙ୍ଗଳିକ କାର୍ଯ୍ୟ ସମାପନ ପରେ ମନୋରଞ୍ଜନ ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ଏହି ବାଦ୍ୟ ବାଜେ। ପରଜା ଯୁବାଯୁବତୀ ସେଥିରେ ବିଭୋର ହୋଇ ସାରାରାତି ନୃତ୍ୟଗୀତ ପରିବେଷଣ କରନ୍ତି। ତେଣୁ ନିଜର ଗାଁରେ ଡମସଂପ୍ରଦାୟର ଏହି ବାଦ୍ୟକାର ନଥିବା କ୍ଷେତ୍ରରେ ଆଖପାଖ ଗାଁରୁ ଏମାନେ ବାଦକ ଦଳକୁ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ଦିନ ବା ସମୟ ପାଇଁ ପାଉଣା ଦେଇ ଆମନ୍ତ୍ରଣ କରିଆଣନ୍ତି। ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ପରଜାମାନେ ସେମାନଙ୍କର ନୃତ୍ୟଗୀତ ତଥା ବିଭିନ୍ନ ସାଂସ୍କୃତିକ ଉତ୍ସବ ଅନୁଷ୍ଠାନରେ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଥିବା ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ଗୁଡ଼ିକୁ ସ୍ଥୂଳତଃ 'ପରଜା ବାଜା' ଓ 'ଡମ ବାଜା' ନାମରେ ମଧ୍ୟ ନାମିତ କରିଥାନ୍ତି। ଏହି ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ଗୁଡ଼ିକର ଗଢ଼ଣ ଓ ବ୍ୟବହାର ସମ୍ପର୍କିତ ସଂକ୍ଷିପ୍ତ ସୂଚନା ଏଠାରେ ପ୍ରଦାନ କରାଯାଇଛି।

3.2. ତତ୍ ଶ୍ରେଣୀୟ ବାଦ୍ୟ/ Stringed Instruments:

ଏହି ଶ୍ରେଣୀୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ମଧ୍ୟରେ ପରଜାମାନଙ୍କର 'ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା' ଓ 'ଟଇଁଲା' ହେଉଛି ଦୁଇଟି ପ୍ରମୁଖ ବାଦ୍ୟସରଞ୍ଜାମ। ଏହାର ନିର୍ମାଣ କୌଶଳ ଯେପରି ଅତି ସାଧାରଣ ଓ କୌତୂହଳପ୍ରଦ; ଏହାର ବ୍ୟବହାର ସେହିପରି ଚିତ୍ତାକର୍ଷକ। ଏଥିପାଇଁ ପ୍ରଥମେ ଏକ ଗୋଲାକାର ବଡ଼ ଆକାରର ଶୁଖିଲା ଲାଉକୁ ଅତି ଯତ୍ନର ସହିତ ଉପଯୁକ୍ତ ଭାଗମାପରେ କାଟିବାକୁ ହୋଇଥାଏ। କଟା ଯାଇଥିବା ଲାଉଟିର ଭିତର ଅଂଶକୁ ପରିଷ୍କାର କରି ତା'ର ଓସାରିଆ ମୁହଁ ସହିତ ପାଖାପାଖି ତିନିହାତ ଲମ୍ବର ଏକ ଶୁଖିଲା ବାଉଁଶ କିମ୍ବା ଶୁଖିଲା କାଠର ଗୋଟିଏ ମୁଣ୍ଡକୁ ସଂଯୁକ୍ତ କରି ତା'ଉପରେ ଛେଳିଚମଡ଼ା ଦେଇ ଲାଉର ମୁହଁକୁ ଛାଉଣି କରାଯାଏ। ଉକ୍ତ ବାଉଁଶ କିମ୍ବା ମସୃଣ କାଠ ଦଣ୍ଡର ଅପର ପାର୍ଶ୍ୱରେ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ବ୍ୟବଧାନରେ ଦୁଇଟି ଛୋଟଛୋଟ ଛେଦ ତିଆରି କରି ତା ଭିତରେ ଦୁଇଟି କାଠି ସଂଯୁକ୍ତ କରାଯାଏ। ଏହି କାଠିରେ ଏକ ସରୁ ଆଲୁମିନିୟମ କିମ୍ବା ତମ୍ବା ତାର ବାନ୍ଧି, ତାରଟିର ଅନ୍ୟ ମୁଣ୍ଡକୁ ଲାଉତୁମ୍ବାର ଚମଡ଼ା ଛାଉଣି ଉପରେ ଦେଇ ଯୋଡ଼ି ଦିଆଯାଏ। ତୁମ୍ବାରେ ଲାଗିଥିବା ଚମଡ଼ା ଖରାରେ ଶୁଖି ଶକ୍ତ ହୋଇଯିବା ପରେ ତାହା ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ରୂପେ ବାଜିବା ପାଇଁ ଉପଯୋଗୀ ହୁଏ। ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗାର କାଠି ଲାଗିଥିବା ପାର୍ଶ୍ୱକୁ କାନ୍ଧ ଉପରେ ରଖି ଲାଉ ତୁମ୍ବାକୁ ବାମ ହାତରେ ଧରି ପାପୁଲି ଦ୍ୱାରା ଆଘାତ କଲେ 'ଚଡ଼କ ଚଡ଼କ' ଶବ୍ଦ ବାହାରେ ଏବଂ ତାର ଉପରେ ଅଙ୍ଗୁଳି ଚାଳନା କଲେ 'ଡୁଙ୍ଗ, ଡୁଙ୍ଗ' ଶବ୍ଦ ଉତ୍ପନ୍ନ ହୁଏ। ସେଇ ହେତୁରୁ ଏହା 'ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା' ରୂପେ ପରିଚିତ।

ତାର ଉପରେ ଦକ୍ଷ ଅଙ୍ଗୁଳି ଚାଳନା କରିବା ସହିତ ତୁମ୍ବାକୁ ଆଘାତ କରିବା ଦ୍ୱାରା ଉତ୍ପନ୍ନ ଦୁଇଟି ଧ୍ୱନିର ସମ୍ମିଶ୍ରଣ ଘଟି ତାହା ଅତ୍ୟନ୍ତ ଶ୍ରୁତି ମଧୁର ଓ ମନୋମୁଗ୍ଧକର ହୋଇଥାଏ।

ଟଇଁଲା ବାଜାର ଗଠନ ଓ ବାଦନ ଶୈଳୀ ମଧ୍ୟ ଠିକ୍ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ସଦୃଶ। ପାର୍ଥକ୍ୟ କେବଳ ଏତିକି ଯେ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗାର ଧାତବ ତାର ସ୍ଥାନରେ ଟଇଁଲାରେ ଟସର ସୂତା ବ୍ୟବହୃତ ହୋଇଥାଏ।**୧୨** ସ୍ଥଳ ବିଶେଷରେ ଏଥିରେ ସୂତା ବଦଳରେ ସଲପ ଗଛର ତନ୍ତୁ ବା ଦଉଡ଼ି ମଧ୍ୟ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଥିବାର ଲକ୍ଷ୍ୟ କରିହୁଏ। ସଲପ ଗଛର ଏହି ଦଉଡ଼ିଟି ଅତି ସରୁ ଓ ଭାରି ଶକ୍ତ। ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗାରେ ସଂଯୁକ୍ତ ହେବା ପରେ ଏଥିରୁ ଉତ୍ପନ୍ନ ଧ୍ୱନି ଅତ୍ୟନ୍ତ ଚିତ୍ତାକର୍ଷକ। ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଲୋକେ ବିଭିନ୍ନ ପର୍ବପର୍ବାଣି ସମୟରେ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ଓ ଟଇଁଲା ବଜାଇ ମନୋରଞ୍ଜନ କରନ୍ତି। ବିଶେଷତଃ ଚଇତିପର୍ବ ସମୟରେ ଏହି ବାଦ୍ୟ ବଜାଇ ପରଜାମାନେ ଚଇତ୍ରା ବା ଛେର୍‌ଛେରା ମାଗି ବୁଲନ୍ତି। ବାଦ୍ୟର ତାଳେତାଳେ ଗୀତ ହିଁ ପରିବେଶକୁ ରସସ୍ନିଗ୍ଧ କରିଥାଏ।

ଏତଦବ୍ୟତୀତ ଗାଁଦାଣ୍ଡରେ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ଓ ଟଇଁଲା ବାଜା ପ୍ରତିଟି ସନ୍ଧ୍ୟାରେ ବାଜେ। ପରଜାଧାଙ୍ଗଡ଼ା ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ବଜାଇ ଗୀତ ଗାଇବା ଆରମ୍ଭ କଲେ ଧାଙ୍ଗଡ଼ୀମାନେ ନୃତ୍ୟ ପରିବେଷଣ କରିବା ସହିତ ସମବେତ କଣ୍ଠରେ ସାଇଲୋଡ଼ିଗୀତ ଗାନ କରନ୍ତି। ଏହା ପ୍ରେମ-ପ୍ରଣୟ ସମ୍ପର୍କିତ ନୃତ୍ୟ ଓ ଗୀତ। ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗାର ତାଳେତାଳେ ଯୁବତୀମାନେ ପରସ୍ପରର ହାତ ଛନ୍ଦାଛନ୍ଦି ହୋଇ ଏକ ବିଶେଷ ଓ ରୋଚକ ନୃତ୍ୟ ପରିବେଷଣ କରନ୍ତି; ଏହା ସାଧାରଣତଃ ପରଜା ଭାଷା ଓ ଦେଶୀଆ ଭାଷାରେ ଢେମସାନାଚ ବା ସାଇଲୋଡ଼ିଖେଳ ନାମରେ ପରିଚିତ। ପରଜାଯୁବତୀମାନେ ଏହି ସାଇଲୋଡ଼ିଖେଳ ତଥା ଢେମସାନାଚ ନାଚିବାରେ ମଜି ଯାଇଥିବାବେଳେ ଯୁବକମାନେ ଯୁବତୀମାନଙ୍କ ଗହଳି ଭିତରୁ ନିଜନିଜର ମନଲାଖି ଝିଅମାନଙ୍କୁ ପ୍ରେମିକା ରୂପେ ପାଇବାର ସ୍ୱପ୍ନରେ ବିଭୋର ରହିଥାନ୍ତି। ଯୁବତୀମାନଙ୍କର ମନଲୋଭା ନୃତ୍ୟ ଦେଖି ଯୁବକମାନଙ୍କର ହୃଦୟ ବନ୍ଦୀ ହୁଏ। ଯୁବତୀମାନଙ୍କର ଅଙ୍ଗଭଙ୍ଗୀ ଓ ପାଦଗତିକୁ ଲକ୍ଷ୍ୟକରି ଟଇଁଲା ଓ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗାର ଧ୍ୱନି ତୀବ୍ର ହୁଏ ଓ ବାଜିଚାଲେ। ଝିଅମାନଙ୍କ ପଦପାତ ଓ ବାଦ୍ୟର ଶବ୍ଦ ପରି ଯୁବକମାନଙ୍କ ହୃଦସ୍ପନ୍ଦନ ମଧ୍ୟ ବଢ଼ିଚାଲେ। ଫଳତଃ ହୃଦୟାବେଗକୁ ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗାର ସ୍ୱର ସହିତ ମିଳାଇ ପ୍ରକାଶ କରିବାର ପ୍ରବଣତାକୁ ସେମାନେ ଅବଦମିତ କରି ରଖିପାରନ୍ତି ନାହିଁ। ଧାଙ୍ଗଡ଼ୀ ପ୍ରେମରେ ଆନମନା ଯୁବକ କଣ୍ଠରୁ ବାହାରି ଆସେ-

ପରଜା ଭାଷାରେ-
ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ବାଜୁଲି ଆସା
ତୁମି ଗୀତ୍ ମାରିମାରି
ଆତ୍ ଆତ୍ ଦେରି ହାଲିହାଲି
କେଲୁ ଆମି ସାଇଲୋଡ଼ି...
ଶରଦା କରୁବେ ଆସା ନିଆଲୀ
ଜୀବନଯାକ କରୁ କିଆଲି
ତୁମାର୍ ଆମାର୍ ଡିଣ୍ଡାବଳେ
ସାଇମୁଣ୍ଡାର୍ ଆମ୍ବାଗଛୁ ତଳେ।

ଓଡିଆ ଭାଷାରେ-
ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା ବାଜୁଛି ଆସ
ତୁମେ ଗୀତ ବୋଲିବୋଲି
ହାତରେ ହାତ ଛନ୍ଦି ହଲିହଲି
ଖେଳିବା(ନାଚିବା) ଆମେ ସାଇଲୋଡ଼ି
ମଉଜ କରିବା ଆସ ନିଆଳୀ (ବଣମଲ୍ଲୀ)
ଜୀବନ ସାରା କରିବା ଖିଆଲି
ତୁମର ଆମର ଯୁବାକାଳେ
ସାହିମୁଣ୍ଡର ଆମ୍ବଗଛ ତଳେ।

ପରଜାମାନଙ୍କ ଜୀବନରେ ଏହାହିଁ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗାର ଯାଦୁକାରୀତା। କେବଳ ନୃତ୍ୟଗୀତ ପରିବେଷଣ କରି ମନୋରଞ୍ଜନ ଭିତରେ ହଜାଇ ଦେବା ନିମିତ୍ତ ଯୌବନର ସୃଷ୍ଟି ହୋଇନାହିଁ; ପ୍ରେମରେ ହିଁ ଯୌବନର ସାର୍ଥକତା ନିହିତ।-ଏହି ବିଶ୍ୱାସ ସହିତ ଏମାନଙ୍କର ସାମାଜିକ ଜୀବନ ଗତିଶୀଳ ହୁଏ। ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗା ତ ଏମିତି ସବୁଦିନ ବାଜୁଥିବ; ହେଲେ ଯୌବନ ଥରେ ଚାଲିଯିବା ପରେ ପୁଣିଥରେ ଫେରିଆସେ ନାହିଁ। ସେଇଥିପାଇଁ ପ୍ରେମିକ-ଯୁବକ ଯୁବାକାଳରେ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗା ବଜାଇ ମନୋରଞ୍ଜନ କରିବା ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ପ୍ରେମବନ୍ଧନରେ ଆବଦ୍ଧ ହୋଇ ସୁଖୀ ସଂସାର କରିବାର ଆବଶ୍ୟକତା ମଧ ରହିଛି ବୋଲି ସାହିମୁଣ୍ଡର ଆମ୍ବଗଛ ନିକଟରେ ମିଳନ ପାଇଁ ସଙ୍କେତ ଦେଇଛି।

ପ୍ରେମ ଯୁବା-ଯୁବତୀମାନଙ୍କର ସବୁଠାରୁ ମୂଲ୍ୟବାନ ସମ୍ପତ୍ତି। ଏହାର ପ୍ରାଚୁର୍ଯ୍ୟ କେବଳ ଯେ ଯୁବକ ହୃଦୟରେ ବିଦ୍ୟମାନ ତାହା ନୁହେଁ; ଯୁବତୀ ହୃଦୟରେ ତାର ଗଭୀରତା ଯୁବକ ତୁଳନାରେ ବହୁଗୁଣ ଅଧିକ। ଯୁବତୀ କିନ୍ତୁ ତା'କୁ ସଡ଼କଛପା ପ୍ରେମିକ ପରି ସହଜ ଓ ଶସ୍ତାରେ ବିତରଣ କରିବାକୁ ଚାହେ ନାହିଁ। ପ୍ରେମର ଆବେଶ ଓ ପୂର୍ଣ୍ଣତାରେ ତା'ର ହୃଦୟ ଅଧୀର ହୋଇ ଉଠୁଥିଲେ ମଧ ପ୍ରେମର ପ୍ରସ୍ତାବ ପ୍ରଥମେ ସିଏ ଯୁବକ ମୁଖରୁ ହିଁ ଆଶା କରିଥାଏ। ସ୍ୱଳ୍ପ ବୁଦ୍ଧି ସମ୍ପନ୍ନ ଯୁବକ, ଯୁବତୀ ପ୍ରେମରେ ବିହ୍ୱଳ ହୋଇ ମନକଥା ପ୍ରକାଶ କଲେ ତା'କୁ ବୁଝିବାରେ ଯୁବତୀର ଅସୁବିଧା କିମ୍ବା ବିଳମ୍ବ ହୋଇ ନଥାଏ। ସେହି ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗାର ଭାଷାରେ ହିଁ ସେ ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ଉତ୍ତର ଦିଏ। ଏହି ମର୍ମର ଗୀତଟିଏ ଲକ୍ଷକରାଯାଉ।

ପରଜା ଭାଷାରେ-
ତଳେ ବାଜାଇ କେଲୁ କାୟ
ଉହୁରେ ଶୁବାଇ ଖେଲୁନି
ହିତାମରି ଅଣୁକା
ଚେଳିଚାମୁ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗା।

ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ଏହି ଗୀତର ଭାବଟି ଏହିପରି-
ତଳେ ବଜାଇ ଖେଳିବା
ଉପରେ ଶୁଣାଇ ଖେଳିବା
ପିତାଲାଉ ଡଙ୍କା
ଛେଳିଚର୍ମ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗା।

ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗାର ଗଠନ ପରିପାଟୀର ବର୍ଣ୍ଣନା ଭିତରେ ଯୁବତୀ ହୃଦୟର ପ୍ରେମଭାବ ପ୍ରତିକୀତ ହୋଇଛି। ନିଜ ବାଡ଼ିରେ ଅତି ଯତ୍ନରେ ବଢାଇଥିବା ଲାଭ ପିତା ହୋଇଯିବା ହେତୁ ଖାଇବା ଉପଯୋଗୀ ହୋଇପାରେ ନାହିଁ। କିନ୍ତୁ ସେହି ପିତାଲାଭ ପରିପକ୍ୱ ହୋଇ ଶୁଖାଯିବା ପରେ ଛେଳିଚମଡ଼ା ଦ୍ୱାରା ଆବୃତ୍ତ ହୋଇ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗାରେ ପରିଣତ ହୁଏ। ଏହି ସୂତ୍ରରେ ଅନାଦର ପିତାଲାଉ ପରଜାର ବହୁମୂଲ୍ୟ ସମ୍ପତ୍ତି ପାଲଟିଯାଏ। ଅନ୍ୟଅର୍ଥରେ ନିସଙ୍ଗ ଜୀବନ ପିତାଲାଉ ସଦୃଶ ଉଦାସ। ନିସଙ୍ଗ ଜୀବନରେ କେହିଜଣେ ଜୀବନ ସାଥିର ଆଗମନ ଘଟିଲେ ସକଳ ଉଦାସିନତା ଦୂରହୋଇ ଜୀବନ ସରସ ଓ ବହୁମୂଲ୍ୟ ହୋଇଯାଏ। ତେଣୁ ଚତୁରୀ ଯୁବତୀ ଯୁବକର ପ୍ରେମପ୍ରସ୍ତାବକୁ ସ୍ୱୀକୃତି ଦେଇ ଆମ୍ବଗଛ ନିକଟରେ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗା ବଜାଇ ଖେଳିବା ଓ ପ୍ରେମାଳାପ କରିବାକୁ ସହମତି ପ୍ରକାଶ କରିଛି। ଭାବାବେଗର ସଫଳ ବାହକ ରୂପେ ଢୁଙ୍ଗଢୁଙ୍ଗାର ଭୂମିକା ଲୋକକବିର ବର୍ଣ୍ଣନାରେ ବେଶ ହୃଦୟସ୍ପର୍ଶୀ। ବାଦ୍ୟଉପକରଣକୁ ଉପଜୀବ୍ୟ କରି ଏପରି ଅସଂଖ୍ୟ ବର୍ଣ୍ଣନା ପରଜା ଲୋକଗୀତରେ ରହିଛି। ପ୍ରାସଙ୍ଗିକତା ଦୃଷ୍ଟିରୁ ତା'ର ଏକ ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତମାତ୍ର ଏଠାରେ ଉଲ୍ଲେଖ କରାଯାଇଛି।

3.3. ଶୁଷିର ଶ୍ରେଣୀୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର/ Wind Instruments:

ଏହା ଛିଦ୍ର ବା ରନ୍ଧ୍ରଯୁକ୍ତ ବାଦ୍ୟ ଶ୍ରେଣୀରେ ଅନ୍ତର୍ଭୁକ୍ତ। ଏହାର ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ରନ୍ଧ୍ର ଦେଇ ମୁଖବିବର ଦ୍ୱାରା ବାୟୁସଞ୍ଚାଳନ କରାଗଲେ ମଧୁର ଧ୍ୱନି ନିର୍ଗତ ହୋଇଥାଏ। ଏହି ଶ୍ରେଣୀୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରର ପ୍ରଭାବ ମନଉପରେ ସର୍ବାଧିକ। ଏହା ଆଦିମାନବର ସର୍ବପ୍ରଥମ ଆବିଷ୍କାର।**୧୪** ପରଜାଆଦିବାସୀ ସଂସ୍କୃତିରେ ମହୁରି ଓ ବଂଶୀ ଦୁଇଟି ମୁଖ୍ୟ ଶୁଷିର ଶ୍ରେଣୀୟ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର। ମହୁରି ତିଆରି କରିବା ସକାଶେ କୁନ୍ଦ କରାଯାଇଥିବା କେନ୍ଦୁ କାଠ କିମ୍ବା ଏକହାତ

ଲମ୍ୱ ବିଶିଷ୍ଟ ପୋଲା ବାଉଁଶ ଦେହରେ ତାତି ଲାଲ୍ ବର୍ଣ୍ଣ ହୋଇଥିବା ଏକ ସରୁ ଲୁହାରଡ଼ ସାହାଯ୍ୟରେ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ବ୍ୟବଧାନ ରଖି ଛଅଟି ଛିଦ୍ର ପ୍ରସ୍ତୁତ କରାଯାଏ। ଏହି କାଠ ଅଥବା ବାଉଁଶ ନଳୀର ଗୋଟିଏ ମୁଣ୍ଡରେ ଏକ ପିତ୍ତଳକାହାଳୀ ସଂଯୁକ୍ତ ହୁଏ। ନଳୀର ଅପର ମୁଣ୍ଡରେ ସିଲଭର ନିର୍ମିତ ପଇସା ବା ପାତିଆ ଦେଇ ତା' ଉପରେ ତାଳପତ୍ରପିକ ଲଗାଇ ଫୁଙ୍କାଯାଏ। ପାତିଆ ଲାଗିଥିବା ଅଂଶଟି 'ଶଶି' ନାମରେ ପରିଚିତ। ତାଳପତ୍ରପିକ ହିଁ ମହୁରିର ସବୁଠାରୁ ସୂକ୍ଷ୍ମଅଂଶ। ଏହାକୁ ମୁହଁରେ ଲଗାଇ ବଜାଇବା ଫଳରେ ଶବ୍ଦସୃଷ୍ଟି ବା ସ୍ୱର ନିର୍ଗତ ହୁଏ ଏବଂ ନଳୀର ଛିଦ୍ର ଉପରେ ଅଙ୍ଗୁଳି ଚାଳନା କରି ମହୁରିବାଦକ ସ୍ୱରକୁ ନିୟନ୍ତ୍ରଣ କରିଥାଏ। ଏହି ମହୁରିକୁ କେବଳ ଡମ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ବ୍ୟକ୍ତି ବଜାଇବା ପରମ୍ପରା ରହିଛି। ତେଣୁ ସିଏ (ଯିଏ ମହୁରି ବଜାଏ) ମହୁରିଆ ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହା ସେମାନଙ୍କର କୌଳିକ ବୃତ୍ତି, ଯାହା ପୁରୁଷାନୁକ୍ରମରେ ଚାଲିଆସିଛି। ତେବେ ଡମସମ୍ପ୍ରଦାୟ ବ୍ୟତୀତ ପରଜାର ବ୍ୟକ୍ତି କିମ୍ବା ଅନ୍ୟ କୌଣସି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷ ମହୁରି ବଜାଇବା ବିଧି ପ୍ରଚଳିତ ନାହିଁ। ଏହି ବିଧି ଉଲଂଘନ ପୂର୍ବକ କିମ୍ବା ଭୁଲବଶତଃ ଯଦି କେହି ମହୁରି ବଜାଏ ସେ କ୍ଷେତ୍ରରେ ତା'କୁ ଜାତିରୁ ବାସନ୍ଦ କରାଯାଏ। ପ୍ରଥମତଃ ଏହା ଡମମାନଙ୍କର କୌଳିକ ବୃତ୍ତି। ଅନ୍ୟମାନେ ଏହାକୁ ଶିକ୍ଷା କରି ବଜାଇଲେ ଡମର ଗୌରବ କ୍ଷୁର୍ଣ୍ଣ ହେବା ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ତା'ର କୌଳିକ ବୃତ୍ତି ବା ଜୀବିକା-ଜୀବନ ବାଧାପ୍ରାପ୍ତ ହେବାର ସମ୍ଭାବନା ରହିଛି। ମହୁରି ବଜାଇବାର ଅଧିକାର ଆବାହମାନ କାଳରୁ କେବଳ ଡମମାନଙ୍କୁ ପ୍ରଦାନ କରାଯାଇଛି। ତେଣୁ ଏପ୍ରକାର ସାମାଜିକ ଅଧିକାରକୁ ସମସ୍ତେ ସମ୍ମାନ ଦିଅନ୍ତି। ଯେମିତି ବ୍ରାହ୍ମଣ ମୁଖରେ ବେଦଧ୍ୱନିର ଉଚ୍ଚାରଣ, ଧୋବା ହସ୍ତରେ କପଡ଼ା ଓ ବାରିକ ଦ୍ୱାରା କ୍ଷର ହେବା ସର୍ବୋତ୍କୃଷ୍ଟ ବିବେଚିତ ହୋଇଥାଏ; ସେହିପରି ଡମର ପିତ୍ତଳମହୁରି ବାଜିଲେ ସମସ୍ତ ମାଙ୍ଗଳିକ କାର୍ଯ୍ୟ ସଫଳ ହୋଇଥାଏ ବୋଲି ପରଜାମାନେ ବିଶ୍ୱାସ କରନ୍ତି। କିନ୍ତୁ ମହୁରି ବ୍ୟତୀତ ଡମମାନଙ୍କର ଅନ୍ୟସବୁ ବାଦ୍ୟସରଞ୍ଜାମ ଯେକେହି ବଜାଇବାର ସ୍ୱାଧୀନତା ଏମାନଙ୍କର ସମାଜ ବ୍ୟବସ୍ଥାରେ ରହିଛି।

ମହୁରିକୁ ବାଦ ଦେଇ ପରଜାମାନଙ୍କର ସାମାଜିକ ଓ ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନରେ କୌଣସି ଶୁଭକାର୍ଯ୍ୟ ଅନୁଷ୍ଠିତ ହୁଏନାହିଁ। ଢୋଲ, ଟାମକ/ନାଙ୍ଗରା(ଗାବ୍) ଓ ଟିଡ଼ିବିଡ଼ି ସହିତ ମହୁରିର ସମ୍ପର୍କ ରହିଛି। ମହୁରି ବିଭିନ୍ନ ପ୍ରକାର ସ୍ୱରରେ ବାଜିଥାଏ ଓ ମହୁରିର ସ୍ୱରକୁ ଅନୁସରଣ କରି ଉପରୋକ୍ତ ଅନ୍ୟ ବାଦ୍ୟ ସବୁ ବାଦକ ବଜାଇଥାଏ। ଏହା ସାଧାରଣତଃ ଡମବାଜା ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହାକୁ ମଧ୍ୟ ଆଞ୍ଚଳିକ ଭାଷାରେ "ସାଜ' (Orchestra) ବାଜା ବୋଲି କୁହାଯାଇଥାଏ। ବିବାହ ଠାରୁ ଆରମ୍ଭ କରି ବ୍ୟକ୍ତିର ମୃତ୍ୟୁ ଓ ଦଶାହ ତଥା ଶୁଦ୍ଧିକ୍ରିୟା ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ପ୍ରତିଟି କ୍ଷେତ୍ରରେ ପରଜା ସମାଜରେ ମହୁରି ଓ ବାଦ୍ୟ ବାଜିବାର ପରମ୍ପରା ରହିଛି। ମହୁରି ହର୍ଷ, ବିଷାଦ, ମନ୍ଦ୍ର, କରୁଣ, ଆନନ୍ଦ, ଉଦାତ୍ତ ସବୁ ପ୍ରକାର ସ୍ୱର ସୃଷ୍ଟି କରିପାରୁଥିବା ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ରଟିଏ। ପରଜାମାନଙ୍କର ପୌଷପର୍ବ, ମାଘପର୍ବ, ଚୈତ୍ରପର୍ବ, ବନ୍ଧାପନାପର୍ବ, ଦିଆଲିପର୍ବ, କାନ୍ଦୁଲଭଜାପର୍ବ, ଦଶହରାପର୍ବ ଏବଂ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଯାନିଯାତ୍ରା ଓ ଉତ୍ସବ ଅବସରରେ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଭାବରେ ବାଜାମହୁରିର ଆୟୋଜନ କରାଯାଇଥାଏ। ଏହି ସମୟରେ ଦେବଦେବୀଙ୍କ ପୂଜାର୍ଚ୍ଚନା କାଳରେ ମହୁରିର ଅତ୍ୟନ୍ତ ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ରହିଛି। ମହୁରିଆ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ରାଗରେ ମହୁରି ବଜାଇ ଏକ ଆଧାତ୍ମିକତାପୂର୍ଣ୍ଣ ବାତାବରଣ ସୃଷ୍ଟି କରେ। ତା'ରି ଭିତରେ ଗୁରୁମାଇ, ଜାନି ଓ ଦିଶାରୀ ବା ପୂଜାରୀ ଶ୍ରେଣୀୟ ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷଙ୍କ ସୂକ୍ଷ୍ମଶରୀରରେ ଦେବଦେବୀ ଆବିର୍ଭୂତ ହୋଇ ନୃତ୍ୟକରିବାକୁ ଲାଗନ୍ତି, ଯାହା ସାଧାରଣତଃ କାଳିସୀ ଲାଗିବା ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏପରି ସ୍ଥଳେ ଗୁରୁମାଇଙ୍କୁ ଉପଯୁକ୍ତ ସ୍ୱର ଓ ତାଳରେ ମହୁରି ଓ ବାଦ୍ୟ ବଜାଇ ସନ୍ତୁଷ୍ଟ କରିବାକୁ ହୋଇଥାଏ। ଏହି ସମୟରେ ମହୁରି ଓ ବାଦ୍ୟର ସ୍ୱର ଛନ୍ଦହରା ହୋଇ ବେସୁରା ଶୁଣାଗଲେ କାଳିସୀ ଲାଗିଥିବା ବ୍ୟକ୍ତି ଉତକ୍ଷିପ୍ତ ହୋଇ ମହୁରିଆକୁ ଟଣାଓଟରା କରିବାର ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ ମଧ୍ୟ ରହିଛି। ତେଣୁ ଏହି ମୁହୂର୍ତ୍ତଟି ଅତ୍ୟନ୍ତ ସମ୍ବେଦନଶୀଳ ମୁହୂର୍ତ୍ତ। କାଳିସୀ ଲାଗିଥିବା ବ୍ୟକ୍ତିଙ୍କୁ ପରଜାମାନେ 'ଦେବତା ଝାକାଲବାର୍' କହିଥାନ୍ତି। ମହୁରି ଓ ବାଦ୍ୟର ତାଳେତାଳେ ନାଚୁଥିବା ଏହି ଦେବତା ଲାଗିଥିବା ବ୍ୟକ୍ତିମାନେ ସେମାନଙ୍କର ଆବଶ୍ୟକତା ଅନୁସାରେ ଚାଉଳ, ଧୂପ, ଦୀପ, ଝୁଣା, ଫୁଲଝାଡୁ, ପଘା, ଶିଙ୍କୁଳି ଓ ସେହି ଜାତୀୟ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ସାମଗ୍ରୀ ସବୁ ହାତବଢାଇ ମାଗିଥାନ୍ତି ଓ ମନଫୁର୍ତ୍ତି ହେବା ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ସେମିତି ନାଚିଥାନ୍ତି। ସ୍ଥଳବିଶେଷରେ ଏମାନେ ଭବିଷ୍ୟତବାଣୀ ଓ ବିଭିନ୍ନ ଶୁଭାଶୁଭ ନିରୂପଣ କରି ସମସ୍ତଙ୍କୁ ଜଣାଇ ଦେଇଥାନ୍ତି ବୋଲି ପରଜା ସମାଜରେ ବିଶ୍ୱାସ ରହିଛି। ପରେ ମହୁରିର ସ୍ୱର ପରିବର୍ତ୍ତନ କଲେ ବାଦ୍ୟର ତାଳ ମଧ୍ୟ ବଦଳେ ଓ ଦେବତା ଲାଗିଥିବା ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷ ସ୍ୱାଭାବିକ ଅବସ୍ଥାକୁ ଫେରନ୍ତି।

ସେହିପରି ବିବାହ କ୍ଷେତ୍ରରେ ମଧ୍ୟ ବରକନ୍ୟାଙ୍କୁ ଘରୁ ବାହାରକରିବା, ବେଦଦେବୀଙ୍କ ନିକଟରେ ଜଳଅର୍ପଣ କରିବା, ଶୁଭଟୀକା ଦେଇ ବନ୍ଦାପନା କରିବା, କନ୍ୟାକୁ ଗୃହପ୍ରବେଶ କରାଇବା ଆଦି ମାଙ୍ଗଳିକ ବେଳାରେ ମହୁରିର ଏକାନ୍ତ ଆବଶ୍ୟକତା ରହିଛି। ଏହି ସମୟରେ ମହୁରି ଯେଉଁ ସ୍ୱରତୋଳେ, ପରଜାମାନେ ତା'କୁ 'ଲଗିନ୍ ମରି' (ଲଗ୍ନମହୁରି) ବୋଲି କହିଥାନ୍ତି। 'ଲଗିନ୍ ଫୁକ୍' କହିଲା ମାତ୍ରେ, ଅଭିଜ୍ଞ ମହୁରିଆ ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ପୂର୍ବସ୍ୱର ପରିବର୍ତ୍ତନ କରି ଲଗ୍ନମହୁରି ବଜାଇବା ଆରମ୍ଭ କରେ। ଲଗ୍ନମହୁରି ଉପଯୁକ୍ତ ଶୈଳୀରେ ବଜାଇ ନପାରିଲେ ପରଜାମାନେ ମହୁରି ବନ୍ଦ କରିବାକୁ କହି, କେଉଁ ସ୍ୱରରେ ତାହା ବଜାଇବାକୁ ହେବ ଗୀତବୋଲି ଉପଯୁକ୍ତ ସ୍ୱର ମାଧ୍ୟମରେ ମହୁରିଆକୁ ବତାଇ ଦିଅନ୍ତି ଓ ମହୁରିଆ ଅନାୟାସରେ ସେହି ସ୍ୱରକୁ ଆଧାର କରି ମହୁରି ବଜାଇଥାଏ। ପରଜାମାନେ ଯେଉଁ ସ୍ୱରରେ ମହୁରି ବଜାଇବାକୁ କହନ୍ତି ମହୁରିଆ ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ସେହି ସ୍ୱର ସଠିକ୍ ଭାବରେ ବଜାଇବାରେ ହିଁ ମହୁରିଆର ପ୍ରକୃଷ୍ଟ ପ୍ରତିଭା ପ୍ରକାଶିତ ହୁଏ। ଏହିପରି ଅଭିଜ୍ଞ ମହୁରିଆ ବା ବାଦ୍ୟଦଳର ଆବଶ୍ୟକତା ଓ ଲୋକପ୍ରିୟତା ଆଦିବାସୀ ସମାଜରେ ସବୁସମୟରେ ରହିଥାଏ। ଫଳରେ ମହୁରିଆମାନଙ୍କୁ ଏ ଦିଗରେ ସାବଧାନ ରହି ବିଶେଷ ସାଧନା କରିବାକୁ ହୋଇଥାଏ।

ପରଜାମାନଙ୍କର ଜୀବନ ପର୍ବପର୍ବାଣି ଓ ଉତ୍ସବ ମୁଖର ଜୀବନ। ବିଶେଷ ଦିନ ମାନଙ୍କରେ ମହୁରିଆ ଢେର ରାତି ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ମହୁରି ବଜାଏ ଓ ଧାଙ୍ଗଡ଼ା ଧାଙ୍ଗଡ଼ୀ ସମସ୍ତେ ମନଖୋଲି ନାଚିଥାନ୍ତି। ମହୁରିଆ ଓ ବାଦ୍ୟକାରମାନେ କ୍ଳାନ୍ତ ଅନୁଭବ କଲେ କ୍ଳାନ୍ତି ମେଣ୍ଟାଇବା ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ମଝିରେ ମଝିରେ ସେମାନଙ୍କୁ କିଛି ମଦ, ସଲପ ବା ସେହି ଜାତୀୟ କୌଣସି ପାନୀୟ ଦିଆଯାଏ। ଏହା ଦ୍ୱାରା ମହୁରିଆମାନଙ୍କର ମନରେ ମହୁରି ବଜାଇବା ପାଇଁ ନୂତନ ସ୍ଫୂର୍ତ୍ତି ଆସେ ବୋଲି ଲୋକମତ ପ୍ରଚଳିତ। ତେବେ ଅତିମାତ୍ରାରେ ଏଗୁଡ଼ିକୁ ପିଇବା ପାଇଁ ଦିଆଯାଏ ନାହିଁ, ଯଦ୍ୱାରା କି ସେମାନେ ମାତାଲ ହୋଇ ଚେତା ହରାଇବେ। ଏହା କେବଳ ଔପଚାରିକତା; ମହୁରି ସ୍ୱରରେ ହିଁ ପ୍ରକୃତ ମାଦକତା ରହିଛି। ମହୁରି ବଜାଇବା ପଛରେ ଡମମାନଙ୍କର ଜୀବନ ଜୀବିକା ନିର୍ଭର କରୁଥିବା ହେତୁ ସେମାନେ ସଚେତନ ଥାନ୍ତି। ନିଜର ପ୍ରସିଦ୍ଧି ଓ ମର୍ଯ୍ୟାଦାକୁ ଗୁରୁତ୍ୱ ଦେଉଥିବା ଶିଳ୍ପୀ କ୍ଷେତ୍ରରେ ପରଜାମାନଙ୍କର ନୃତ୍ୟଗୀତ ପରିବେଷଣର ଆସର ମଧ୍ୟରେ ଶାରୀରିକ କ୍ଳାନ୍ତି ଆପଣାଛାଏଁ ଦୂର ହୋଇଯାଏ। କିନ୍ତୁ ଏହି ସବୁ ଆସର ଭିତରେ ସେଇଠି ଆଉ କିଛି ଘଟଣା ଘଟେ, ତାହା ସୁନ୍ଦରତା ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ପ୍ରତି ଆକର୍ଷଣ। ସାଧାରଣତଃ ସୁନ୍ଦରୀ ତରୁଣୀ ଉପରୁ ଦୃଷ୍ଟି ଫେରାଇନେବା ସବୁ ସମୟରେ ସମସ୍ତଙ୍କ ପକ୍ଷରେ ସମ୍ଭବ ହୋଇନଥାଏ। ମହୁରିଆ କ୍ଷେତ୍ରରେ ସତ୍ୟତାଟି ହେଉଛି ପେଟପାଟଣା ପାଇଁ ମହୁରି ବଜାଉଥିଲେ ମଧ୍ୟ ମହୁରିଆ ଅନ୍ୟମାନଙ୍କ ପରି ସାଧାରଣ ମଣିଷଟିଏ। ମହୁରି ବଜାଇବା ଭିତରେ କୌଣସି ରୂପସୀ ଯୁବତୀର ରୂପ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ପ୍ରତି ମହୁରିଆର ମନ ଆକର୍ଷିତ ହୁଏ। ଫଳତଃ ମହୁରିର ସ୍ୱର ବଦଳି ଯାଇ ବାଦ୍ୟକୁ ବେତାଳ କରିପକାଏ ଓ ଯୁବତୀମାନଙ୍କର ଢେମସାନୃତ୍ୟର ଲୟ ମଧ୍ୟ ଭଙ୍ଗ ହୁଏ। ନୃତ୍ୟପ୍ରବୀଣା ପରଜାଯୁବତୀ କ୍ଷେତ୍ରରେ ମହୁରିଆର ମନୋଦଶା ବୁଝିବାରେ ଅସୁବିଧା ହୁଏନାହିଁ। ମହୁରିର ସ୍ୱର ଓ ବାଦ୍ୟର ତାଳ ମିଶୁ ନଥିବା ସୂଚାଇଦେଇ ମହୁରିଆ ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ଯୁବତୀ ସାଇଲୋଡ଼ିଗୀତ ବୋଲି କଟାକ୍ଷ କରେ। ତାହା ଏହିପରି-

ପରଜା ଭାଷାରେ-
ମଇରା ଦାଦାର ମାଇଜିନାଇ
ରସିଗାଲାରେ
ନିକାକରି ଫୁକ୍‌ରେ ମଇରା
ଆଟା ଲଚ୍ କାନିରେ ....

ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ଏହାର ଭାବାର୍ଥ ଏହିପରି-
ମହୁରିଆ ଭାଇର ସ୍ତ୍ରୀ ନାହିଁ
ରସିଗଲାରେ
ଭଲଭାବେ ବଜାରେ ମହୁରିଆ
ଅଣ୍ଟା ଲଚକାନିରେ ....

ଅର୍ଥାତ୍ 'ଅଣ୍ଟା ଲଟକାନି' ହେଉଛି ଢେମସାନାଚର ଏକ ରୂପ। ଏହି ନାଚ ପାଇଁ ଯେଉଁ ସ୍ୱର ଓ ତାଳରେ ମହୁରି ବଜାଇବା କଥା ଅନ୍ୟ ମନସ୍କ ହୋଇ ମହୁରିଆ ସ୍ୱର ଓ ତାଳ ବିଗାଡ଼ି ଦେଇଛି। ତେଣୁ ଯୁବତୀ ଝିଅମାନଙ୍କ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟରେ ରସିକିଆ ନ ହୋଇ ଉପଯୁକ୍ତ ତାଳ ଓ ଲୟରେ 'ଅଣ୍ଟାଲଟ୍‌କାନି' ଢେମସାର ସ୍ୱର ଉପଯୁକ୍ତ ଭାବରେ ବଜାଇବା ପାଇଁ ଗୀତ ମାଧମରେ ପରଜା ଯୁବତୀମାନେ ମହୁରିଆକୁ ଆକ୍ଷେପ କରିଛନ୍ତି। ଏହି ପରି ବାସ୍ତବ ଅନୁଭୂତି ଓ ଆଶୁଧର୍ମିତା ହିଁ ମହୁରି ଓ ଢେମସା ନୃତ୍ୟର ସୁନ୍ଦରତା। ମହୁରିଆ ଢେମସା ନୃତ୍ୟ ପାଇଁ ଯେଉଁ ସ୍ୱର ତୋଳେ; ସେହି ସ୍ୱରକୁ ଅନୁସରଣ କରି ଅନ୍ୟ ସବୁ ବାଦ୍ୟ ବାଜେ ଓ ବାଦ୍ୟର ତାଳେତାଳେ ନୃତ୍ୟ ଗତିଶୀଳ ହୁଏ। ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ନୃତ୍ୟ ଓ ବାଦ୍ୟରେ ମହୁରିର ଅତ୍ୟନ୍ତ ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ରହିଛି। ଅତଏବ ମହୁରି ଦ୍ୱାରା ହିଁ ବାଦ୍ୟ ଓ ନୃତ୍ୟ ସୁଚାରୁରୂପେ ପରିଚାଳିତ ହୋଇଥାଏ।

ମହୁରି ପରି ବଂଶୀର ଆଦର ପରଜାପଲ୍ଲୀରେ ସର୍ବାଧିକ। ପରଜାଯୁବକ ସବୁବେଳେ ବଂଶୀଟିଏ ନିଜପାଖରେ ରଖିବାକୁ ଭଲପାଏ। ସେମାନେ ଆଡବଂଶୀ ଓ ଠିଆବଂଶୀ ବା ଲମ୍ବବଂଶୀ ଭାବରେ ଦୁଇପ୍ରକାର ବଂଶୀ ତିଆରି ଓ ବାଦନ ଶୈଳୀ ସହିତ ଭଲ ରୂପେ ପରିଚିତ। ସାଧାରଣତଃ ଫମ୍ପା କାଠ କିମ୍ବା ବାଉଁଶନଳୀକୁ ପରଜାମାନେ ବଂଶୀ ନିମିତ୍ତ ବ୍ୟବହାର କରିଥାନ୍ତି। ତେବେ ବାଉଁଶରେ ବଂଶୀ ତିଆରି କରିବା ହିଁ ଅପେକ୍ଷାକୃତ ସହଜ ଓ ଏଥିରୁ ମଧୁର ସ୍ୱର ମଧ ନିର୍ଗତ ହୋଇଥାଏ। ଉଭୟ ଲମ୍ବ ଓ ଆଡ଼ବଂଶୀ ନିମିତ୍ତ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ଲମ୍ବର ଏକ ଶୁଖିଲା ବାଉଁଶନଳୀର ଆବଶ୍ୟକ ପଡ଼େ; ଯାହାର ଗୋଟିଏ ମୁଣ୍ଡ ଗଣ୍ଠିଯୁକ୍ତ ହୋଇଥିବ। ଠିଆବଂଶୀ କ୍ଷେତ୍ରରେ ଗଣ୍ଠି ଠାରୁ ଉପରପଟକୁ ପାଖାପାଖି ଏକ ଅଙ୍ଗୁଳି ଛାଡ଼ି ତେରଛା ବା କୋଣ ଆକୃତିରେ କଟାଯାଏ। ତା'ପରେ ଗଣ୍ଠିକୁ ଲଗାଇ ଠିକ୍ ତା' ଉପରକୁ ଓ ତଳକୁ ଦୁଇଟି ଛେଦ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ଶୈଳୀରେ ପ୍ରସ୍ତୁତ କରାଯାଏ, ଯେପରି ଗଣ୍ଠିର ଭିତରପାଖ ଦେଇ ଛେଦଦୁଇଟି ପରସ୍ପର ସହିତ ସଂଯୁକ୍ତ ହୋଇପାରୁଥିବେ। ପରେ ବଂଶୀ ବା ନଳୀର ତଳ ଭାଗରୁ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ବ୍ୟବଧାନ ରଖି ଚାରି ରୁ ଛଅଟି ଛେଦ ତିଆରି କରାଯାଏ। ଏହି ବଂଶୀକୁ ମହୁରି ସଦୃଶ ଠିଆ ବା ସିଧା ଭାବରେ ରଖି ବାଦନ କରାଯାଉଥିବା ହେତୁ ଠିଆବଂଶୀ ଭାବରେ ପରିଚିତ।

ଆଡ଼ବଂଶୀ କ୍ଷେତ୍ରରେ ମଧ ଅନୁରୂପ ଏକ ଗଣ୍ଠିଯୁକ୍ତ ବାଉଁଶନଳୀ ନେଇ ଠିକ୍ ଉପରକୁ କଟାଯାଏ ଓ ଗଣ୍ଠିଠାରୁ ପ୍ରାୟ ଏକ ଆଙ୍ଗୁଳି ବ୍ୟବଧାନରେ ଅପେକ୍ଷାକୃତ ବଡ଼ ଛିଦ୍ରଟିଏ ପ୍ରସ୍ତୁତ କରାଯାଏ; ତାହା ସାଧାରଣତଃ ମୁଖ୍ୟରନ୍ଧ୍ର ରୂପେ ପରିଚିତ। ପରେ ନଳୀର ନିମ୍ନ ଭାଗରୁ ଠିଆବଂଶୀ ପରି ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ବ୍ୟବଧାନରେ ଚାରିରୁ ଛଅଟି ଛିଦ୍ର ତିଆରି କରାଯାଏ। ଏହି ବଂଶୀକୁ ଆଡ଼ ବା ତେରଛା ଭାବରେ ଧରି ମୁଖ୍ୟରନ୍ଧ୍ରକୁ ଓଷ୍ଠରେ ଲଗାଇ ବାୟୁ ସଂଚାଳନ କରାଯାଏ ଓ ଅନ୍ୟ ରନ୍ଧ୍ରମାନଙ୍କରେ ଅଙ୍ଗୁଳି ଚାଳନା କରି ବାୟୁକୁ ନିୟନ୍ତ୍ରଣ କରାଯାଏ।

ପରଜାଯୁବକ ଏହି ବଂଶୀ ବଜାଇ ବିଭିନ୍ନ ପ୍ରକାର ସ୍ୱର ସୃଷ୍ଟି କରିଥାଏ। ଗାଇଆଳ ପରଜାଯୁବକ ସବୁବେଳେ ନିଜ ପାଖରେ ବଂଶୀଟିଏ ରଖୁବାକୁ ଭଲପାଏ। ଦୂର ବିଲ, ବନପ୍ରାନ୍ତରରୁ ଛୁଟି ଆସୁଥିବା ଗାଇଆଳ ଯୁବକର ସୁମଧୁର ବଂଶୀସ୍ୱର ସବୁ ବୟସର ଲୋକଙ୍କ ହୃଦୟକୁ ସ୍ପର୍ଶ କରିପାରିବା କଳାରେ ପରିପୂର୍ଣ୍ଣ। ବିଶେଷତଃ ବଂଶୀ ସ୍ୱନରେ ଯୁବତୀମାନେ ଅଧିକ ପ୍ରଭାବିତ ହେଉଥିବା ହେତୁ ପରଜାଯୁବକମାନେ ବଂଶୀ ତିଆରି କରି ବଜାଇବାକୁ ଆଗ୍ରହ ପ୍ରକାଶ କରନ୍ତି।

ବଂଶୀ ସ୍ୱନର କୁହୁକତା ଏତେ ମଧୁର ଓ ତୀବ୍ର ଯେ ସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ମନଯୋଗ ସହିତ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ରାଗ ଓ ଶୈଳୀରେ ଏହାର ବାଦନରେ ଯେ କେହି ଆକର୍ଷିତ ନ ହୋଇ ରହିପାରନ୍ତି ନାହିଁ । ସ୍ୱୟଂ ସୃଷ୍ଟିକର୍ତ୍ତା ବ୍ରହ୍ମା ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଙ୍କୁ ବଂଶୀ ପ୍ରଦାନ କରିଥିଲେ। ବ୍ରହ୍ମା ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଙ୍କ ବଂଶୀର ବିଶେଷତ୍ୱ ସୂଚାଇ କହିଥିଲେ ଯେ ତା'ର ପ୍ରଥମ ରନ୍ଧ୍ର ଉଚ୍ଚାଟନ, ଦ୍ୱିତୀୟ ରନ୍ଧ୍ର ସ୍ତମ୍ଭନ, ତୃତୀୟ ରନ୍ଧ୍ରରେ ସାରାବିଶ୍ୱ ବଶୀଭୂତ ହେବ। ଚତୁର୍ଥ ରନ୍ଧ୍ର ବାଜିଲେ ପାଷାଣ ମଧ ବିଗଳିତ ହୋଇଯିବ ଓ ପଞ୍ଚମ ରନ୍ଧ୍ରରେ ଯାହାର ନାମକୁ ସ୍ୱରବଦ୍ଧ କରାଯିବ ସେ ଶାଶୁ, ଶ୍ୱଶୁର ଓ ସ୍ୱାମୀ ସମସ୍ତଙ୍କୁ ଅଣଦେଖା (ବେଖାତିର) କରି ଚାଲି ଆସିବ।**୧୪** ପରଜା ବଂଶୀ ସମ୍ପର୍କିତ ଏପରି ତଥ୍ୟକଥା ଜାଣେ ନାହିଁ। କିନ୍ତୁ ସେ ସମ୍ପର୍କିତ ଅନୁଭୂତି ତା'ର ରହିଛି। ସେ ମନୋରଞ୍ଜନ ତଥା ମନକୁ ହାଲୁକା କରିବା ପାଇଁ ସାଧାରଣତଃ ବଂଶୀ ବଜାଏ। ବେଳେବେଳେ ପ୍ରିୟତମା ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ମଧ ତା'ର ବଂଶୀ ବାଜେ। ପରଜାଯୁବକ କୌଣସି ଯୁବତୀ ପ୍ରେମରେ ପଡ଼ିଲେ ସେହି ଯୁବତୀର ନାମ ପ୍ରୟୋଗ କରି ବଂଶୀର ସ୍ୱର ତୋଳେ। ଏଥିରେ ପରଜା ଧାଙ୍ଗଡ଼ୀ, ଧାଙ୍ଗଡ଼ା ପ୍ରେମରେ ପଡ଼ିବା ନ ପଡ଼ିବା ଭିନ୍ନକଥା କିନ୍ତୁ ବଂଶୀର ସ୍ୱର ପ୍ରତି ସେ ନିଶ୍ଚିତ ଆକର୍ଷିତ ହୁଏ। ଶ୍ରବଣରୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟରୁ ହିଁ ପ୍ରେମର ଉତ୍ପତ୍ତି। ଫଳତଃ ବଂଶୀ ସ୍ୱନରେ ମୋହିତ ଯୁବତୀର କଣ୍ଠରୁ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଛି -

ନେବେରେ ନୁନା ତୁଇ ମକେ
ତର୍ ସଙ୍ଗେ ମର୍ ଆତ୍ କେ ଦରି
ବାଉଁଶୀ ବାଜାୟ ରସାଇ ଦିଲିସ୍
ରସିଗାଲେ ମୁଇଁ ତକେ
ମୋର ବାବୁରେ ବାଁଶୀ ତୋର, ମଇନି କଲି ମକେ।
ଓଡିଆ ଭାଷାରେ-
ନେଇଯା ବାବୁରେ ତୁ ମୋତେ
ତୋର ସାଥେ ମୋର ହାତକୁ ଧରି
ବଇଶୀ ବଜାଇ ମନମୋହିଲୁ
ମୋହିତ ହେଲି ତୋତେ
ପ୍ରିୟତମ ହେ ବଂଶୀ ତୋର
ମୋହିନୀ କଲା ମୋତେ।

ବଂଶୀ ସ୍ୱରରେ ପ୍ରଭାବିତ ହୋଇ ପ୍ରେମ ଓ ପ୍ରେମରୁ କ୍ରମଶଃ ପରିଣୟର ବହୁ ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ ପରଜାମାନଙ୍କର ସାମାଜିକ ଜୀବନରେ ଦେଖାଯାଏ। ବଂଶୀ ବାଜିଲେ କେବଳ ବ୍ୟକ୍ତି ନୁହେଁ ଗୃହର ଦେବଦେବୀ ମଧ୍ୟ ମୋହିତ/ ଆକର୍ଷିତ ହୁଅନ୍ତି ବୋଲି ପରଜାମାନଙ୍କର ବିଶ୍ୱାସ। ଘରଭିତରେ ପୂଜାପାଉଥିବା ମୃତବ୍ୟକ୍ତିର ଆତ୍ମା ବା ଡୁମା ତଥା ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଆରାଧ୍ୟ ଇଷ୍ଟଦେବଦେବୀ ବଂଶୀ ସ୍ୱନ ଶୁଣି କାଳିସୀ ରୂପେ ଆବିର୍ଭୂତ ହୁଅନ୍ତି କିମ୍ୱା କୋପ ପ୍ରକଟ କରି ଘରର ଅନିଷ୍ଟ ସାଧନ କରନ୍ତି ବୋଲି ପରଜାମାନେ ବିଶ୍ୱାସ କରନ୍ତି। ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ଘର ଭିତରେ ବଂଶୀ ବଜାଇବା ପରଜାଆଦିବାସୀ ସମାଜ ଜୀବନରେ ନିଷେଧ। ବିଶେଷତଃ ସନ୍ଧ୍ୟା ସମୟରେ ଘରଭିତରେ ବଂଶୀ ବଜାଇଲେ ଭୂତପ୍ରେତ ଓ ଦେବତାମାନେ ନିଶ୍ଚିତ ରୂପେ ବଂଶୀ ସ୍ୱରରେ ପ୍ରଭାବିତ ହୋଇ ଘରଭିତରକୁ ଆସନ୍ତି; ସେମାନଙ୍କୁ ବଂଶୀ ସ୍ୱରରେ ସନ୍ତୁଷ୍ଟ କରି ନପାରିଲେ କୋପ ପ୍ରକଟ କରି ନାନା ପ୍ରକାର ଅନିଷ୍ଟ ସାଧନ କରୁଥିବା ବିଶ୍ୱାସରେ ଏମାନେ ଘର ଭିତରେ ବଂଶୀ ବଜାଇବାର ଅନୁମତି ଦିଅନ୍ତି ନାହିଁ। ତେବେ ଏମାନେ ନୃତ୍ୟଗୀତ ପରିବେଷଣ କାଳରେ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ବାଦ୍ୟ ସହିତ ବଂଶୀ ବାଦନ କରିଥାନ୍ତି। ମହୁରି ବଜାଇବା ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟରେ ବାରଣ ହେତୁ ପ୍ରତି ସନ୍ଧ୍ୟାରେ ଗାଁ ଦାଣ୍ଡରେ ଅନୁଷ୍ଠିତ ହେଉଥିବା ମନୋରଞ୍ଜନଧର୍ମୀ କାର୍ଯ୍ୟକ୍ରମରେ ଏହି ବଂଶୀ ହିଁ ମହୁରିର ସ୍ଥାନ ଗ୍ରହଣ କରେ।

3.4. ଅବନଦ୍ଧ ବାଦ୍ୟ / Percussion Instruments

ଢୋଲ, ମାଦଳ, ଟାମକ୍, ଟିଡ଼ିବିଡ଼ି, ଗାଦ୍(ନାଙ୍ଗରା), ଢାପୁ ପ୍ରଭୃତି ଚର୍ମଛାଉଣି ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ପରଜାମାନେ ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତି। ଢୋଲ ପରଜାମାନଙ୍କର ଏକ ପ୍ରମୁଖ୍ୟ ବାଦ୍ୟ। ଗମ୍ଭାରୀ, ଶାଳ, ଶାଗୁଆନ ପ୍ରଭୃତି ବୃକ୍ଷରୁ ପ୍ରସ୍ତୁତ ଏକ ଖୋଳର ଉଭୟ ପାର୍ଶ୍ୱରେ ବାଉଁଶ ମୁଣ୍ଡଳା ଦେଇ ଚର୍ମଛାଉଣି କରି ଏହାକୁ ତିଆରି କରାଯାଏ। ଏହାର ଲମ୍ୱ ଅଳ୍ପ ଓ ବ୍ୟାସାର୍ଦ୍ଧ ଅଧିକ। କାଠି ଓ ହାତ ପାପୁଲିରେ ଆଘାତ କରି ଏହାକୁ ବାଦନ କରାଯାଏ। ମାଦଳ ମଧ୍ୟ ଏହି ଢୋଲ ପରି। କିନ୍ତୁ ଢୋଲ ଅପେକ୍ଷା ଏହା ଅଧିକ ଲମ୍ୱା ଓ କମ ବ୍ୟାସାର୍ଦ୍ଧ ବିଶିଷ୍ଟ। ଉଭୟ ଢୋଲ ଓ ମାଦଳକୁ କାନ୍ଧରେ ଝୁଲାଇ ବଜାଇବାକୁ ହୁଏ। ସେହିପରି ଅର୍ଦ୍ଧବୃତ୍ତାକାର ମାଟିହାଣ୍ଡି ଉପରେ ଚର୍ମଛାଉଣି ଦେଇ ଗାଦ୍ ବା ନାଙ୍ଗରା, ଟାମକ ଓ ଟିଡ଼ିବିଡ଼ି ତିଆରି କରାଯାଏ। ପାର୍ଥକ୍ୟ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ଗାଦ୍ (ନାଙ୍ଗର)ର ଆକାର ବିଶାଳ, ଟାମକ୍ ମଧ୍ୟମ ଓ ଟିଡ଼ିବିଡ଼ି ଏହି ଦୁଇଟି ବାଦ୍ୟର ଏକ ଛୋଟ ରୂପ। ଗାଦ୍ ଓ ଟାମକ୍ର କେନ୍ଦ୍ରସ୍ଥଳରେ ରାଶି ପିଡ଼ିଆର ଗୋଲେଇ ଆସ୍ତରଣ ଦେଇ ଦୁଇଖଣ୍ଡ ରବର ଦଣ୍ଡ ସହାୟତାରେ ତା ଉପରେ ଆଘାତ କରି ବାଦନ କରାଯାଏ। ଗାଦରୁ ଗୁରୁ ଗମ୍ଭୀର ଓ ଟାମକରୁ ଅପେକ୍ଷାକୃତ ଗମ୍ଭୀର " ଧୂମ୍ ଧାମ୍ ଧୂମ୍, ଧୂମ୍, ଧାମ୍ ଧୂମ୍'" ଧ୍ୱନି ଉତ୍ପନ୍ନ ହୋଇ ଚତୁର୍ଦ୍ଦିଗ ପ୍ରକମ୍ପିତ କରେ। ଟିଡ଼ିବିଡ଼ିରୁ "ଟୁଡୁବୁଡୁ ଟୁଡୁବୁଡୁ" ହୋଇ ତୀକ୍ଷ୍ଣ ଧ୍ୱନି ସୃଷ୍ଟି ହୁଏ। ଏହା ବ୍ୟତୀତ ଢାପ୍/ ଢାପୁ ବା ଟାଙ୍ଗୁ ପରଜାମାନଙ୍କ ନୃତ୍ୟଗୀତମୟ ଜୀବନର ମୁଖ୍ୟ ଆକର୍ଷଣ। ଏକ ଓସାରିଆ କାଠ ମୁଣ୍ଡଳାର ଗୋଟିଏ ପାର୍ଶ୍ୱରେ ଛେଳିଚମଡ଼ାର ଛାଉଣି ଦେଇ ଦୁଇଟି କାଠି ସହାୟତାରେ ଏହାକୁ ବଜାଯାଏ। ଏହିସବୁ ବାଦ୍ୟ ପରଜାମାନଙ୍କର ସାମାଜିକ ଓ ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନଧାରାକୁ ଚଳଚଞ୍ଚଳ ଓ ରସସିକ୍ତ କରେ। ଏହି ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ମନୋରଞ୍ଜନ

ସମେତ ପ୍ରତ୍ୟେକ ଶୁଭାଶୁଭ କାର୍ଯ୍ୟକ୍ରମରେ ପିତ୍ତଳ ମହୁରି ଓ ଚମଡ଼ାଛାଦିତ ବାଦ୍ୟକୁ ପ୍ରଥାସିଦ୍ଧ ବାଦ୍ୟ ସରଞ୍ଜାମ ରୂପେ ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତି।

ପରଜାପଲ୍ଲୀରେ ଏହି ବାଦ୍ୟ ବାଜିଲେ ସମସ୍ତଙ୍କ ମନଭିତରେ ଏକ ଅହେତୁକ ଭାବବିହ୍ୱଳପଣ ଓ ଉଛନ୍ନଭାବ ଖେଳିଯାଏ। ଯେଉଁ ସ୍ଥାନରେ ବା କୌଣସି ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷଙ୍କ ଦ୍ୱାରରେ ଏହି ବାଜା ବାଜେ ସେଠାରେ ଲୋକେ ଏକତ୍ରିତ ହୋଇ ନୃତ୍ୟଗୀତର ଆସର ସୃଷ୍ଟି କରନ୍ତି।

ପରଜା ଭାଷାରେ-
ପିତ୍ତଲ ମଇଁରୀ ଚାମୁର ଢ଼ଲ୍
କୁଇ ସାଉକାର ଗରେ
ଗୁଡ୍‌ଜାଲ୍ ଗୁଡ୍‌ଜାଲ୍ ବାଜାମଇଁରୀ
ନୁନାର ବିବାଗରେ ।

ଓଡିଆ ଭାଷାରେ-
ପିତ୍ତଳ ମହୁରି ଚର୍ମଛାଉଣି ଢୋଲ
କେଉଁ ସାହୁକାର ଘରେ
ଗୁଡ୍‌ଜାଲ୍ ଗୁଡ୍‌ଜାଲ୍ ବାଜାମହୁରି
ବାବୁର ବାହାଘରେ।

ମହୁରି ସହିତ ବାଦ୍ୟର 'ଗୁଡ୍‌ଜାଲ୍ ଗୁଡ୍‌ଜାଲ୍' ଶବ୍ଦ ହିଁ ସମସ୍ତଙ୍କ ମନକୁ ବାନ୍ଧି ରଖେ। ବାଜା ବାଜିଲେ ସମାଜର ପ୍ରତ୍ୟେକ ବ୍ୟକ୍ତି ଦୈନନ୍ଦିନ କର୍ମକୁ ପଛରେ ପକାଇ ବାଜା ବାଜୁଥିବା ସ୍ଥାନରେ ଏକତ୍ରିତ ହୁଅନ୍ତି। ବିବାହ ଓ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଉତ୍ସବ ଅନୁଷ୍ଠାନରେ ପ୍ରଚଳିତ ବିଭିନ୍ନ ସଂସ୍କାର ବିନାବାଦ୍ୟରେ ସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ହୁଏନାହିଁ। ଇତ୍ୟବସରରେ ପରଜାମାନେ ବାଦ୍ୟର ତାଳ ସହିତ ସମତାଳରେ ସଂସ୍କାରଧର୍ମୀ ପାରମ୍ପରିକ ଗୀତ ପରିବେଷଣ କରନ୍ତି। ପରେପରେ ବାଦ୍ୟର ତାଳ ବଦଳେ ଓ ଉପସ୍ଥିତ ସମସ୍ତେ କ୍ରମଶଃ ନାଚିବା ଆରମ୍ଭ କରନ୍ତି। ରାତିରେ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଭାବରେ କେବଳ ନୃତ୍ୟଗୀତ ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟରେ ସଦରଦାଣ୍ଡରେ ଏହି ବାଜା ବାଜେ।

3.5. ଘନ ବା ଧାତୁନିର୍ମିତ ବାଦ୍ୟ / Solid Instruments:

ଏଥି ସହିତ ଘନଶ୍ରେଣୀୟ ବାଦ୍ୟ ରୂପେ ପରଜାମାନେ ଝୁମୁକା ବ୍ୟବହାର କରୁଥିବା ସାଧାରଣତଃ ଲକ୍ଷ୍ୟ କରିହୁଏ। ଟିଣ ନିର୍ମିତ ଦୁଇଟି ଗୋଲାକାର କୁମ୍ପି ଭିତରେ କିଛି ଲୁହାଗୁଳି ଭର୍ତ୍ତି କରି ବଜାଉଥିବା ହେତୁ ଏଥିରୁ 'ଝଣ୍ ଝଣ୍' ଶବ୍ଦ ସୃଷ୍ଟି ହୁଏ। ସେମାନେ ଦେଶୀଆ ନାଚ ପରିବେଷଣ କରିବା ସମୟରେ ଏହାକୁ ଅପରିହାର୍ଯ୍ୟ ବାଦ୍ୟସରଞ୍ଜାମ ରୂପେ ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତି।

ଏତଦ୍‌ବ୍ୟତୀତ ପରଜାମାନେ ଆମ୍ବ, ପଣସ, ଅଶ୍ୱତ୍ଥ ଆଦି ବୃକ୍ଷର ପତ୍ରକୁ ପେଁକାଳିର ରୂପ ଦେଇ ମଧୁରସ୍ୱର ସୃଷ୍ଟି କରିବାରେ କୁଶଳୀ। କଖାରୁ ପତ୍ରର ଡେମ୍ଫରୁ ଏମାନେ ସୁନ୍ଦର ପେଁକାଳି ତିଆରି କରି ବଜାଇପାରନ୍ତି। ନିତ୍ୟ ବ୍ୟବହାର୍ଯ୍ୟ କଂସା, ପିତ୍ତଳ, ରସ ଓ ଷ୍ଟିଲ୍ ବାସନକୁସନ ତଥା ମାଟିହାଣ୍ଡି, ବିଭିନ୍ନ ପ୍ରକାର ପ୍ଲାଷ୍ଟିକଡବା ପ୍ରଭୃତିକୁ ମଧ ପରଜାମାନେ ବାଦ୍ୟ ରୂପେ ବ୍ୟବହାର କରି ସାମୟିକ ଭାବରେ ମନୋରଞ୍ଜନ କରିଥାନ୍ତି। ଏ ସବୁକୁ ଦେଶୀୟ ବାଦ୍ୟ ବୋଲି କୁହାଯାଇପାରେ। "ପ୍ରାଚୀନ ସମାଜରେ ଖଣ୍ଡେ ପଥର କିମ୍ବା ପତ୍ର ସାହାଯ୍ୟରେ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ଧ୍ୱନି ଉତ୍ପନ୍ନ ହେଲେ ତା'କୁ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ରୂପେ ବ୍ୟବହାର କରାଯାଉଥିଲା।"**୧୫** ବର୍ତ୍ତମାନ ମଧ ଏହିପରି ବିଭିନ୍ନ ଉପକରଣ ଓ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ବସ୍ତୁକୁ ବାଦ୍ୟ ରୂପେ ବ୍ୟବହାର କରି ଦେଶୀଆ ନାଚର ଅନୁକରଣରେ ଛୋଟ ପିଲାମାନେ ଖତଗଦାରେ ସୁନ୍ଦର ଅଭିନୟ କରୁଥିବାର ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ ପରଜା ଗାଁ ମାନଙ୍କରେ ରହିଛି। ବାଲ୍ୟକାଳରୁ ବାଦ୍ୟ, ନୃତ୍ୟ, ଗୀତ ପ୍ରତି ଏହିପରି ଆଗ୍ରହ ଓ ଅଭ୍ୟାସ ହିଁ କ୍ରମଶଃ ବଡ଼ ହେଲାବେଳକୁ ଏମାନଙ୍କୁ ଜଣେଜଣେ କୁଶଳୀ କଳାକାର ରୂପେ ପ୍ରତିଷ୍ଠିତ କରାଏ।

4. ଉପସଂହାର/ Conclusion:

ଉପର୍ଯ୍ୟୁକ୍ତ ଆଲୋଚନା ଦୃଷ୍ଟିରୁ ବିଚାର କଲେ ପରଜାମାନଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନରେ ବାଦ୍ୟର ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ରହିଛି। ଏହିସବୁ ବାଦ୍ୟସରଞ୍ଜାମ ସେମାନଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ପରମ୍ପରାକୁ ସମୃଦ୍ଧ ଓ ଗତିଶୀଳ କରିବା

ସଙ୍ଗେସଙ୍ଗେ ମନୋରଞ୍ଜନ ଦିଗରେ ମଧ୍ୟ ସହାୟକ ହୋଇଥାଏ। ମହୁରି, ଢୋଲ, ଟାମକ, ଗାଦ୍(ନାଙ୍ଗର), ଚିଡ଼ିବିଡ଼ି, ବଂଶୀ, ଡୁଙ୍ଗଡୁଙ୍ଗା, ଟଇଁଲା ପ୍ରଭୃତି ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର ସହିତ ଏମାନଙ୍କ ଜୀବନର ଅନେକ ଅନୁଭୂତି ଓ ଅତୀତସ୍ମୃତି ଯୋଡ଼ିତ। ତେଣୁ ଏହିସବୁ ବାଦ୍ୟ ବାଜିଲେ ଅଭାବ ଭିତରେ ବି ସେମାନେ ଯେତିକି ଆନନ୍ଦ ଓ ଉଲ୍ଲସିତ ହୁଅନ୍ତି ବେଳେବେଳେ ସେତିକି ଆତ୍ମବିଭୋର ଓ ଭାବପ୍ରବଣ ମଧ୍ୟ ହୋଇପଡ଼ନ୍ତି। ବାଦ୍ୟକୁ ଛାଡ଼ି ଏମାନଙ୍କର ଜୀବନ ସୁନ୍ଦର ଓ ରସମୟ ହୋଇପାରେ ନାହିଁ।

ବର୍ତ୍ତମାନ ଏକବିଂଶ ଶତାବ୍ଦୀର ଏହି ସମୟଖଣ୍ଡରେ ପରଜା ଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ପାରମ୍ପରିକ, ସାମାଜିକ ଓ ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନ ବିକ୍ଷିପ୍ତପ୍ରାୟ। ଏହାର ଅର୍ଥ ଏହା ନୁହେଁ ଯେ ପରଜାଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟ ଶିକ୍ଷିତ ଓ ବିକଶିତ ନହୁଅନ୍ତେ; କିନ୍ତୁ ସମସ୍ତ ପ୍ରକାର ବିକାଶ ସେମାନଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ-ମୂଲ୍ୟବୋଧକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ ସଂସ୍କୃତିର ପ୍ରଦର୍ଶନଶୀଳ ଦିଗରେ ଘଟିଲେ ସାଂସ୍କୃତିକ ଗୁରୁତ୍ୱ କ୍ଷୁର୍ଣ୍ଣ ହେବାର ସମ୍ଭାବନା ନଥାଏ। କିନ୍ତୁ ପରଜାପଲ୍ଲୀ ଜୀବନର ନିରୁତା ଆନନ୍ଦ ଏବେ ତଥାକଥିତ ଆଧୁନିକତା ଓ ମୋବାଇଲଫୋନ ଆଦି ମାୟାବୀଜଗତରେ ହଜିଯିବାରେ ଲାଗିଛି। ଫଳରେ ପରଜାଯୁବକ ବା ଯୁବତୀଟିଏ ନିଜର ମୌଳିକ ସର୍ଜନଶୀଳତା ହରାଇ ଏକ ପ୍ରକାର ପରାଙ୍ଗପୁଷ୍ଟ ଜୀବନଧାରାକୁ ଆପଣେଇ ନେଇଛି। ନିଜେ ବାଦ୍ୟବଜାଇ, ଗୀତଗାଇ ନିଜସ୍ୱ ଶୈଳୀରେ ନୃତ୍ୟପରିବେଷଣ କରିବା ସେମାନଙ୍କ ପକ୍ଷରେ ସମ୍ଭବ ହୋଇପାରୁନାହିଁ। କେତେକ କ୍ଷେତ୍ରରେ ନିଜର ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟ, ନୃତ୍ୟ ଓ ଗୀତ ଆଦିର ପରିବେଷଣକୁ ଏମାନେ ନ୍ୟୁନ ଦୃଷ୍ଟିରେ ଦେଖି ସେଥିପ୍ରତି ବିମୁଖ ହେବାରେ ଲାଗିଛନ୍ତି। ପରିଣାମ ସ୍ୱରୂପ ବିହିନ୍ନ ପ୍ରକାର ଛନ୍ଦହରା ଆଲବମଗୀତ ଓ ଅଣପାରମ୍ପରିକ ଉତ୍ତେଜକନୃତ୍ୟ ପରଜାଆଦିବାସୀ ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟ ଓ ନୃତ୍ୟଗୀତର ନିରୁତା ମୂଲ୍ୟବୋଧକୁ କବଳିତ କରି ରଖିଛି। ଅପର ପକ୍ଷରେ ସିନେମା ଅଭିନେତ୍ରୀ ତଥା ବିଭିନ୍ନ ମଡେଲ୍ ଆଦିଙ୍କର ମର୍ମଭେଦୀ ତନୁବଲ୍ଲରୀର ମର୍ମାନ୍ତକ ଚିତ୍ର ଦେଖିବାରେ ଏହି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଯୁବକମାନେ ଯେତିକି ବ୍ୟାକୁଳ ତଦ୍ରୁପ ଯୁବତୀମାନେ ମଧ୍ୟ ନିଜକୁ ସେହିସେହି ଅଭିନେତ୍ରୀ ସ୍ଥାନରେ ରଖି ସୁନ୍ଦର ଦେଖାଯିବା ଅଥବା ବିଜ୍ଞାପନର ଶାମ୍ପୁ, ସାବୁନ, ମୁହଁଲଗା କ୍ରିମ୍ ଆଦି ଚିଜ ବ୍ୟବହାର କରି ନୂଆଁ ରୂପଲାଭ କରିବାର ଏକଏକ କାଳ୍ପନିକ ସଫଳତା ଜନିତ ଦୌଡ଼ପ୍ରତିଯୋଗୀତାରେ ଅନ୍ଧଭାବରେ ସାମିଲ ହୋଇ ଆପଣା ପାରମ୍ପରିକ ପ୍ରସାଧନୀ ସାମଗ୍ରୀ ଠାରୁ ଦୂରେଇଯାଇ ନାନାଧରଣର କୃତ୍ରିମ ପ୍ରସାଧନୀ କ୍ରୟପୂର୍ବକ କଷ୍ଟଉପାର୍ଜିତ ଧନର ବୃଥାବ୍ୟୟ କରିବା ସହିତ ନିଜ ସ୍ୱଭାବସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟକୁ ମଧ୍ୟ ଉପେକ୍ଷା କରି ସୁନ୍ଦରୀ ହୋଇଯିବା ନିଶାରେ ଏକରକମ ବାନ୍ଦର/ବାନ୍ଦରୀ ହେବାରେ ଲାଗିଲେଣି; ଏହା ଅପ୍ରିୟ ସତ୍ୟ। ଏପରିକି ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ନୂଆପିଢ଼ୀ ନିଜଭାଷାରେ କଥାବାର୍ତ୍ତା ହେବାପାଇଁ କୁଣ୍ଠାବୋଧ କରୁଥିବା ଦେଖାଯାଉଛି। ପରଜା ଭାଷାରେ ଅଥବା ଦେଶୀଆ ଭାଷାରେ କଥାହେଲେ ଲୋକେ ସେମାନଙ୍କୁ ଦେଶୀଆ କହି ପରିହାସ କରିବାର ଭୟରେ ସେମାନେ ସଙ୍କୋଚ କରୁଥିବା କ୍ଷେତ୍ରଅଧ୍ୟୟନରୁ ଜଣାପଡ଼ିଛି। ଏପରି ପରିସ୍ଥିତିରେ ଏହି ସମ୍ପ୍ରଦାୟର ଲୋକେ ନିଜର ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟ ଓ ନୃତ୍ୟ ପରିବେଷଣ କ୍ଷେତ୍ରରେ ନିରବତା ଅବଲମ୍ବନ ପୂର୍ବକ ଆଧୁନିକ ନୃତ୍ୟଗୀତ ପ୍ରତି ଆସକ୍ତ ହୋଇଛନ୍ତି। ଏହା ସେମାଙ୍କର ସାଂସ୍କୃତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧର ସଂରକ୍ଷଣ ଦିଗରେ ଏକ ବଡ଼ ଆହ୍ୱାନ। ତେଣୁ ପରଜା ସମ୍ପ୍ରଦାୟଙ୍କ ମଧ୍ୟରେ ସେମାନଙ୍କର ପାରମ୍ପରିକ ବାଦ୍ୟ, ନୃତ୍ୟ, ଗୀତ ଓ ପରଜାଭାଷା ପ୍ରତି ଯଥେଷ୍ଟ ସମ୍ମାନବୋଧ ବିକଶିତ କରିବା ସହିତ ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନର ମୌଳିକ ଦିଗ ଓ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ପ୍ରତି ଅନୁରାଗ ସୃଷ୍ଟି କରିବା ଅତ୍ୟନ୍ତ ଆବଶ୍ୟକ।

ସଙ୍କେତ ସୂଚୀ/ Reference:

୧. List of Scheduled Tribes, https://g.co/about/wjxd3f

୨. ପାଢ଼ୀ, ବେଣୀମାଧବ।, ୧୯୯୨. ପୁରାତନ କଳିଙ୍ଗର ସାମାଜିକ ଇତିବୃତ୍ତ, ଗ୍ରନ୍ଥ ମନ୍ଦିର, ପୃଷ୍ଠା: ୭୩-୭୪.

୩. କେନ୍ଦ୍ର ସରକାରଙ୍କ ନିକଟକୁ ଓଡ଼ିଶା ସରକାରଙ୍କ ଚିଠି ସଂଖ୍ୟା-22620/SSD/PCR(c)-02/2012, dt. 17.07.2012

୪. Tylor, E.B., 1871. Primitive Culture, Volume-1, London, P-1.

୫. ପ୍ରଧାନ, କୃଷ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର., ୨୦୨୧. ଲୋକସଂସ୍କୃତିର ତାତ୍ତ୍ୱିକ ଓ କଳାତ୍ମକ ଦିଗ, ବିଦ୍ୟାପୁରୀ, ପୃଷ୍ଠା : ୭-୯.

୬. Bell, R.C.S., 1945. Orisaa District Gazetteers, Koraput, Orisaa Government Press, Cuttack, P-63.

୭. ପ୍ରଧାନ, ରଞ୍ଜନ., ୨୦୦୭. ପରକା ଜୀବନ ଓ ସଂସ୍କୃତି, ପ୍ରଜ୍ଞା ପରିମିତା, କେନ୍ଦ୍ରାପଡ଼ା, ପୃଷ୍ଠା-୩୪.
୮. ଜେନା, ବୈରାଗୀ ଚରଣ., ୨୦୨୧. ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଓଡ଼ିଆ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଚେତନା, ବ୍ଲାକଇଗଲ୍ ବୁକ୍ସ୍, ପୃଷ୍ଠା-୩୨.
୯. ମେହେର, ରଘୁନାଥ., ୨୦୧୦. ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଦୃଷ୍ଟି, ଏଥେନା ବୁକ୍ସ୍, ଭୁବନେଶ୍ୱର, ପୃଷ୍ଠା: ୮-୯.
୧୦. Musical Instruments of India, https://moc.php-staging.com/musical-instruments-india
୧୧. ପାଢୀ, ରାଜେନ୍ଦ୍ର., 'କୋରାପୁଟର ଆଦିବାସୀ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର: ଏକ ସଂକ୍ଷିପ୍ତ ପରିଚୟ', ଆମ ଲୋକ ସଂସ୍କୃତି, ସମ୍ପାଦନା, ଡକ୍ଟର ଦୁର୍ଗାମାଧବ ନନ୍ଦ, ଲୋକ ସଂସ୍କୃତି ଗବେଷଣା ପରିଷଦ, ବ୍ରହ୍ମପୁର, ପୃଷ୍ଠା-୮
୧୨. ପ୍ରଧାନ, ରଞ୍ଜନ., ୨୦୦୭. ପରକା ଜୀବନ ଓ ସଂସ୍କୃତି, ପୃଷ୍ଠା- ୧୭୭.
୧୩. ପାଢୀ, ରାଜେନ୍ଦ୍ର., 'କୋରାପୁଟର ଆଦିବାସୀ ବାଦ୍ୟଯନ୍ତ୍ର: ଏକ ସଂକ୍ଷିପ୍ତ ପରିଚୟ', ଆମ ଲୋକ ସଂସ୍କୃତି, ସମ୍ପାଦନା, ଡକ୍ଟର ଦୁର୍ଗାମାଧବ ନନ୍ଦ, ଲୋକ ସଂସ୍କୃତି ଗବେଷଣା ପରିଷଦ, ବ୍ରହ୍ମପୁର, ପୃଷ୍ଠା- ୧୦.
୧୪. ପରିଡ଼ା, ଶରତ ଚନ୍ଦ୍ର., ଅକ୍ଟୋବର ୨୦୧୩. "ବଂଶୀ", କାଦମ୍ବିନୀ, ସମ୍ପାଦିକା- ଇତି ସାମନ୍ତ, ପୂଜା ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର, ପୃଷ୍ଠା-୭୭.
୧୫. Deva, B.C., 2021. Musical Instrument, 7th Edition, N.B.T. Delhi, P-2.

Contact No. 9437587697
e-mail ID: prahalladkhilla@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 127-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बहुभाषिकता और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा
नैमित्तिक उद्घोषक,
ऑल इंडिया रेडियो आकाशवाणी शिमला, नजदीक चौड़ा मैदान शिमला हिमाचल प्रदेश पिन 171004

प्रस्तावना

भारत एक सांस्कृतिक-सामाजिक विविधता से परिपूर्ण बहुभाषिक देश है। बहुभाषिकता यहां की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिणाम है और इससे यहां की सांस्कृतिक विविधता की भी झलक मिलती है। बहुभाषिकता को कायम रखने व उसकी प्रकृति को बदलने में स्कूल एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। भारतीय भाषाओं का विकास किस तरह किया जायेगा, इसकी योजना स्कूल के स्तर से ही शुरू हो जाती है क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से ऐसा माना जाता है कि ऐसा करने से बहुभाषिक आधार बना रहेगा। विद्यार्थियों में विभिन्न भाषाओं को सीखने की प्रेरणा उत्पन्न होने का कारण शिक्षा में निहित बहुभाषिक ढाँचा ही है।

भारत में भाषा न केवल संप्रेषण का माध्यम है, बल्कि यह सांस्कृतिक धरोहर, ज्ञान परंपरा और सामाजिक पहचान की भी वाहक है। भारतीय भाषाएँ विविधताओं से परिपूर्ण हैं — उनकी लिपियाँ, व्याकरण, शब्दावली और उच्चारण प्रणाली उन्हें अद्वितीय बनाती हैं।

2011 की जनगणना में 1369 भाषा और बोलियों की उपस्थिति को स्वीकार किया गया, जिनमें से 121 ऐसी भाषाएं हैं, जिनके बोलने वालों की संख्या दस हजार से अधिक है। भारतीय संविधान में अनुसूचित 22 भाषाएं भारत की 96 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 यह रेखांकित करती है कि पूर्ववर्ती नीतियों में भाषा संरक्षण के कोई ठोस उपाय नहीं किये गए — *"दुर्भाग्य से भारतीय भाषाओं को समुचित ध्यान और देखभाल नहीं मिल पाया जिसके तहत देश ने विगत 50 वर्षों में ही 220 भाषाओं को खो दिया है।"*

भारत में भाषाओं की बहुलता एक ओर जहाँ समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक है, वहीं यह शिक्षा के क्षेत्र में चुनौती भी प्रस्तुत करती है। इस विविधता के बीच शिक्षा नीति का उद्देश्य है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी मातृभाषा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले, जिससे उसका संज्ञानात्मक विकास सुगम हो सके।

भारत की भाषा नीति

भारत की भाषानीति को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है:

1. आधिकारिक भाषा नीति भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार भारत संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। राजभाषा अधिनियम 1963 के द्वारा अंग्रेजी को भी हिंदी के समकक्ष राजभाषा का दर्जा दे दिया गया।

2. शिक्षण में भाषा संबंधी नीति इसके लिए त्रिभाषा सूत्र अपनाया गया, जो 1968 की कोठारी आयोग की सिफारिशों से आया। इसके अनुसार:

- हिन्दी भाषी क्षेत्रों में: हिंदी, अंग्रेजी और एक दक्षिण भारतीय भाषा
- गैर-हिंदी क्षेत्रों में: क्षेत्रीय भाषा, हिंदी और अंग्रेजी

त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन में अनेक बाधाएं आई। कुछ राज्यों ने संस्कृत को तीसरी भाषा के रूप में अपनाया, कुछ ने विदेशी भाषाएं, जबकि तमिलनाडु जैसे राज्यों ने द्विभाषा नीति अपनाई। अंग्रेज़ी की प्रधानता के चलते कई अभिभावकों ने अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालयों की ओर रुख किया, जिससे मातृभाषा आधारित शिक्षा को नुकसान पहुँचा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषाई दृष्टिकोण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को भारत सरकार ने शिक्षा में समावेशन और समानता सुनिश्चित करने के लिए लागू किया। इसमें भाषाई शिक्षा पर निम्नलिखित प्रमुख बिंदु शामिल हैं:

- **शिक्षा का माध्यम**: छोटे बच्चों की शिक्षा मातृभाषा या स्थानीय भाषा में ग्रेड 5 तक होनी चाहिए (आवश्यकता होने पर ग्रेड 8 तक)।
- **त्रिभाषा सूत्र**: बच्चों द्वारा सीखी जाने वाली तीन भाषाओं के विकल्प राज्यों और छात्रों पर निर्भर होंगे। कम-से-कम दो भाषाएं भारतीय होनी चाहिए।
- **भाषाओं की विविधता का सम्मान**: 'द लैंग्वेज ऑफ इंडिया' जैसी गतिविधियों द्वारा भारतीय भाषाओं की विविधता का अध्ययन होगा।
- **शिक्षण विधियों में नवाचार**: स्कूली बच्चों में बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करने के लिए अनुभव आधारित शिक्षण अपनाया जाएगा। बच्चों को एक से अधिक भाषाएं सिखाने के लिए खेल आधारित, रोचक और संवादात्मक सामग्री विकसित की जाएगी।
- **शिक्षक प्रशिक्षण**: भाषा शिक्षकों को मल्टीग्रेड और बहुभाषिक कक्षा के अनुसार प्रशिक्षित किया जाएगा।

बहुभाषिकता का महत्व

बहुभाषिकता का शाब्दिक अर्थ है — एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान या प्रयोग। यह केवल भाषाओं का संप्रेषणात्मक ज्ञान नहीं है, बल्कि एक गहरी सांस्कृतिक समझ का प्रतीक भी है। बहुभाषिकता बालकों के संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक सहभागिता, सांस्कृतिक समझ और समावेशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है।

बहुभाषिकता के लाभ:

1. **संज्ञानात्मक लाभ**: शोध से सिद्ध हुआ है कि बहुभाषिक बालकों की स्मृति, निर्णय क्षमता, और समस्याओं के समाधान की क्षमता अधिक विकसित होती है।
2. **सांस्कृतिक जागरूकता**: बहुभाषिक बालक विभिन्न संस्कृतियों को समझने और उनका सम्मान करने में सक्षम होते हैं।
3. **रोज़गार की संभावनाएँ**: वैश्वीकरण के दौर में विभिन्न भाषाओं का ज्ञान रोजगार के नए अवसर खोलता है।
4. **समावेशिता**: इससे विद्यार्थी अन्य भाषाओं और समुदायों के प्रति संवेदनशील बनते हैं।

प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा का महत्व

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस बात पर बल देती है कि बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा उनकी मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा में दी जाए। इससे बच्चों में विषयों की समझ बेहतर बनती है क्योंकि वे जिन ध्वनियों, शब्दों और संदर्भों से परिचित होते हैं, उनका प्रयोग करके वे सीखते हैं।

यह सिद्ध हुआ है कि मातृभाषा में शिक्षा पाने वाले बच्चों की **संज्ञानात्मक दक्षता, गणितीय क्षमता, और सामाजिक व्यवहार** अधिक सकारात्मक होता है।

अभिभावकों को यह समझना आवश्यक है कि अंग्रेज़ी में प्रारंभिक शिक्षा देना, बच्चों की समझ को हमेशा बेहतर नहीं बनाता। भाषा और ज्ञान दो अलग विषय हैं। भाषा एक माध्यम है, ज्ञान की गुणवत्ता उस माध्यम से नहीं, बल्कि उसकी प्रस्तुति और समझ से आती है।

बहुभाषिकता को बढ़ावा देने के उपाय

1. **कक्षा में भाषा प्रयोग की छूट**: शिक्षकों को छात्रों को उनकी मातृभाषा में उत्तर देने की अनुमति देनी चाहिए।
2. **भाषिक रूप से समावेशी पाठ्यपुस्तकें**: पुस्तकों में बहुभाषिक उदाहरण, कहानियाँ और संवाद शामिल करने चाहिए।
3. **सहपाठन और समूह गतिविधियाँ**: बहुभाषिक समूह गतिविधियाँ छात्रों को एक-दूसरे की भाषाओं से परिचित कराती हैं।
4. **स्थानीय साहित्य और मौखिक परंपराओं को शामिल करना**: कक्षा में लोककथाओं, कहावतों और कहानियों के माध्यम से भाषाओं का आदान-प्रदान हो सकता है।
5. **मल्टीमीडिया संसाधनों का प्रयोग**: वीडियो, गीत, ऑडियो क्लिप आदि के माध्यम से अन्य भाषाओं की समझ को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

बहुभाषिकता और शिक्षक की भूमिका

शिक्षक बहुभाषिकता के संवाहक होते हैं। यदि शिक्षक स्वयं विभिन्न भाषाओं के प्रति सम्मान और रुचि प्रदर्शित करते हैं, तो छात्र भी उससे प्रभावित होते हैं।

शिक्षकों को चाहिए कि वे:

- बहुभाषिक वातावरण को बढ़ावा दें।
- छात्रों की भाषाई विविधता को एक संसाधन के रूप में देखें, बाधा के रूप में नहीं।
- बहुभाषिक छात्रों के अनुभवों और ज्ञान को कक्षा में साझा करने के अवसर दें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

चुनौतियाँ:

- शिक्षकों का बहुभाषिक प्रशिक्षण अभी सीमित है।
- सभी भाषाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण पाठ्य सामग्री उपलब्ध नहीं है।
- शहरी क्षेत्रों में मातृभाषा की उपेक्षा अधिक देखी जाती है।
- अभिभावकों में अंग्रेज़ी के प्रति मोह के कारण मातृभाषा आधारित शिक्षा को समर्थन नहीं मिलता।

संभावनाएँ:

- डिजिटल माध्यमों से बहुभाषिक सामग्री का विकास संभव है।
- स्थानीय समुदायों को विद्यालयों से जोड़कर भाषा संरक्षण में योगदान लिया जा सकता है।
- भाषा शिक्षण के नए नवाचारों से कक्षा को अधिक संवादात्मक और समावेशी बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक ऐतिहासिक अवसर प्रदान करती है — जिसमें भारत की भाषाई विविधता को शिक्षा की मुख्यधारा में लाया जा सकता है। बहुभाषिकता केवल भाषाओं का ज्ञान नहीं, बल्कि एक **समावेशी, न्यायपूर्ण, और विविधता का सम्मान करने वाला समाज** बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

नीति यह मानती है कि भाषा केवल ज्ञान का माध्यम नहीं, बल्कि **संवेदना, संस्कृति और चिंतन की संरचना भी है।** यदि हम भारतीय भाषाओं को संरक्षण और प्रोत्साहन देंगे, तो हम न केवल अपने अतीत को सहेजेंगे, बल्कि अपने भविष्य को भी अधिक सशक्त और समावेशी बनाएँगे।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. बहुभाषिकता (विकिपीडिया)
2. पाठ्यक्रम में भाषा, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, बी.एड.-103, पृ.सं.57
3. सिंगल ऊषा, अंजू (2019) – *पाठ्यचर्या में भाषा*, रोहतक: ठाकुर पब्लिकेशन
4. पटनायक, डी.पी. (1981) – *Multilingualism and Mother Tongue Education*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार

दूरभाष:-7018342787,9418187380

अणु डाक:-sharmaanand786@gmail.com bdsharma115@gmail.com

पत्राचार डाक

डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा

द्वारा डॉ० सुमेधा शर्मा

सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग

शासकीय महाविद्यालय करसोग जिला मंडी

हिमाचल प्रदेश

पिनकोड :- 175011

दूरभाष:-(7018342787) (7018292472)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 131-134
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"अमरकांत का साहित्य सम- सामयिक परिवेश की सच्चाईयों का दर्पण है'' एक विश्लेषण

डॉ रेनू जोशी,
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर हिन्दी,
राजकीय महाविद्यालय लमगडा, अल्मोड़ा उत्तराखंड 263601

सारांश– हिंदी कहानी साहित्य की श्री वृद्धि एवं विकास में अमरकांत का योगदान सराहनीय है। अपने रचना कर्म में रचनाकार अमरकांत ने जिस मध्यवर्गीय जीवन के अनुभूत सत्य को माध्यम बनाया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके पास कथा कहने का एक सकारात्मक एवं विलक्षण तरीक़ा है, जो उन्हें कथा गढ़ने में निपुण बनाता है। अपनी मानवीय दृष्टि को प्रस्तुत कर रचनाकार ने सदियों से शोषित, उपेक्षित, व तिरस्कृत निम्न-मध्य वर्गीय एवं स्त्री जीवन के प्रति अपनी उपयोगिता एवं प्रासंगिकता का परिचय दिया है। इस परिवेश और अंचल ने उन्हें जो कुछ दिया है, उसे पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ यथार्थ की धरातल पर उजागर किया है।
मुख्य शब्द- प्रासंगिक, सम सामयिक, विचारधारा, यथार्थवाद, तत्कालीन, निम्न मध्य वर्ग, सृजनशीलता, जिजीविषा, सच्चाई।

समकालीन जीवन परिवेश और परिस्थितियों की गहराई में डूबकर अनुभूत सच्चाइयों के सहारे साहित्यकार श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करता है। उसके इर्द गिर्द जो भी रचना संसार बनता है, वह बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कहा भी गया है, कि साहित्य अपने युग और समाज का प्रतिबिंब होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो बहुधा साहित्यकार के लिए उससे अविचालित एवं अप्रभावित रहना असंभव हो जाता है।1 कथाकार अमरकांत की पैनी दृष्टि भी अपने भावों और विचारों से स्पंदित होकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्थिति और घटना पर हमेशा बनी रहती थी। विभिन्न प्रकार के आंदोलनों, गांधी के सिद्धांतों, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और सोवियत क्रांति आदि से उनका गहरा सरोकार था। और उसके प्रभाव को ग्रहण कर ही वे चले थे। एक सच्चा यथार्थवादी साहित्यकार अपने समय के संघर्ष से लड़ता हुआ, अतीत और भविष्य के व्यापक सत्य को अपने समकालीन यथार्थ से जोड़ने का प्रयास कर अपनी रचना को कालजयी बना देता है। अमरकांत भी सच्चे अर्थों में एक यथार्थवादी कथाकार है, क्योंकि उनके कथा साहित्य के पात्र वर्तमान कंटकाकीर्ण समाज में भी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आते है।

अमरकांत का जीवन कष्टमय रहा है। उनका जीवन अत्यंत सौम्य व शांत प्रकृति का था। आर्थिक संकटों का सामना करते हुए भी वे निरंतर शांत मन से लिखते रहे। आर्थिक संकटों से जूझने के बाद भी उन्होंने पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा। बस ख़ामोशी से नियमित लिखते रहे। कहते है- कि ''जब तक क्षमता रहे लेखक को अपने दायित्वों का

निर्वहन करते रहना चाहिए''।2 आर्थिक संकटों से जूझते हुए अपने बेकारी के दिनों में अमरकांत ने 'दोपहर का भोजन' और 'डिप्टी कलेक्टर' जैसी सबसे महत्वपूर्ण कहानियां लिखी। इन कहानियों में उनके द्वारा भोगा हुआ संघर्ष ही छिपा था।'दोपहर के भोजन' में अमरकांत ने अपना ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज की आर्थिक विपन्नता को दर्शाया है। दोपहर का भोजन कहानी के विषय में स्वयम अमरकांत कहते हैं- कि इस कहानी को लिखने का विचार मुझे अपने एक मित्र के द्वारा कही गई बात से आया था। वे कहते हैं- कि मित्र जयदेव ने कहा था, कि प्रगतिशील लोग भूख की कहानियाँ क्यों लिखते हैं, भूख तो हम जानते हैं। हम जानते हैं कि हमारे पास खाने को नहीं है, फिर भी हम यह दिखाते है, कि हमारे पास पर्याप्त भोजन है, और हमारा पेट भरा हुआ है। उनकी इस बात ने मुझे गहराई तक झकझोरा, और मेरे बीते दिनों के अनुभवों से भी उसका तालमेल था। ऐसे लाखों करोड़ों लोग होंगे जो आधा पेट खाना खाकर जीवन जीते हैं , ज़िंदगी से लड़ते हैं, और उसका मुक़ाबला करते हैं लेकिन शोर नहीं मचाते है, कि हम भूखे हैं, बल्कि इसे बर्दाशत करते हुए संघर्ष करते हैं। इस अभाव को कम से कम शब्दों में दोपहर का भोजन कहानी रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत किया''।3

अमरकांत का जीवन स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर काल का संधिकाल था। जब भारत ग़ुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, तब उनका जन्म हुआ। और वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ ही साथ जवान हुए। उन्होंने भारत को कुप्रथाओं, रीति रिवाज़ों, परंपराओं और मान्यताओं से घिरा हुआ देखा, इन सभी पुरानी कुप्रथाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने मे स्वामी दयानंद सरस्वती, नेहरू, महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों के अथक प्रयासों से सफलता प्राप्त हुई। भारत छोड़ो आंदोलन के समय सभी बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री पुरुषों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। स्वयं अमरकांत भी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर इस अभियान का हिस्सा बने थे। परंतु स्वतंत्रता के पश्चात मानव मूल्य बदल गए, जिनमें स्वार्थ, अवसरवाद और सिद्धांत हीनता का बोलबाला था। भारत कई प्रकार की सामाजिक विषमताओं से घिर गया था। जिस वर्ण व्यवस्था की स्थापना को समाज को समुचित रूप से चलाने के लिए की गई थी, उसे धर्मानुयायियो ने अपने हिसाब से बदलकर उसका कुत्सित रूप लोगों के सामने रखा । संयुक्त परिवार एकाकी परिवारों में तब्दील हो गये। समाज में कुंठा, घुटन और संत्रास की स्थिति बढ़ने लगी। अमरकांत भी इसी समाज को भोग रहे थे। इसलिए उनके साहित्य में इन सभी घटनाओं के प्रति आक्रोश दिखाई देता है। उनके सूखा पत्ता, कटीली राह के फूल, ग्राम सेविका इत्यादि उपन्यास कुरीतियों, कुप्रथाओं और विसंगतियों के साथ साथ मध्यवर्गीय जीवन में उत्पन्न अंतर्द्वंद्व की मन:स्थिति पर तीखा प्रहार करते हुए जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण करते है।

गांधी जी ने अपने सिद्धांतों में सर्वाधिक जोर सत्य, अहिंसा व सत्याग्रह पर दिया। वे चाहते थे, कि व्यक्ति को दंड के माध्यम से न सुधार कर बल्कि उसका हृदय परिवर्तन किया जाए। एक सत्याग्रही के अनुसार- किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मत परिवर्तन कर देना ज़्यादा अच्छा है''।4 इस राजनीतिक विचारधारा का अमरकांत पर भी असर हुआ और वे गांधी जी के स्वाधीनता संग्राम के साथ जुड़ गए ।अमरकान्त नेहरू के व्यक्तित्व से भी काफ़ी प्रभावित थे। उनकी लोकप्रियता के विषय में अमरकांत कहते हैं- मुझे याद है कि एक अगस्त को स्वाधीनता का जुलूस चौक इलाहाबाद चौराहे से चला, और उसमें पंडित नेहरू भी शामिल थे। तब में क्रिश्चियन कॉलेज मे एक लॉज मे रहता था, मैं भी उनके जुलूस में लाल हाफ़ पैंट और खद्दर की कमीज़ पहने हुए तथा टोपी लगाए हुए था।जुलूस पुरुषोत्तम दास टंडन पार्क की ओर बढ़ गया, वहाँ एक बड़ी मीटिंग हुई, नेहरू जी ने बताया कि आठ अगस्त को आई०सी०सी० की मीटिंग है, वहाँ पर आज़ादी का प्रस्ताव रखा जाएगा ।नेहरू ने वहाँ बहुत ही जोशीला भाषण दिया। जिसे सुनकर आम आदमी का सीना फूल गया। और वे जोश और उत्साह से हॉफ़ने लगे। उनका सीना ऊपर को उठ गया, और शरीर उत्साह से काँपने लगा''।5 सूखा पत्ता उपन्यास में ये सभी चीज़ें दृष्टव्य है। स्वयं अमरकांत कहते हैं 1948 मे बी०ए०

फ़ाइनल करके राजनीतिक विचारधारा जो मेरे मन मे चल रही थी, उसका असर भी लेखन में आया और लेखन का यह कार्य भी राष्ट्रवाद ही लगता था।6

अमरकांत का साहित्य उनके जीवन तथा चारों ओर के परिवेश की सच्चाइयों का दर्पण है। क्योंकि अमरकांत ने जब लिखना प्रारम्भ किया वह संधि काल था। जहाँ एक ओर राष्ट्रीय भावना से जुड़ी विचारधारा पर साहित्य लिखा जा रहा था तो दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा का यथार्थवादी चित्रण साहित्य में हो रहा था। वस्तुतः साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो। जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो, और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने गुण हो। साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाईयॅा और अनुभूतियॅा व्यक्त की गई हो''।7 अमरकांत बाल्यकाल से ही साहित्य रचना में लीन थे।उनके अध्यापक बाबू गणेश प्रसाद ने उनमें साहित्य के प्रति समझ को बढ़ाने का काम किया था। उन्होंने अपने अध्यापक के विषय में कहा- कि वे चाहते थे, कि प्रेमचंद के स्तर की कहानियां जो अपने समय की सर्वोत्तम स्तर की कहानियाँ है। इसमें कोई संशय नहीं है, किन्तु उस परिपाटी से हटकर कुछ नई ढंग की कहानियाँ लिखी जाय, जो कि प्रगतिशील व वास्तविकता की धारा में लिखी जा सके। जो उस समय की सामाजिक विचारधारा की माँग थी। इसके लिए बाबू गणेश प्रसाद ने मुल्कराज आनंद द्वारा रचित लास्ट चाइल्ड कहानी का ज़िक्र किया, तथा इस कहानी का पूरा कथानक उन्होंने सुनाया। इस तरह से कहानी लिखने की प्रेरणा उन्होंने अपने विद्यार्थियों को दी''।8 इस प्रकार अमरकांत ने सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक विचारधारा को अपनी लेखनी के माध्यम से स्वीकृति प्रदान की, और प्रेमचंद की आदर्श और यथार्थवादी प्रवृत्ति को आगे बढ़ाते हुए समाजवादी यथार्थ का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया। अमरकांत ने सामाजिक अंतर्विरोधों और राजनीतिक विकृतियों को स्वयम झेला और भोगा, इसलिए उनकी कहानियो और उपन्यासों मे इनका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

अमरकांत के साहित्य की मुख्य विशेषता - उनका यथार्थ दृष्टिकोण है। जिसके माध्यम से उन्होंने समाज में घटने वाली रोज़मर्रा की समस्याओं को जानने- समझने तथा उसे प्रस्तुत करने का प्रयास अपने साहित्य में किया है। स्वतंत्रता के बाद भी भारत विघटन की घटना हो या लोकतांत्रिक शासन पद्धति की योजना। सभी समस्याओं का चित्रण उनके साहित्य में दृष्टिगत होता है ।अंग्रेजों की ग़ुलामी झेलने के पश्चात आम जनता का नई सरकार के प्रति आशान्वित होना आम बात थी, परंतु जल्दी ही नेताओं की स्वार्थसिद्धि तथा कर्मचारियों की अफ़सरशाही तथा चाटुकारिता को देख लोगों का सरकार के प्रति मोहभंग हुआ। औद्योगीकरण ने शहरीकरण को बढ़ावा दिया, और नौकरी की तलाश में गाँव के लोग शहर की ओर उन्मुख होने लगे। शहरीकरण और बाज़ार वाद ने मनुष्य को भौतिकवादी बना दिया। आर्थिक आवश्यकता पड़ जाने के फलस्वरूप परिवार में स्त्री- पुरूष दोनों का कमाना आवश्यक हो गया। शहरों की आबादी बढ़ने लगी, और शहरी जीवन में तनाव बढ़ता गया। इस तनाव ने परिवार के आधार स्तंभ पति- पत्नी के रिश्ते को पाटने का कार्य किया। आर्थिक स्वावलंबन के कारण स्त्रियों में सामाजिक स्तर पर बराबरी और स्वतंत्रता का भाव जागृत हुआ। शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि हुई ।जिसके कारण बेरोज़गारी, शोषण और अलगाव की स्थिति बनने लगी। अमरकांत शहरी मध्यवर्ग तथा निम्न मध्य वर्ग की आशा- आकांक्षाओं से जुड़े हुए थे, क्योंकि वे स्वयं भी समाज के इसी वर्ग से थे, और इस वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं से परिचित होने के कारण एक बेचैनी का अनुभव उनके साहित्य में देखने को मिलता है।उनके साहित्य में इसी वर्ग के जीवनानुभव व विसंगतियों और जिजीविषाओं का भी प्रभावशाली चित्रण यथार्थ के व्यापक फ़लक पर हुआ है। 'कँटीली राह के फूल' मे अनूप और कामिनी 'सूखा पत्ता' में कृष्ण कुमार और उर्मिला ' काले उजले दिन' मे नायक और रजनी 'ग्राम सेविका' में दमयंती और हर चरण 'दीवार और आंगन' में दीप्ति और मोहन के संदर्भ अलग अलग नहीं है, एक ही

आदमी विभिन्न परिस्थितियों में उलझता है, बाहर आता है, ज़िंदगी मनोविज्ञान की इस बात से सहमत है, कि मनुष्य की कुंठाएँ सहयोग के लिए उनसे उभरे लोगों का चुनाव करती है, एक कुंठा एक आदमी के मेल से साफ़ होती है, तो दूसरी के लिए दूसरा आ जाता है, व्यक्तियों का ज़िंदगी में आना- जाना व दोस्ती का बनना- बिगड़ना व्यक्तित्व के विकास की ज़रूरी शर्त है''।9

सूखा पत्ता उपन्यास के नायक और उसके जीवन का प्रारंभिक काल वस्तुतः अमरकांत का ही प्रारम्भिक काल है। उन्होंने अपनी किशोरावस्था में जिस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी निभाई, उसका अनुभूत सार ही सूखा पत्ता के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है । स्वातंत्र्योत्तर सरकार द्वारा चलाए गए शैक्षिक अभियानों की चर्चा ग्राम सेविका उपन्यास में की गई है।अमरकांत ने उस समय की ग्रामीण परिस्थितियो, नारी की स्थिति का वर्णन अपने साहित्य में सशक्त रूप से किया है। 'इन्हीं हथियारों से' मे भारत छोड़ो आन्दोलन 1942 का यथार्थ वर्णन है अंग्रेजों के प्रति विद्रोह का स्वर है। इस प्रकार अमरकांत ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज की अनेक विसंगतियों रूढ़ियों और कुंठाओं इत्यादि का यथार्थ चित्रण पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

अमरकांत ने कथा साहित्य के माध्यम से उस सच्चाई को उजागर किया है, जिसे हम आज भी देखते हैं,' कुहासा' कहानी में पलायनवादी पीड़ा का गहरा दर्द है। शहरी जीवन के संबंधों का खोखलापन, औपचारिकता, मानवीय प्रेम की ऊष्मा का अभाव, तथा दिखावटी ज़िंदगी के एकाकीपन की सहज अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है। 'वह शहर धर्म संस्कृति व राजनीति का केंद्र था, ख़ास तरह से वह ऊँचे- ऊँचे ख़ूबसूरत मकानों, भव्य मंदिरों ,मस्जिदों तथा गिरिजाघरो, दबंग मानवतावादी नेताओ, करोड़पति सेठों तथा अंग्रेज़ी शिक्षा प्रभावित अधिकारियों के लिए विख्यात था। दूबर थक कर चूर- चूर हो गया था, वह एक बंद दुकान के आगे निकले बरामदे मे बैठकर लुढक गया''।10

अतः निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि अमरकांत का साहित्य बहुआयामी रहा है, उनकी दृष्टि निरंतर परिवेश की यथार्थता पर केंद्रित रही है, उन्होने निम्नमध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकता को देखा, परखा, और अनुभव जन्य स्थितियों को यथार्थ के धरातल पर पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया। यही कारण है कि उनके साहित्य में व्यक्त परिवेश पूरी ईमानदारी और सृजनशीलता के साथ उभर रहा है, और उनका साहित्य समकालीन साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान स्थापित करता है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. हंस, अप्रैल 1932 पृष्ठ संख्या- 40
2. अमर उजाला इलाहाबाद बुधवार 21 सितम्बर 2011
3. इलाहाबाद कहानीकार अमरकांत, वृत्तचित्र से शोध आलेख और निर्देशक संजय जोशी निर्माता साहित्य अकादमी 2006
4. सत्याग्रह मीमांसा, रंगनाथ दिवाकर, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या- 52
5. कहानीकार अमरकांत, वृत्तचित्र से शोध आलेख निर्देशक संजय जोशी, निर्माता- साहित्य अकादमी 2006
6. कहानीकार अमरकांत, वृत्तचित्र से शोध आलेख निर्देशक संजय जोशी निर्माता- साहित्य अकादमी 2006
7. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृष्ठ-77
8. कहानीकार अमरकांत, वृत्तचित्र से शोध आलेखनिर्देशक संजय जोशी, निर्माता- साहित्य अकादमी 2006
9. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवींद्र कालिया, पृष्ठ- 293
10. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग दो, पृष्ठ- 156

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 135-139
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

''उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के जीवन कौशलों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''

किरण धारू,
डॉ. अंतिम बाला पाण्डेय,
शिक्षा अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सारांश :–
अध्ययनकर्ता द्वारा **''उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के जीवन कौशलों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''** किया गया है। उद्देश्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण विद्यार्थियों, बालक एवं बालिकाओं का अलग–अलग उद्देश्यों पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रायोगिक विधि का उपयोग किया गया है। अध्ययनकर्ता द्वारा उज्जैन शहर के हाईस्कूल में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है। चुने गए प्रतिदर्शन के रूप में 50 बालक व बालिकाओं को यादृच्छिक विधि से चयनित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में उपकरण के रूप में जीवन कौशल संबंधी स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण एवं विवेचन के लिए मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, टी–परीक्षण सांख्यिकीय विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययनोपरान्त यह ज्ञात होता है कि उमंग मार्गदर्शिका के माध्यम से अध्यापन विद्यार्थियों में जीवन कौशल का विकास करने में सक्षम है, इससे एक तथ्य और स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि परम्परागत अध्यापन के अलावा दिया गया विशिष्ट ज्ञान उनमें जीवन कौशल का विकास करता है–

की वर्ड, – उमंग, जीवन कौशल, अध्यापन, विकास।

प्रस्तावना :–

वैदिक काल से ही शिक्षा को वह प्रकाश माना गया है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशित करने का सामर्थ्य रखता है। विद्वानों ने शिक्षा को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा है। बालक के लिए शिक्षा परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है, न केवल सर्वांगीण विकास का आधार अपितु विपरित परिस्थितियों के साथ समायोजन एवं अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की क्षमता भी विकसित करने का सशक्त माध्यम है। बालक हेतु प्रत्येक समाज में औपचारिक रूप से शिक्षा की व्यवस्था विद्यालयों के माध्यम से की जाती है। विद्यालय न केवल एक सामाजिक संस्था है वरन् समाज का ही लघु रूप है अतः शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व शालाओं का होता है। विद्यालय के माध्यम से बालक को इस प्रकार तैयार किया जाता है कि ज्ञानार्जन के साथ ही वह स्वयं के विकास व राष्ट्र के विकास में अपने दायित्वों का बखूबी निर्वहन कर सके। इसी संदर्भ में वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यपुस्तक आधारित शिक्षण कार्य के साथ ही उन्हें जीवन के व्यवहारिक पहलुओं से अवगत कराने विशेषरूप से किशोरवस्था की संवेदनशील स्थितियों शारीरिक मनोसामाजिक परिवर्तन को समझने अपने जीवन का प्रबंधन करने हेतु ही कक्षा 9वीं से 12वीं तक के विद्यार्थियों हेतु जीवन कौशल शिक्षा कार्यक्रम उमंग का प्रारंभ विद्यालयों में किया गया है। पूर्व अध्ययन में –

राजीव पण्ड्या (2010) ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि जीवन कौशल केन्द्रित अध्यापन विद्यार्थियों के जीवन कौशल संबंधी संज्ञानात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है।

किशोर चंदन (2015) ने निष्कर्ष रूप में पाया कि पाठ्यसहगामी क्रियाओं का छात्र–छात्राओं की जीवन कौशल संबंधी जागरूकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

नीता (2017) ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की जीवन कौशल शिक्षा के प्रति समान अवसर व समान वातावरण प्राप्त होने पर समान अभिवृत्ति पायी जाती है।

जीवन कौशलों को विकसित करने हेतु शासकीय विद्यालयों में विद्यार्थियों को दी जा रही जीवन कौशल शिक्षा आवश्यक व महत्वपूर्ण शिक्षा है जो विद्यार्थियों के लिए जानकारियों व दक्षताओं का प्रकाश स्तम्भ है। सरल शब्दों में जीवन कौशल ''जीने की कला'' है जिन्हें सीखा जा सकता है तथा इनमें सुधार भी किया जा सकता है। इनसे किशोर विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, स्वनिर्णयन क्षमता, कुशल सम्प्रेषण, स्वप्रबंधन का विकास होता है। अतः अध्ययनकर्ता द्वारा उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के जीवन कौशलों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव को देखने का प्रयास किया गया है चूंकि जीवन कौशल शिक्षा से विद्यार्थियों के जीवन कौशल प्रभावित होते है।

समस्या कथन :–

''उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के जीवन कौशलों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''।

अध्ययन के उद्देश्य :–

प्रस्तुत अध्ययन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं–

(1) विद्यार्थियों में ''उमंग'' के अध्यापन से जीवन कौशलों का विकास करना।

(2) उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के सामाजिक कौशलों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

(3) उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के भावनात्मक कौशलों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

(4) उमंग से अध्यापन का विद्यार्थियों के विश्लेषणात्मक कौशलों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नांकित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

(1) उमंग के माध्यम से अध्यापन द्वारा बालक–बालिकाओं में विकसित होने वाले सामाजिक कौशलों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(2) उमंग के माध्यम से अध्यापन द्वारा बालक–बालिकाओं में विकसित होने वाले भावनात्मक कौशलों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

(3) उमंग के माध्यम से अध्यापन द्वारा बालक–बालिकाओं में विकसित होने वाले विश्लेषणात्मक कौशलों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन विधि :–

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति प्रयोगात्मक है अतः प्रायोगिक विधि का उपयोग किया गया है।

अध्ययन की जनसंख्या :–

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा उज्जैन शहर के शासकीय व अशासकीय हाईस्कूलों में अध्ययनरत बालक व बालिकाओं को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श प्रविधि एवं न्यादर्श :–

चुने गए प्रतिदर्शन के रूप में दो समूह हेतु उज्जैन शहर के (2) शासकीय व अशासकीय हाईस्कूल से 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया प्रत्येक विद्यालय से 50 विद्यार्थी जिनमें (25 बालक, 25 बालिका) का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया।

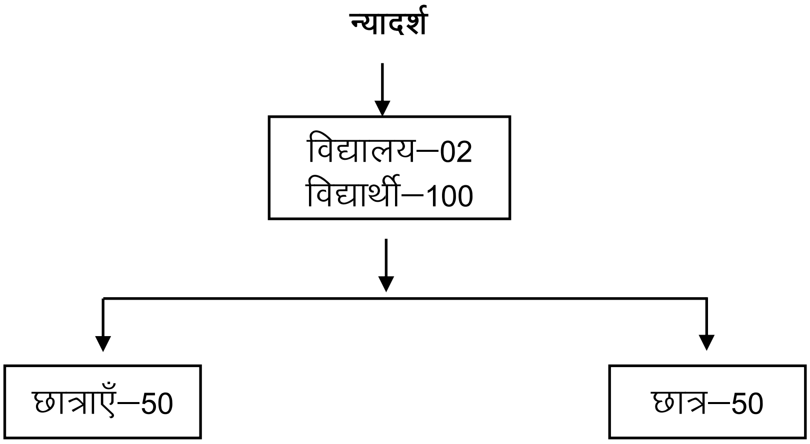

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणों का विवरण :–

प्रस्तुत शोध प्रयोगात्मक है शोधार्थी द्वारा उपकरण के रूप में जीवन कौशल संबंधी स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। इस प्रश्नावली में जीवन कौशल संबंधित कुल 30 प्रश्नों के अन्तर्गत 10वीं कक्षा के विद्यार्थियों हेतु 10 प्रश्न सामाजिक कौशल, 10 प्रश्न भावनात्मक कौशल एवं 10 प्रश्न विश्लेषणात्मक कौशल के सम्मिलित किए गए है। प्रश्नावली 90 अंकों की रखी गयी। न्यादर्श के अन्तर की सार्थकता के लिए 0.05 तथा 0.01 सार्थकता स्तर को प्रयुक्त किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ :–

प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण एवं विवेचन के लिए अनुकूल सांख्यिकीय तकनीक का उपयोग द्वारा अन्तर की सार्थकता ज्ञात कर निष्कर्ष निकाले गए है।

(1) मध्यमान
(2) प्रमाणिक विचलन
(3) t - test का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या :–

(1) प्रयोगात्मक नियंत्रित समूह सामाजिक कौशल परीक्षण प्राप्तांकों की तुलना–

सारणी क्रमांक–01

पश्च परीक्षण के आधार पर प्रयोगात्मक व नियंत्रित समूह के सामाजिक कौशल में अन्तर को दर्शाते मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात

क्रं.	**समूह**	**विद्यार्थियों की संख्या**	**मध्यमान**	**प्रमाणिक विचलन**	**सार्थक अन्तर C.R.**	**0.01 स्तर पर**	**0.05 स्तर पर**
1.	प्रयोगात्मक समूह	50	18.4	5.94	2.76	अन्तर है	अन्तर है
2.	नियंत्रित समूह	50	15	6.4			

व्याख्या – सारणी–1 से स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक और नियंत्रित समूह के परिगणित क्रांतिक अनुपात का मान 2.76 है जो 98 d.f पर 0.01 और 0.05 स्तर पर निश्चित मान क्रमांक 2.63 और 1.98 से अधिक है पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के आधार पर दोनों समूहों में सार्थक अन्तर है।

प्रथम परिकल्पना उमंग के माध्यम से अध्यापन द्वारा बालक–बालिकाओं में विकसित होने वाले सामाजिक कौशलों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, असत्य सिद्ध होकर अस्वीकृत की जाती है।

(2) **प्रयोगात्मक नियंत्रित समूह भावनात्मक कौशल परीक्षण प्राप्तांकों की तुलना–**

सारणी क्रमांक–02

पश्च परीक्षण के आधार पर प्रयोगात्मक व नियंत्रित के भावनात्मक कौशल में अन्तर दर्शाते मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात

क्रं.	समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	सार्थक अन्तर C.R.	0.01 स्तर पर	0.05 स्तर पर
1.	प्रयोगात्मक समूह	50	18.2	6.01	2.86	अन्तर है	अन्तर है
2.	नियंत्रित समूह	50	14.7	6.15			

व्याख्या – सारणी–2 से स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक और नियंत्रित समूह के परिगणित क्रांतिक अनुपात 2.86 है जो 98 d.f. पर 0.01 और 0.05 स्तर पर निश्चित मान क्रमशः 2.63, 1.98 से अधिक है। पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के आधार पर दोनों समूहों में सार्थक अन्तर है।

द्वितीय परिकल्पना उमंग के माध्यम से अध्यापन द्वारा बालक–बालिकाओं में विकसित होने वाले भावनात्मक कौशलों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है असत्य सिद्ध होकर अस्वीकृत की जाती है।

(3) **प्रयोगात्मक नियंत्रित समूह विश्लेषणात्मक कौशल परीक्षण प्राप्तांकों की तुलना–**

सारणी क्रमांक–03

पश्च परीक्षण के आधार पर प्रयोगात्मक व नियंत्रित समूह के विश्लेषणात्मक कौशल में अन्तर दर्शाते मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात

क्रं.	समूह	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	सार्थक अन्तर C.R.	0.01 स्तर पर	0.05 स्तर पर
1.	प्रयोगात्मक समूह	50	16.1	6.05	3.66	अन्तर है	अन्तर है
2.	नियंत्रित समूह	50	12	5.2			

व्याख्या – सारणी–3 से स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक और नियंत्रित समूह के परिगणित क्रांतिक अनुपात 3.66 है जो 98 d.f. पर 0.01 और 0.05 स्तर पर निश्चित मान क्रमशः 2.63, 1.98 से अधिक है। पश्च परीक्षण के प्राप्तांकों के आधार पर दोनों समूहों में सार्थक अन्तर है।

तृतीय परिकल्पना उमंग के माध्यम से अध्यापन द्वारा बालक–बालिकाओं में विकसित होने वाले विश्लेषणात्मक कौशलों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है असत्य सिद्ध होकर अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए–

- उमंग मार्गदर्शिका के माध्यम से अध्यापन विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल का विकास करता है।
- उमंग मार्गदर्शिका के माध्यम से अध्यापन विद्यार्थियों के भावनात्मक कौशल का विकास करता है।
- उमंग मार्गदर्शिका के माध्यम से अध्यापन विद्यार्थियों के विश्लेषणात्मक कौशल का विकास करता है।

उमंग मार्गदर्शिका के माध्यम से अध्यापन विद्यार्थियों में जीवन कौशल का विकास करने में सक्षम है इससे एक तथ्य और स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि परम्परागत अध्यापन के अलावा दिया गया विशिष्ट ज्ञान उनमें जीवन कौशल का विकास करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उमंग जीवन कौशल शिक्षा मार्गदर्शिका पुस्तिका – (राज्य शासन म.प्र. भारतीय ग्रामीण महिला संघ इन्दौर (यू.एन.एफ.पी.ए. द्वारा निर्मित)
- शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त – रमन बिहारीलाल
- मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी – प्रीति वर्मा वि.पु. मंदिर, आगरा
- शिक्षा अनुसंधान – आर.ए.शर्मा, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
- अनुसंधान विधियाँ – डी.एन. श्रीवास्तव, साहित्य प्रकाशन, आगरा
- www.ugc.ac in e-book jeevan koushal.
- www.vimarsh m.p. gov. in umang
- www.drishti ias.com life skill

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 140-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गालो लोकोक्तियों का सामाजिक दृष्टि से अध्ययन

डॉ. अरुणा गोगोई
सहायक आचार्य,
गवर्नमेंट मॉडल कॉलेज, बासार, लपारादा, अरुणाचल प्रदेश, पिनकोड:791101

अरुणाचल प्रदेश भारत के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित है। यहाँ और सात राज्य है- नागालैंड, मणिपुर, असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोराम औए सिक्किम। अरुणाचल प्रदेश में छब्बीस प्रमुख समुदाय और सौ से अधिक उप-समुदाय निवास करती है। सभी समुदायों की अपनी अलग-अलग संस्कृति, परंपरा, पर्व-उत्सव, धर्म एवं मान्यताएँ हैं। इन विविधताओं के बावजूद सभी प्रेम एवं भाईचारे से रहते हैं। यही कारण है कि इसे विविधता में एकता का प्रतीक माना जाता है। इसे 'मिनी इंडिया' भी कहा जाता है। गालो अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख आदिवासी समुदाय है। यह लोग वेस्ट सियांग, लोअर सियांग और लपारादा जिला हैं, ईस्ट सियाङ, अपर सुबनसिरी, सी-योमी, लोअर दिबाङ वैली, चाङलाङ, नामसाई, पापुम पारे जिले में भी बसे हुए हैं। न्यीशी, तागिन, आपातानी तथा आदी समुदाय की तरह ही गालो भी आबोतानी को अपना पूर्वज मानता हैं। अत: इन्हें तानी समुदाय कहा जाता है।

गालो समाज में लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। जिसमें लोकोक्तियों का स्थान भी प्रमुख है। प्राचीन काल से मौखिक रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती चली आ रही है। गालो भाषा में इसे 'गोमको आगोम' कहा जाता है। इसके संबंध में तुमपाक एते का यह कथन देखा जा सकता है, "Gomko agom literally means 'old sayings' being formed from 'agom' word and ako 'old'."[1]अर्थात 'गोमको' शब्द की उत्पत्ति, आगोम (शब्द अथवा कथन) तथा आको (प्राचीन) शब्दों के 'गोम' तथा 'को' प्रत्यय के योग से बना है। इस प्रकार इसका शाब्दिक अर्थ होगा- 'प्राचीन कथन'। अत: ऐसे कथन जो युगों-युगों से समाज का पथ-प्रदर्शन करती चली आ रही है, उसे 'गोमको आगोम' कहा जाता है।

लोकोक्तियों का प्रयोग आम बोलचाल में स्वत: ही इनके कंठों से निकल आती है। न्याय व्यवस्था में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसके प्रयोग से कथन और अधिक शक्तिशाली व प्रभावशाली बन जाता है। किसी भी अभिव्यक्ति में जब लोकोक्ति का उपयोग किया जाता है तो आमतौर पर इस वाक्य का प्रयोग अक्सर किया जाता है- 'आबो ग आगोम अ अम-ब मेनदो' अर्थात 'पूर्वजों का कहना है कि....।'[2] 'आबो' का अर्थ पिता होता है जिसका आशय यहाँ पूर्वजों से हैं। इस प्रकार इस वाक्य से कथन में विश्वसनीयता आ जाती है जिसके पश्चात्

अक्सर लोग बिना तर्क तथा हिचकिचाहट के कथनी को स्वीकार कर लेते हैं। पूर्वजों के प्रति इनका जो सम्मान है उसे इस वाक्य के आधार पर देखा जा सकता है। समय एवं परिवेश के चलते नई लोकोक्तियाँ गढ़ी भी जा सकती है। इसके संबंध में श्री मीजुम लोना का कहना है कि "नई-नई लोकोक्तियाँ गढ़ी जा सकती है परन्तु इसके लिए अनुभूति एवं निरीक्षण शक्ति के साथ ही सही एवं सटीक शब्दों का चुनाव हो यह अनिवार्य है। इससे इसकी सुन्दरता भी बनी रहेगी और लोगों को समझने में कोई दिक्कत भी नहीं होगी।"[3]

निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर गालो लोकोक्तियों का सामाजिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है- 1. समाज संबंधी लोकोक्तियाँ, 2.विवाह एवं परिवार संबंधी लोकोक्तियाँ, 3.स्त्री संबंधित धारणाएँ, 4.राजनीतिक पक्ष, 5.आर्थिक पक्ष, 6.न्याय व्यवस्था संबंधी लोकोक्तियाँ

1. समाज संबंधी लोकोक्तियाँ: मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक परिवेश में रहना उसकी बुनियादी जरूरत है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। गालो जन-जीवन में समाज अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके बिना मनुष्य की उन्नति एवं प्रगति नहीं हो सकती। समाज ही उसको नाम एवं पहचान देती है। उसके चरित्र का निर्माण भी समाज में रहकर होता है। इसका बोध कराने वाली लोकोक्ति का एक उदाहरण इस प्रकार है: **"गाब लाबि अ नरि कामा दो"**[4]अर्थात परजीवी पौधा अन्य पेड़-पौधों पर निर्भर होता है। यह उनकी शाखाओं और तनों पर उगते हैं। इसलिए दूसरे पेड़-पौधों के मरने के साथ ही ये भी मर जाता है। उसी प्रकार हर समाज वह पेड़ है जिनके सहारे व्यक्ति जीवित रहता है। उसके बिना उसका कोई पृथक अस्तित्व नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को समाज के उत्थान में भागीदारी निभाने की सलाह दी जाती है। माना जाता है कि सामाजिक नियमों का अतिक्रमण करने पर व्यक्ति को कई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। गालो लोक सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से समानता को महत्व देता है। यहाँ हर व्यक्ति का सम्मान किया जाता है।

2. विवाह एवं परिवार संबंधी लोकोक्तियाँ

विवाह एवं परिवार दोनों सामाजिक संस्था है। इससे वृहद् समाज का निर्माण होता है। विवाह एक ऐसी सामाजिक स्वीकृति है, जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों रीति-रिवाजों के अनुसार साथ रहते हैं, सुख-दुःख में सहभागिता बनते हैं और संतानोपत्ति करते हैं। इस प्रकार पति, पत्नी और बच्चों के समूह से परिवार बनता है। इसके अतिरिक्त वे लोग जो रक्त अथवा आत्मीयता से संबंधित हो, उन्हें भी परिवार कहा जाता है। गालो समाज में माता-पिता द्वारा तय की गई विवाह और प्रेम विवाह दोनों ही पाई जाती है। संपन्न परिवारों में तथा जिस घर में कई भाई-बहने हो, वहाँ रिश्ते जोड़ने की सलाह दी जाती है। यथा- **"ओरो आकेन ना लो आओ पुगमा बका, ओमो आकेन नाम न्यीदा मोमा बका"**[5]अर्थात जिस परिवार में केवल एक ही पुत्र होता है तथा एक ही पुत्री होती है ऐसे परिवार में वैवाहिक संबंध नहीं जोड़ना चाहिए। यदि पति की मृत्यु हो जाती है तो इस समाज में विधवा का पुनर्विवाह आमतौर पर जेठ अथवा देवर के साथ करा दिया जाता है और पत्नी की मृत्यु होने पर पत्नी की बहन के साथ। जिसके कारण नया रिश्ता खोजने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। नया रिश्ता खोजने में समय और धन दोनों लगता है। वैवाहिक जीवन को गतिमान बनाने के लिए पति-पत्नी की अहम भूमिका होती है। माता-पिता के रूप में पारिवारिक जिम्मेदारियां निभानी पड़ती है। उन्हें एक-दूसरे के परिवार वालो से मिलना-मिलाना आवश्यक होता है। माना जाता है कि इसी से सुखी गृहस्थी का निर्माण होता है। परिवार में एकता, शान्ति और अनुशासन बना रहता है।

माता-पिता का आदर व सम्मान करना तथा उनका सहारा बनना बच्चों का कर्त्तव्य होता है। **"हित कामा ब नसीन बुकमा ये, दोत कामा ब कारबो गोमा ये"**[6]अर्थात जिस प्रकार मिट्टी के बिना वनस्पति नहीं उग सकती और बिना आकाश के तारे का फैलाव नहीं हो सकता। उसी प्रकार माता-पिता के बिना बच्चे का अस्तित्व नहीं होता।

जीवन देने के साथ ही जीवन जीने के तौर-तरीके एवं शिक्षाएँ भी माता-पिता बच्चों को देती है। इस लोकोक्ति में माता-पिता की तुलना मिट्टी और आकाश से की गयी हैं। ये हैं तभी वनस्पति और तारे का अस्तित्व है। अत: माता-पिता का स्तर सम्मान का है। लोकोक्तियों में भाई-बहनों के रिश्ते पर भी प्रकाश पड़ता है। उन्हें प्रेम और भाईचारे से रहने की सलाह दी जाती है। यह भी पता चलता है कि यदि परिवार में कोई अनाथ बच्चा हो तो उसकी देखभाल परिवार के अन्य सदस्य मिलकर करते हैं।

3. स्त्री संबंधित धारणाएँ

लोकोक्तियों के द्वारा स्त्री संबंधी जो धारणाएँ समाज में मौजूद हैं उसकी जानकारी मिलती है। विवाह पूर्व युवा स्त्री-पुरुष का साथ रहना अच्छा नहीं माना जाता। समाज में यह धारणा है कि व्यस्क स्त्रियाँ अपना भला-बुरा सब जानती है वह जीवन के बड़े-बड़े निर्णय स्वंय ले सकती है। वह आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र होती है। गालो समाज में सुन्दरता की अपेक्षा आतंरिक गुणों को महत्व दिया जाता है। सुन्दरता अस्थायी होता है अर्थात समय के साथ यह ढल जाती है परन्तु गुण स्थायी होता है जो जीवनभर विपरीत परिस्थितियों में भी उसके साथ चलती है। इसको रेखांकित करती है यह लोकोक्ति- **हिदुम लातो ना कोजुम मामी दो, बोनअ लातो ना ओदअ मामी दो"**[7]अर्थात अच्छी दिखने वाली लकड़ी आग नहीं पकड़ती है। उसी प्रकार सुन्दर दिखने वाली स्त्रियाँ 'ओदअ'(स्थानीय पेय) नहीं बना सकती।

4. राजनीतिक पक्ष

राजनीति किसी भी समाज का एक अहम हिस्सा होती है। इससे समाज को गति मिलती है। अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान राजनीति से समाज में सामंजस्य और शांति स्थापित होती है। गालो समाज में नेता शासक नहीं अपितु सेवक होता है। नेता बनने के लिए आवश्यक गुणों का होना अनिवार्य माना जाता है। जिससे समाज स्वत: ही उसे नेता के रूप में अपना लेता है। यह गुण है- कर्मनिष्ठता, ज्ञानी, साहसी, मार्गदर्शक, पक्षपातरहित आदि। इससे सम्बंधित कई लोकोक्तियाँ समाज में मौजूद है। यहाँ इसका एक उदाहरण देख लेते हैं- **"होतोर होयोर अम रायेक कीनदो, अतोर अयोर अम इसाक पोरदो"**[8]अर्थात जिस प्रकार सबसे सख्त बेंत और मजबूत बाँस को तीर-धनुष बनाने के लिए उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार गुणी और कर्मनिष्ठ व्यक्ति को नेतृत्व के लिए चुना जाता है। नेतृत्व में समर्थकों का भी विशेष योगदान रहता है।

5. आर्थिक पक्ष

गालो कृषि प्रदान समाज है। कृषि इनकी आर्थिक स्थिति का प्रमुख आधार है। धान इनका मुख्य फसल है। लोकोक्तियों में देखने को मिलता कि अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति को श्रम करना पड़ता है। लापरवाही और आलस को आर्थिक पतन का मुख्य कारण माना जाता है। मेहनत, लगन, समर्पण और निरंतरता के माध्यम से आर्थिक जीवन को संतुलित रखने की सलाह दी जाती है। निम्नलिखित लोकोक्ति में खेती के लिए किस जमीन का चुनाव करना चाहिए इसका एक उदाहरण है- **"दीरुम देनदोम देनयोम याम-ग देनपा दोना क, मोरो देनदोम देनयोम यामगो दोना क"**[9]अर्थात खेती के लिए घने जंगल वाले इलाके को चुनना चाहिए। इससे फसल की पैदावार अच्छी होती है। खेती-बाड़ी के अलावा पशु पालन भी करते हैं। मिथुन, गाय, सूअर और मुर्गे प्रमुख पशु है। आर्थिक रूप के साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी इनका महत्व है।

6. न्याय व्यवस्था संबंधी लोकोक्तियाँ

समाज को सुचारू रूप से चलाने में 'कबा' अर्थात पारंपरिक न्याय व्यवस्था भी अहम भूमिका निभाती है। इससे समाज में संतुलन बना रहता है, व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों में सामंजस्य पैदा होती है, निष्पक्षता आती है।

यह सभी सामाजिक विषयों पर कारवाई करता है। इसमें गंभीर चर्चाएँ होती हैं, विचार-विमर्श चलती हैं इसलिए इसकी अध्यक्षता परिवक्व व ज्ञानी लोगों द्वारा किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को इसमें भाग लेने की सलाह दी जाती है। हालाँकि जो व्यक्ति सामाजिक नियम को तोड़ता है, वह जो अपराधी है, उन्हें इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। दोषी को दंड स्वरूप जुर्माना देना पड़ता है परन्तु इसके लिए निर्धन लोगों के लिए कोई कठोर नियम नहीं है और अवयस्कों के लिए यह लागू नहीं होता है। यथा- **"दुम्बो दिनतक लासेन ना, बगा दिनतक लासेन ना"**[10] अर्थात व्यस्क लोगों को हिरण और बन्दर दोनों के माँस का अलग हिस्सा दिया जाता है। प्रस्तुत लोकोक्ति में सामूहिक शिकार के जरिए व्यक्ति के व्यस्क होने के लक्षण को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। जब भी सामूहिक शिकार किया जाता है तो युवकों को छोड़कर वयस्कों में माँस का बराबर टुकड़ा बाँटा जाता है। किसी पुरुष के विरुद्ध 'कबा' की सुनवाई होती है तो उसे जुर्माना देने की आवश्यकता है अथवा नहीं इसका पता भी इस लोकोक्ति के अनुसार चलता है; अपराधी व्यस्क है तो उसे जुर्माना देना पड़ता है यदि अवयस्क है तो उसकी आवश्यकता नहीं होती।

इन बिन्दुओं से सम्बंधित तथा इससे इतर और भी कई सारी लोकोक्तियाँ समाज में भरपूर मात्रा में पाई जाती है। उन सभी का अध्ययन करना इस शोध पत्र में संभव नहीं है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकोक्तियों के द्वारा किसी समाज का अध्ययन-विश्लेषण किया जा सकता है। आकार में छोटी होने के बावजूद इससे कई जानकारियाँ सामने आती है। क्योंकि आज इसको जानने वाले ज्ञाताओं की संख्या कम होती जाती जा रही है इसलिए मौखिक परंपरा द्वारा हस्तांतरित होती इन लोकोक्तियों को समय रहते संग्रह और संरक्षण करना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ सूची:

1. Tumpak Ete;Nyikok Agom:The Sacred Lore of the Galo,Along;Adi Folk Literature Research Centre;1984;भूमिका से
2. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री गामजो बागरा;बागरा गाँव,वेस्ट सियांग
3. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री मिजुम लोना;आलो शहर,वेस्ट सियांग
4. Tumpak Ete;Nyikok Agom:The Sacred Lore of the Galo,Along;Adi Folk Literature Research Centre;1984;पृ-23
5. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री बोमयोम निरी;कामबू गाँव,वेस्ट सियांग
6. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री गामजो बागरा;बागरा गाँव,वेस्ट सियांग
7. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री मिजुम लोना;आलो शहर,वेस्ट सियांग
8. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री गामजो बागरा;बागरा गाँव,वेस्ट सियांग
9. वही
10. साक्षात्कार से प्राप्त;श्री बोमयोम निरी;कामबू गाँव,वेस्ट सियांग

संपर्क: 7085416514/9436413285

ई.मेल:arunagoi830@gamil.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 144-146
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका का अध्ययन

Harsh kumar
Research scholar history,
Dr.Shrikrishna singh
professor history,
P.K.K.Government Degree college Jalalabad Shahjahanpur

परिचय-

असहयोग आंदोलन का उद्देश्य स्वराज प्राप्ति था। सन् 1947 के पहले देश अंग्रेजों का उपनिवेश था। इसी उपनिवेशवाद को भारत से समाप्त करने के लिए असहयोग आंदोलन महात्मा गांधी के आवाहन पर चलाया गया। यह एक अहिंसक आंदोलन था, इसी संबंध में 23 नवंबर सन् 1920 को महात्मा गांधी का भाषण आगरा में हुआ था। आगरा आने पर महात्मा गांधी आगरा के बेलनगंज के श्री गिरिधर लाल वकील के निवास स्थान पर रुके। गांधी जी यहां विद्यार्थियों के मध्य मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में भाषण दिया। असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के लोगों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया तथा बाकी देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चले, जिसमें सभी वर्गों का योगदान सराहनी रहा जो भेदभाव रहित नवभारत के निर्माण के मील का पत्थर साबित हुई। सहसा आजादी ब्रिटिश सरकार से पाना संभव नहीं था। अतः देश के आंदोलनकारी के अमर बलिदानी से ही देश गुलामी की वेडियों को तोड़कर आजादी के मार्ग पर चल सका। जिसमें आगरा क्षेत्र के आंदोलनकारी का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा।

अध्ययन का उद्देश्य -

1.असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र का योगदान।
2. असहयोग आंदोलन का अध्ययन करना।
3. असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के आंदोलनकारी के बारे में जानना।

असहयोग आंदोलन-

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में कई छोटे -बड़े आंदोलन हुए इन आंदोलनों में असहयोग आंदोलन का स्थान महत्वपूर्ण रहा। असहयोग आंदोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1 अगस्त सन् 1920 में औपचारिक रूप से आरंभ हुआ। इसी दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के देहवाशान से संपूर्ण देश में शोक की लहर भी दौड़ पड़ी। महात्मा गांधी द्वारा इसी दिन तिलक स्वराज फंड की स्थापना की गई जिसमें देखते ही देखते एक करोड रुपए आंदोलनकारियों के द्वारा

एकत्र हुआ, तथा इसके बाद में आंदोलन कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में 4 सितंबर 1920 को एक प्रस्ताव पारित हुआ था। उसे कांग्रेस द्वारा इसको औपचारिक आंदोलन स्वीकृत कर लिया गया। यह वह दौर था जब कांग्रेस अपने में बदलाव के दौर से गुजर रही थी। सन् 1920 के पूर्व कांग्रेस की प्रकृति उदारवादी थी, तथा सन् 1920 के बाद कांग्रेस गांधीवादी युग में प्रवेश करती है। असहयोग आंदोलन का उद्देश्य उपनिवेशवाद का चोला उतार फेंकना था। गांधी जी का मानना था कि असहयोग आंदोलन से वह एक वर्ष के अंदर स्वाधीनता प्राप्त कर सकेंगे। उनका विश्वास था कि असहयोग आंदोलन को खिलाफत आंदोलन के साथ मिला देने से दोनों समुदायों के संयोजन से औपनिवेशिक शासन की जड़ हिला दी जाएगी। महात्मा गांधी के आवाहन पर विद्यार्थियों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई जाने वाले स्कूल एवं कॉलेज से पढ़ाई छोड़ दिया श्रमिकों द्वारा अनिश्चितकालीन हड़ताल की घोषणा किया गया वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार कर दिया। जगह-जगह के किसान कृषि कर देने से मना कर दिया। कुछ जनजाति के लोगों ने वन्य कानून मानने से इनकार कर दिया। जिससे आंदोलन में भारी जन भागीदारी संभव हो सकी। परंतु चौरी चौरा कांड 4 फरवरी 1922 की घटना से व्यथित होकर गांधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। उनका मानना था कि साध्य एवं साधन की पवित्रता आंदोलन को दीर्घ जीवी बनता है। कई कांग्रेसी एवं राष्ट्रीय नेता गांधी जी के इस निर्णय से असंतुष्ट थे। जिसमें प्रमुख नेता सुभाष चंद्र बोस, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय आदि ने असहयोग आंदोलन के स्थगन का विरोध किया।

असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका-

असहयोग आंदोलन के संबंध में गांधी जी स्वयं आगरा क्षेत्र आये थे। महात्मा गांधी का ऐतिहासिक भाषण आगरा में 23 नवंबर सन् 1920 में हुआ। वे आगरा के बेलनगंज में गिरधर लाल वकील के आवास पर रुके थे। यह भाषाण मौलाना अबुल कलम अज़ाद की अध्यक्षता में हुआ था तथा उसी दिन गांधी जी ने आगरा के विद्यार्थीयों को भी संबोधित किया। जिसका आगरा क्षेत्र के लोगों पर गहरा प्रभाव पाड़ा। एक बड़ा जुलूस आगरा शहर घूम कर कचेहरी तक जा धमका जहां एक बड़ी सभा का आयोजन किया गया। जहां गांधी जी द्वारा विदेशी वास्तु के बहीश्कार का निर्णय लिया गया तथा शराब बंदी का भी निर्णय इसी सभा में संपन्न हुआ। विद्यार्थीयों ने स्कूल कॉलेज छोड़ दिये। लोगों द्वारा नौकरीयों तथा अदलतों के बहिश्कार किया गया। आगरा जिला कांग्रेस कमिटी का अध्यक्ष डॉक्टर लक्ष्मी दत्त को चुना गया। शांति स्वरूप श्रीवतास्तव, याकूबी अली खान, प्रयाग नारायण, नीलम साहब आदि लोगों ने ईस सभा में भाषण दिये। तथा राष्ट्रीय आंदोलन में तन मन धन से भाग लेने का संकल्प लिया। जनपद के अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। जिसमें चंद्रभान, जसपतराय कपूर, हिरा सिंह, राम सिंह चौहान, काली चरण तिवारी, ठाकुर महाराज सिंह, जय गोपाल दद्दू सिंह आदि, गांधी जी के आगमन से आगरा क्षेत्र में अतिरिक्त ऊर्जा का संचार हुआ। उस दौरान प्रिंस आप बेल्स के आगरा आगमन पर जमकर प्रदर्शन एंव नो वेलकम के नरे लगे थे।

निष्कर्ष-

यह निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के लोगों का योगदान भारत के अन्य क्षेत्र की तरह उत्साह पूर्वक रहा। जो राष्ट्र को बल प्रदान करने वाली रही। जिसमें विद्यार्थियों ने अंग्रेजी विद्यालयों को छोड़ दिया, सरकारी कर्मचारियों ने नौकरिया छोड़ दी जिसमें शिक्षक, पुलिस, न्यायालय आदि के कर्मचारी थे। प्रिंस साहब बेल्स का तीव्र विरोध हुआ नो वेलकम के नारे लगे थे। अतः यह कहा जा सकता है कि असहयोग आंदोलन में आगरा क्षेत्र के लोगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. हमारे राष्ट्रपिता- गोपाल प्रसाद व्यास

2. संवैधानिक विकास तथा स्वाधीनता संघर्ष -सुभाष कश्यप
3. भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास - आर सी अग्रवाल
4. भारत का मुक्ति संग्राम -अयोध्या सिंह
5. हिस्ट्री आपकी नेशनल कांग्रेस- पट्टाभी सीतारमैया
6. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष- बिपिन चंद्र
7. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आगरा का योगदान- मनोहर लाल शर्मा

Mob.no.8448063565
Email.Harshrajdeva@gmail.com
Email.Skrishana51@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 147-150
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आषाढ़ का एक दिन : एक पुनः पाठ

चार्ल्स जे. जी
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
केरल विश्वविद्यालय

मोहन राकेश प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। साहित्य की सभी विधाओं में आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया ।लेकिन नाटक के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा अधिक मुखरित हुई है।आपने हिंदी नाटक को एक नई दिशा प्रधान की। 'आषाढ़ का एक दिन ', ' लहरों के राजहंस ', ' आधे अधूरे ', ' पैर तले की ज़मीन ' 'अंडे के छिलके ' और अन्य एकांकी आदि उनकी चर्चित नाट्य रचनाएं हैं।

कहानी सार : ' आषाढ़ का एक दिन ' मोहन राकेश की अतुल्य नाटक रचना है जो विश्व कवि कालिदास के जीवन की कुछ घटनाओं को लेकर प्रतिपादित है।नाटक में इतिहास कम और कल्पना अधिक है।

नाटक का प्रारंभ हिमालय की तराइयों की ग्रामीण वातावरण में होता है। आषाढ़ का महीना। दिन भी रात के समान अंधकारमय होता है।आकाश भर काली घटाएं, घनघोर वर्षा, बिजली, मेघ गर्जन होती ही रहती है।

गांव का एक साधारण सा घर ।घर की दीवारें लकड़ियों से बनी है ।अंबिका धान फटक रही है।विधवा बीमार नारी अपने इकलौती पुत्री के आने की प्रतीक्षा में हैं

गोधूलि संध्या होने पर भी इकलौती सयानी पुत्री के न लौट आने पर अंबिका दुखी है। अंबिका की शंका है कि पुत्री कालिदास के साथ इस बरसात में विलास कर रही होगी ।अचानक बरसात में भीगी मल्लिका घर के अंतर प्रवेश पाती है ।भीगी नजरों से अंबिका अपनी बेटी से गीले वस्त्र बदलकर गरम दूध पीने का आदेश देती है ।माता – पुत्रि के बीच में बाद विवाद होती है ।माता कहती है तुम्हारे लिए वर ढूंढने वाले सब हार गए ।सभी कहता है कि तुम्हारा कालिदास के प्रति प्रेम है। मल्लिका मां से कहती है " मैने एक भावना का वरण किया है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है,कोमल है अनश्वर है।" पर अपनी पुत्री की भावन का शक्ति समझने की शक्ति अंबिका में नहीं थी। इसीलिए कालिदास के साथ अपने पुत्री के संबंध को वह घृणा के साथ देखती है ।क्योंकि कालिदास माता पिता विहीन रिश्तेदार मादुल के साथ जीवन यापन करता यतीम है।अपनी बेटी का भविष्य नरक तुल्य हो जाएगा। पर मल्लिका की विश्वास था कि कालिदास का भविष्य सुवर्ण लिपियों से लिखा जाएगा।मल्लिका का कालिदास के प्रति प्रेम निस्वार्थ है।वह प्रेम करना ही चाहती है, प्रतिदान नहीं चाहती।मल्लिका भावुक प्रेमिका थी।

सारी उज्जयिनी में कालिदास के ऋतुसंहार की कीर्ति फैल रही है। गुप्त सम्राट कालिदास को राजदरबार से श्रेष्ठ पंडित वररुचि को ढूंढ लाने के लिए गांव गाँव भेजता है। उनके साथ कुछ राज्य कर्मचारी भी थे। गाँव में हरिणों

का वध, आखेट राज्यों की ओर से रोका था। पर राज्य कर्मचारियों में से एक ने एक हिरण पर बाण मारा। कालिदास आहत हरिभावक को लेकर मल्लिया के यहाँ आता है और असे दूध पिलाना चाहता है। अंबिका कालिदास से बुरे व्यवहार करती है। वहाँ पर राज्य कर्मचारी दत्तूल से वाद – प्रतिवाद होती है। कालिदास को पहचानकर दत्तूल माफी माँगता है। कालिशस आचार्य वरुचि के साथ राजधानी नहीं जान चाहता। मल्लिका अ यूपने गाँव को छोड़कर किसी राजकीय भोग में खोना वह नहीं चाहता। विलोम एक ऐसा पात्र है जो मल्लिका से प्यार करता है। वह किसी भी मान में मल्लिका को अपनाना चाहता है और कालिदास से घोर विरोध करता है। अंबिका के रिश्तेदार होने के कारण कभी-कभी उसके घर में आकर अंबिका को कालिशस के विरुद्धध करता है।

कालिदास के रिश्तेदारों और दोस्तों से मल्लिका को पता चलता है कि कालिदास उज्जयिनी नहीं जाना चाहता। मल्लिका कालिदास के उज्वल भविष्य के लिए मर मिटने वाली है। कालिदास को राजकवि बनाने के लिए वह अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए तैयार है। वह स्वयं जगदंबा के मंदिर जाकर कालिदास से मिलती है। उससे अनुनय विनय करता है कि वह उज्जयिनी जाए और राजकवि का स्थान ग्रहण करें। अल्लिका की बार-बार की प्रेरणा से केलिदास उज्जयिनी जाता है।

उज्जयिनी गुप्त साम्राज्य थी। राजधानी-सभी प्रकार की विलासिताओं की रंगभूमि है। कालिदास भी वहाँ की विलासिता में डूब गया। मल्लिका अपने गाँव से उज्जयिनी जानेवाले व्यवसावित्यों से कालिदास की रचनाएँ मांगकर रखती।उज्जयिनी के कुछ यात्रियों से ग्राम पुरुष निश्रेय को पता चला कि कालिदास गुप्त साम्रज्य की महा विदुषी प्रिर्थना मंजारी से शादी की है। अब कालिदास मातृगुप्त के नाम से काशमीर का शासक बन गया है। मल्लिका को भी इसकी सूचना मिली थी। वह इस बात पर विश्वास नहीं करती। वह उन बातों को झूठा अपवाद कहकर टाल देती है। कालिदास एक-दो बार गाँव से होकर गया था पर मल्लिका की झोंपडी की ओर मुड़े नहीं।

अंबिका की मृत्यु के बाद मल्लिका अकेली रह जाती है। वह जिस विलोम के साथ जीवन भर घृणा करती रही उसके साथ रहने के लिए बाध्य हुई। जीवन यापन के लिए उसे वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ी। इसी बीच एक बच्ची को जन्म देकर उस भार को भी अपना लेना पड़ा।

अंत में काशमीर छोड़ कर कालिदास को पलायन करना पड़ा।आधी रात को वह मल्लिका की झोंपड़ी का द्वार खोलकर अंदर प्रवेश पाता है। कालिदास फिर से मल्लिका के साथ नयी जिन्दगी शुरू करना चाहता है। बातचीत के बीच बच्ची के रोने की आवाज़ सुनकर वह लौट जाता है। मलिनका अपनी बच्ची को छाती से लगाकर देखती रह जाती है।

नागकरण की सार्थता: नाटक का नामकरण नाटक का अनुकूल सिद्ध होता है। इस नाटक के प्रारंभ का वातावरण और अंत का मौसम समान रूप का है। प्रारंभ में आषाढ़ के महीने का चित्रण है जहाँ घनघोर वर्षा, बिजली, मेघगर्जन' आदि से भरा पूरा वातावरण है। वर्षा में भीगी हुई नायिका का प्रवेश यहाँ ही होती है।अंत में इसी मौसम में कालिदास काशमीर से पलायन कर क्षत-विक्षत अवस्था में मल्लिका के यहां पहुंचता है।

इस नाटक में मोहन राकेश की प्रतिभा प्रकृति की मनोहारिता के चित्रण में अनुभव करने योग्य है। एक सफल चित्रकार के समान हिमालय की तराइयों की ग्रामीण प्रकृति को खींचकर रहा है। वहां के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ, यहाँ तक कि पत्थर और गीली मिट्टी तक उनकी तूलिका से बची नहीं। नाटक की अधिकांश घटनाएँ गाँव से होकर घटी है। इसलिए अमर कलाकार ने प्रकृतिचित्रण में कोई कंजूसी नहीं दिखाई। कहीं-कहीं पात्र और प्रकृति हमारे सामने से गुजर रहे हैं। ऐसे बिंबानुभव अपूर्व और विरले ही साहित्य रचनाओं में मिलते हैं। कुल मिलाकर नाटकीय तत्वों के अनुसार मूल्यांकन करें तो आषाढ़ का एक दिन 'एक सफल नाटक है।

ऐतिहासिक वातावरण

यह वह ज़माना था जहां हिन्दू धर्म में अंधविश्वास, अन्याय, मूत्तिपूजा, बलि, सती संप्रदाय आदि से ऊबकर जनता भारी मात्रा में बौद्ध धर्म के अनुयायी बन चुके थे । बौद्ध धर्म का पहला मंत्र अहिंसा थी। अधिकाँश जनता शांति चाहते थे। यह शांति गुप्त साम्राज्य की प्रगति का कारण था। इसी कारण गुप्त शासन काल को भारत का सुवर्णकाल मानते हैं। इस काल में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था | उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए दुनिया के कोने कोने से छात्र आते थे। नालंदा, तक्षशिला , वाराणसी, विक्रमशिला मिथिला, नागार्जुन कोण्डा आदि इनमें मुख्य विश्व विद्यालय थे । इन विश्व प्रसिद्ध विश्व विद्यालयों से के अंतर्गत अनेक शिक्षा केंद्र थे। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार था। यहाँ से दीक्षा प्राप्त करने वाले छात्र बौद्ध धर्मावलंबी बनकर बौध धर्म का प्रचार करते थे।

नाटक में रंगिनी, संगिनी शोध-छात्र ये जो कालिदास जैसी प्रतिभा के गाँव के बारे में शोध करने आयी थी। इससे पता चलता है कि उन दिनों विश्वविद्यालयों में शोध का अवसर था। नाटक में ग्रामीण भाषा शैली के साथ-साथ शहरी शैली भी प्रयुक्त हुई है जो विदुषी प्रियंगुमंजरी की बातचीत में प्रकट है।

चरित्र चित्रण :

आषाढ़ का एक दिन वास्तव में चरित्र प्रधान नाटक है। विश्व कवि कालिदास के जीवन से संबंधित होने पर भी इस नाटक में नायक पात्र कालिदास नहीं। नाटक में नायक नहीं' नायिका है। मल्लिका के उदात्त चरित्र के सामने विश्व कवि का चरित्र नगण्य, हेय, तुच्छ, निस्सार बन गया है। यह घिनौना पात्र स्वार्थी, अधिकार प्रेमी, वारांगनाओं पर भ्रमित आसक्त फिर भी प्रकृति प्रेमी, साहित्य पर रुचि रखनेवाला है। ऋतुसंहार, मेघदूत, कुमारसंभव, अभिज्ञान -शाकुंतलम् जैसी अनश्वर ग्रंथों के रचयिता होने पर भी उनके पात्रों से इस व्यक्ति का कोई संबंध नहीं । अंतिम भेंट में कालिदास मल्लिका से कहता है – " कुमार संभव के तपस्विनी उमा, मेघदूत की विरहिणी यक्षिणी, अभिज्ञान-शाकुंतलम की शकुंतला तुम्ही थी।" पर कालिदास के चरित्र से ऐसा साबित नहीं होता। राजकवि बनकर अज्जयिनी जाने के बाद एक-दो बार कालिदास अपने गांव से होकर पहाड़ों पर चले थे। पर एक बार भी उसकी मुलाकात मल्लिका से नहीं हुई थी। अंबिका की मृत्यु के बाद भी कालिदास उस झोपडी पर पधारा नहीं। जब कालिदास राजकवि बनने और उज्जयिनी जाने से साफ इनकार करता है और आचार्य वररुचि से मिलने से विमुखता प्रकट करता तो मल्लिका अनुनय विनय करके उसे अधार्थ के साथ उज्जयिनी भेजती है। मल्लिका का निस्वार्थ त्याग ही, कालिदास के उत्कर्ष का कारण था। पर स्वार्थ ने अंधा बनाया। अंत में यह स्वार्थ पूर्ण रूप से यह सिद्धध होता है जब कालिदास कास्मीर छोड़कर पलायन करता है और मल्लिका की झोंपडी पहुँचता है। वह मल्लिका से नई जिन्दगी जीने की अभिलाषा प्रकट करता है। पर बच्ची की रोने की आवाज सुनकर मल्लिका से यात्रानुमति तक न लेकर विद्रा होता है।

मल्लिका नाटक की नायिका है। एक नारी को उदात्त गुणों से संपन्न यह नायिका अपने आपको खोकर कालिदास को कालिदास बना दिया | कालिदास की उन्नति के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया । नाटक के प्रारंभ में एक तितली के समान उड़ती, घुमती यह सुंदर लड़की कालिदास की प्रेमिका है। गरीब अंबिका की यह पुत्री अनाथ कालिदास की प्रेरणा थी। कालिदास, के उत्कर्ष के हर पल में मल्लिका साथ थी। जब मॉ उसकी शादी के लिए वर हूँढती है तो माँ के सामने वह कह उठती है-" मैं ने भावना के में एक भावना का वरण किया है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है और अनवर है।" लेकिन बेचारी अंबिका यह नहीं समझ सकती कि 'भावना में भावना का वरण करना क्या होता है। कालिदास के साथ पुत्री का व्यवहार अंबिका पसंद नहीं करती। उसे बार-बार उपदेश, ताड़ना देती रही । पर वह कालिदास के साथ घूमनी- फिरती बरसात में भीगी रही। मल्लिका का निस्वार्थ चरित्र तब साबित होता ै जब कालिदास राजकवि बनने उज्जयिनी जाने से विमुखता प्रकट करता है। मातुल और दत्तूल मल्लिका से मिलते हैं।

वे जानते थे कि मल्लिका ही एकमात्र पत्र है जो कालिदास को उज्जयिनी भेज सकती है । अब मल्लिका जगदंबा के मंदिर जाकर कालिदास से मिलती है। वह अनुनय विनय करके आचार्य वररुचि के साथ कालिदास को उज्जयिनी भेजती है। इस समय अगर वह चाहती तो, उसके मन में लेवा-मात्र स्वार्थ का स्थान रहा तो वह, कभी कालिदास को उज्जयिनी जाने की प्रेरणा नहीं देती ।वह जानती थी कि इस छोटे से गाँव में रहकर कालिदास की प्रतिभा विकसित नहीं होगी। वह कालिदास का उत्कर्ष चाहती थी।

मल्लिका स्वाभिमानी थी। राजकवि बनने के बाद एक-दो बार कालिदास गाँव से होकर गये थे। मल्लिका उससे जा मिलने के लिए तैयार नहीं हुई। जब प्रियंगुमंजरी उसके पास आकर घर का परिष्कार करने तथा उसकी शादी करवाने की प्रस्ताव करती है तो वह व्यंग्य के साथ उसे टालती है। वास्तव में प्रियंगुमंजरी के साथ कालिदास की ज़िन्दगी मल्लिका की दान थी। किसी भी माने में वह अपने आत्माभिमान को बलि देना नहीं चाहती।

नाटक के प्रारंभ में सरल, निष्कलंक प्रेमिका की चंचलता दिखाती मल्लिका अंत में विलकुल बरबाद हो जाती है। अंबिका की मृत्यु के बाद उसकी ज़िन्दगी नष्ट-भ्रष्ट, छिन्न-भिन्न हो जाती है। इस दुनिया में वह जिससे अत्यधिक घृणा करती है वही विलोम के साथ रहने के लिए वह बाध्य हो जाती है। विक्शताओं के बीच भी वह कालिदास •का स्मरण करती रहती है। गाँव से होकर उज्जयिनी जानेवाले व्यवसायियों की सहायता से नह कालिदास की रचनाओं को मंगवाकर रखती है। अब भी वह विश्वास करती है कालिदास ज़रूर लौट आयेगा। उस समय नयी रचना की तैयारी के लिए भोजपत्र भी तैयार कर रखी है। जब कालियस लौट आता है तो आवेश के साथ उसे दिखाती है। उन कोरे कागज़ों के पन्नों पर वर्षा की बूंदों के धब्बे थे। कालिदास को ऐसा लगा – वास्तव में ये वर्षा की बूंदें नहीं, तुम्हारी आँखों की आँसूओं ने इस पर बहुत कुछ लिखा है, अब ये कोरे कैसे है? मल्लिका की पीड़ा का इससे ज्यादा उदाहरण कहाँ मिलेगा ! पाठकों के नयनों को भिगोये बिना आगे नहीं बढ़ती । मल्लिका को जीवन यापन के लिए वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ी। अभाव के बीच एक बच्ची को जन्म दिया।

वही आषाढ़ का महीना। घनघोर वर्षा। बिजली, मेघ गर्जन निरंतर होती रहती है। आधी रात को श्रत-विक्षत कालिदास मल्लिका की झोंपड़ी के द्वार खोलकर प्रवेप्रवेश करता है।

विधि की विडंबना ने मल्लिका को वारांगना बना दिया था। इसलिए उस झोपडी के अंदर प्रवेश पाने के लिए किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी। इस अंतिम क्षण में भी मल्लिका पर थोड़ी आशा बची थी। पर बातचीत के बीच बच्ची के रोने की आवाज़ सुनकर मल्लिका पालने की ओर चलती है तो कालिदास यथार्थ को पहचान कर चुपचाप वहाँ से निकल जाता है। एक क्षण वह बच्ची को छाती से लगाकर बाहर जाना चाहती है दूसरे क्षण बच्ची की आवाज कर्तव्य भावना की ओर लौटा देती है। इस प्रकार मल्लिका नाटक के अंत में नष्ट-भ्रष्ट, सर्वनाश का साक्षी बनकर रह जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश , राजपाल पब्लिशिंग , 1997
2. हिंदी नाटक और रंगमंच, रोहित मंगलिक , एडिगोरिला पब्लिकेशन, 2024

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 151-154
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय से जुड़े तत्वों का विश्लेषण

डॉ. सारंग तनय
पीएच.डी., राजनीति विज्ञान,
भूपेन्द्र ना. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा(बिहार)।

सार :
इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि बिहार बहुत ही लंबे समय से राजनीति के केंद्र बिन्दु में रहा है। इसे इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि पिछले सात दशकों में भारत में जो महत्त्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव हुए हैं, बिहार की धरती उसकी जननी रही है। 1990 के दशक में बिहार न केवल मंडल समर्थक और मंडल विरोधी आंदोलन के केंद्र में था, 1975 में वह आपातकाल विरोधी आंदोलन का भी केंद्र रहा जो 'जेपी आंदोलन' के नाम से जाना जाता है और जिसका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण ने किया था जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने देश में आपातकाल लागू कर दिया था। यह बताना जरूरी है कि ब्रिटिश शासन के दौरान भी बिहार ने राजनीतिक बदलाव लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हमारे इतिहास की पुस्तकों में चम्पारण सत्याग्रह जिसे 'चंपारण आंदोलन' के नाम से जाना जाता है, नील की खेती करने वाले किसानों के शोषण के खिलाफ यह आंदोलन महात्मा गांधी ने 1917 में बिहार के चंपारण से शुरू किया जो कि बिहार के उत्तर-पूर्व में स्थित एक जिला है।

विस्तार :

मंडल-दौर के बाद देश के उत्तरी राज्यों में जिस तरह की राजनीतिक लड़ाई और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की शुरुआत हुई उसकी गहरी जड़ें बिहार में ही थीं।

देश के अन्य राज्यों की तरह ही, अतीत में बिहार की राजनीति में मुख्यतः कॉंग्रेस का दबदबा रहा है। बिहार में कई दशकों तक कॉंग्रेस का निर्बाध शासन रहा और यह 1990 तक जारी रहा। इस बीच सिर्फ पांच बार जब राज्य में कुछ समय के लिए गैर-कॉंग्रेसी शासन रहा। पर मंडल आंदोलन के बाद की स्थिति ने राज्य की राजनीति की दिशा और दशा बदल दी चुनावी राजनीति और राजनीतिक प्रतिनिधित्व अब पहले जैसे नहीं रहे। इस दौर में क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का उदय हुआ और व्यापक जनाधार वाले क्षेत्रीय नेता भी सामने आए, विशेषकर समाज के निचले तबके, जैसे अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी), दलित, आदिवासी (अविभाजित बिहार में) और मुस्लिमों में। "मंडलोत्तर राजनीति ने राज्य में कॉंग्रेस के अवसान की शुरुआत कर दी। राज्य में मंडल आंदोलन के बाद पहला विधानसभा चुनाव 1995 में हुआ और उसके बाद से राज्य में कॉंग्रेस का जनाधार निरंतर गिरा है, चुनाव दर चुनाव, और आज 140 साल से ज्यादा पुरानी इस पार्टी का राज्य में राजनीतिक वजूद नगण्य हो गया है।"[1]

बिहार में मंडलोत्तर राजनीति की शुरुआत 1990 के दशक में राष्ट्रीय पार्टी के रूप में स्थापित कॉंग्रेस बनाम नवोदित पार्टी से हुई और यह नवोदित पार्टी थी जनता दल (जद)। पर "आज यह राजनीतिक लड़ाई इसी जनता दल के दो फाड़ हुए धड़ों, राष्ट्रीय जनता दल (राजद) और जनता दल यूनाइटेड (जदयू) जैसी दो प्रभावशाली क्षेत्रीय

राजनीतिक पार्टियों के बीच सिमट गई है जबकि दो राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियां, काँग्रेस और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) दोनों ही क्षेत्रीय दलों की सहयोगियों के रूप में सहायक की भूमिका में हैं।"[2]

हालांकि, कभी कभार राजद के साथ गठबंधन करने वाली काँग्रेस भी राज्य में कुछ चुनाव अपने दम पर लड़ी है। भाजपा और नीतीश कुमार के नेतृत्व में जदयू ने लोकसभा चुनावों के बाद राज्य में टिकाऊ गठबंधन करने में कामयाब रहे। अन्य क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियां जैसे राम विलास पासवान के नेतृत्व वाली लोक जन शक्ति पार्टी (लोजपा), वामपंथी पार्टियां जैसे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) (भाकपा माले) और कुछ अन्य छोटी क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों ने पिछले तीन दशक की चुनावी राजनीति में अपना योगदान दिया है। ये छोटी क्षेत्रीय पार्टियां सामान्यतया मामूली भूमिका अदा करती हैं, पर कई बार राज्य की चुनावी राजनीति में इन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं भी निभाई हैं।

अप्रैल 2005 में हुए विधानसभा चुनावों में किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला और लोजपा द्वारा ज्यादा सीटें जीतने वाली किसी बड़ी पार्टी को समर्थन नहीं देने की वजह से राज्य में अक्तूबर-नवंबर 2005 में दुबारा चुनाव हुआ। इस बार राज्य में सत्ता बदल गई। भाजपा से गठजोड़ कर दूसरी बार नीतीश कुमार बिहार के मुख्यमंत्री बने। "मंडलोत्तर राजनीति के तीन दशक की इस अवधि के दौरान बिहार की राजनीति में कई तरह के उतार-चढ़ाव आए हैं।"[3] इस कड़ी में एक उतार-चढ़ाव जुलाई 2017 में उस समय आया जब नीतीश कुमार ने राजद के साथ महागठबंधन को तोड़ दिया और सरकार से इस्तीफा दे दिया पर 24 घंटे के अंदर ही भाजपा से आंतरिक गठजोड़ कर पुनः मुख्यमंत्री के रूप में सत्ता पर काबिज हो गए। यहाँ यह गौर करना जरूरी है कि नीतीश कुमार ने 2015 का चुनाव राजद और कॉंग्रेस के साथ मिलकर लड़ा था जो कि अपने आप में एक असामान्य गठबंधन था। बिहार की राजनीति के दो धुर विरोधी, नीतीश कुमार और लालू प्रसाद साथ आए और जदयू के तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष स्व. शरद यादव सहयोग से 'महागठबंधन' बनाया। उनका एकमात्र उद्देश्य बिहार में भाजपा को चुनाव जीतने से रोकना था। यह महागठबंधन 2015 का विधानसभा चुनाव जीतने में सफल रहा और उसने भाजपा और उसकी सहयोगी पार्टी लोजपा एवं राष्ट्रीय लोक समता पार्टी (आरएलएसपी) को हराकर राज्य में सरकार का गठन किया पर यह सरकार अल्पजीवी साबित हुई। नीतीश कुमार ने उपमुख्यमंत्री तेजस्वी यादव व राजद के अन्य नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोपों और उनके खिलाफ सीबीआई के लगातार छापे पड़ने के कारण महागठबंधन से नाता तोड़ लिया। नीतीश कुमार ने मीडिया/प्रेस के सामने भ्रष्टाचार के प्रति कोई हमदर्दी नहीं दिखाने का दिखावा किया, पर वे अंततः उसी पार्टी के समर्थन के साथ सरकार में वापस आए जिस पर उन्होंने 2015 के विधानसभा चुनाव के दौरान सांप्रदायिक होने का आरोप लगाया था। अगर चुनाव से पहले लालू प्रसाद और कॉंग्रेस के साथ मिलकर नीतीश कुमार का 'महागठबंधन बनाना लोगों को अस्वाभाविक लगा था तो उसी भाजपा के साथ मिलकर उनका सरकार बनाना भी लोगों को अजीब लगा जिसके खिलाफ विधानसभा चुनाव में उन्होंने बिहार की जनता का अपार समर्थन हासिल किया था।

किसी भी राज्य की राजनीति उसके समाज और उसकी अर्थव्यवस्था के बीच संबंधों की देन होती है। बिहार के सामाजिक और आर्थिक इतिहास की समझ पिछले कई दशकों में इसकी चुनावी राजनीति की बदलती प्रकृति को समझने में मदद करेगी। "जब बिहार अविभाजित था और झारखंड भी इसका हिस्सा था, उस समय राज्य मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में विभाजित था, उत्तरी बिहार, मध्य बिहार और दक्षिण बिहार। बिहार से झारखंड के अलग होने के बाद समाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भिन्नताओं के आधार पर राज्य का एक नया भौगोलिक वर्गीकरण किया गया।"[4] यद्यपि यह वर्गीकरण मूलतः सांस्कृतिक है, इनका प्रयोग राजनीतिक अनुस्थापनों के अध्ययन के लिए भी होता है। हर क्षेत्र अपनी विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के अनूठे सम्मिश्रण को प्रदर्शित करता है और इनकी भाषा और बातचीत का लहजा एक-दूसरे से अलग है।

बिहार की राजनीति में 'जाति' एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। किसी जमाने में ऊंची जातियों की वर्चस्व वाली राजनीतिक संरचना के लिए जाने वाले बिहार में मंडलोत्तर राजनीति ने प्रभावशाली मध्य जातियों जैसे आम तौर पर ओबीसी और विशेषकर यादवों को बिहार की राजनीति के केंद्र बिंदु में ला दिया। बिहार के मतदाताओं में यादवों और मुसलमानों की संख्या काफी अधिक है। कटिहार, दरभंगा, पूर्णिया, सीवान और कुछ अन्य जिलों में मुसलमानों की अच्छी खासी उपस्थिति का परिणाम यह निकला है कि राजनीतिक पार्टियां मुसलमानों को वोट बैंक की तरह देखने को मजबूर हुई हैं। कुछ राजनीतिक पार्टियां मुस्लिमों को वोट बैंक समझकर ही लामबंदी करती हैं।

भारतीय चुनावी इतिहास में इस अवधि को कॉग्रेस काल कहा जाता है, इसके बावजूद कि इसकी निरंतरता में संक्षिप्त व्यवधान उपस्थित हुए। देश में पहली बार बिहार सहित कई राज्यों में गैर-काँग्रेसी सरकार की स्थापना हुई। आजादी के बाद के बिहार के राजनीतिक इतिहास पर नजर दौड़ाने से इसके तीन भिन्न चरणों का पता चलता है। इसका पहला चरण (1947-1967) काँग्रेस के वर्चस्व का काल है जब ऊंची जातियाँ इसकी सत्ता संरचना के शीर्ष पर बैठी दिखती हैं। दूसरा चरण (1967-1990) को संक्रमण काल कहा जा सकता है – ''जब राजनीतिक क्षेत्र में काँग्रेस के साथ-साथ ऊंची जातियों के प्रभुत्व में आ रही क्रमशः गिरावट और इसके साथ ही मध्य जातियों के धीमे किन्तु निरंतर उभरते प्रभाव को देखा जा सकता है। तीसरा चरण (1990 और उसके बाद) प्रथम चरण का पूर्ण विपर्यय है जिसमें काँग्रेस पार्टी और ऊंची जातियाँ राज्य की राजनीति में हाशिये पर चली जाती हैं।''[5]

1990 का दशक बिहार सहित कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों के राजनीतिक प्रभुत्व की शुरुआत का है। 1989 के लोकसभा चुनावों में जीत के बाद केंद्र में वीपी सिंह के प्रधानमंत्री बनने के बाद बिहार में ओबीसी राजनीति की शुरुआत का संकेत भी यह देता है। वीपी सिंह के प्रधानमंत्री बनने के बाद राज्य में पहला विधानसभा चुनाव 1990 में हुआ। 1990 के विधानसभा चुनावों के बाद राज्य में काफी दिनों बाद गैर-काँग्रेसी सरकार का गठन हुआ और लालू प्रसाद यादव प्रथम बार राज्य के मुख्यमंत्री बने। जनता दल की इस जीत ने बिहार में काँग्रेस के लंबे शासन का अंत कर दिया। 1990 के विधानसभा चुनावों में हारने के बाद काँग्रेस के हाथ से न केवल बिहार की सत्ता गई, बल्कि इस पराजय ने काँग्रेस के व्यवस्थित पराभव की शुरुआत भी कर दी। 1995 के विधानसभा चुनावों ने लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में राजद के प्रभुत्व को और ज्यादा स्थापित कर दिया और बहुतों की अपेक्षाओं के विपरीत पार्टी ने अपने दम पर पूर्ण बहुमत हासिल किया। राज्य में भाजपा के समर्थन का सीमित आधार, काँग्रेस के निरंतर घटते जनाधार और नीतीश कुमार की जनता दल से विदाई के बाद लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में जनता दल ने 1995 के विधानसभा चुनावों में भारी बहुमत से विजय हासिल की।

नीतीश कुमार ने जनता दल से नाता तोड़कर अलग समता पार्टी का गठन किया। मंडलोत्तर काल में हुआ यह पहला चुनाव था जिसमें चुनावी लड़ाई में मुख्यतः ओबीसी ही ओबीसी के खिलाफ थे। शेष जाति के मतदाताओं के व्यवहार के बारे में किसी व्यापक सूक्ष्म सिद्धान्त के प्रतिपादन की अनदेखी की गई है ताकि मतदान के तरीकों की जन चेतना और इसकी क्षणिकता को किसी तरह के दर्जे में फिट होने का मामला न बनाया जाए। उदाहरण के लिए, यह आम तौर पर माना जाता है कि - "मुस्लिम राजद के प्रबल समर्थक रहे हैं, 1995 और 2005 के बीच हुए चुनावों में राज्य में राजद और मुस्लिम मतदाताओं के बीच संबंधों में भी बदलाव आया। "[6] अगर 2009 का लोकसभा चुनाव राजद और उसके नेता लालू प्रसाद यादव को बहुत ही शक्तिशाली झटका दिया, तो 2010 के विधानसभा चुनावों ने उन्हें और भी शर्मसार किया। इन चुनावों में उनके लिए मतदान करने वाले लोगों की संख्या में भारी कमी आई और उनको सीट भी काफी कम मिले। कई पर्यवेक्षकों ने तो यहाँ तक कहना शुरू कर दिया था कि मतदाताओं ने लालू प्रसाद यादव के सामाजिक न्याय की राजनीति को अब नकार दिया है और अब उन्होंने नीतीश कुमार के विकास पर आधारित मॉडल में अपना विश्वास जता दिया है।

निष्कर्ष:

पिछले कुछ सालों में बिहार की राजनीति में आए बदलाव का विश्लेषण किया गया है। इसमें लोजपा और रालोसपा के साथ भाजपा के गठबंधन का विश्लेषण किया गया है जिसके कारण भाजपा को 2014 में भारी मतों से विजय मिली और इसी गठबंधन को अगले साल 2015 में हुए विधानसभा चुनावों में मुंह की खानी पड़ी और फिर किस तरह नीतीश कुमार अपने गठबंधन के साथी राजद को बदलकर भाजपा के साथ दुबारा सत्ता में आ गए। 2014 के लोकसभा चुनावों ने जदयू और भाजपा के बीच दशकों से चले आ रहे गठबंधन का अंत कर दिया दूसरा, भाजपा को जो जनादेश मिला वह पिछले कुछ दशकों में राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी पार्टी को मिले जनादेश में सबसे ज्यादा स्पष्ट था और अंत में, बिहार में चुनाव जीतने के लिए जो गठबंधन बना उसमें ऐसे दल शामिल थे जिनका एक साथ आना बड़ी बात थी। नीतीश के साथ अपनी सफल साझेदारी से बाहर निकलते हुए भाजपा ने रामविलास पासवान के लोजपा और उपेंद्र कुशवाहा के रालोसपा से हाथ मिलाया और इस गठबंधन ने बिहार में लोकसभा की 40 में से 31 सीटों पर कब्जा कर लिया। 2014 के लोकसभा चुनावों के परिणाम के बारे में यह कहा गया कि यह जातिवादी गठबंधनों पर विकास की राजनीति की जीत है।

एक अन्य ऐतिहासिक चुनाव बिहार विधानसभा चुनाव 2015 एवं 2020 की। वर्ष 2020 के विधानसभा चुनाव में जदयू-बीजेपी ने मिलकर चुनाव लड़ा, राजद बड़ी पार्टी के रूप में उभड़ी, लेकिन सरकार बनाने में जदयू-बीजेपी सफल रही। वर्ष 2022 के अगस्त महीने में जदयू,बीजेपी से अलग हो गई और राजद के साथ आकर महागठबंधन की सरकार बनाई। यह सरकार मात्र 17 महीने चल सकी, पुनः नीतीश कुमार फिर राजद से अलग होकर बीजेपी के साथ आकर सरकार बना डाली।

यह चुनाव बिहार में भाजपा के विजय रथ को रोकने में कामयाब रहा और बिखर रहे विपक्ष में आशा का संचार किया। महागठबंधन की सफलता के कई कारण थे जिसकी वजह से महागठबंधन भाजपा पर भारी पड़ा। जाति ने एक बार फिर इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वर्ष 2025 बिहार के लिए चुनावी साल है और अक्टूबर-नवंबर 2025 में विधानसभा चुनाव भी होना है। अभी बिहार में जदयू-बीजेपी की सरकार है, राजद विपक्षी पार्टी है, लेकिन सूबे की बड़ी पार्टी है। सभी पार्टी अंदर ही अंदर अपनी तैयारी शुरू कर दी है, पीएम मोदी का भी बिहार दौरा हो गया है।

एक बार फिर आगामी विधानसभा चुनाव-2025 जाति के राजनीति के सहारे समाजिक न्याय को स्थापित करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

सन्दर्भ सूची :

1. आशा कौशिक, नारी सशक्तिकरण एवं स्वार्थ प्वाइंट, पब्लिक सर्च, जयपुर, संस्करण – 2009, पृष्ठ सं. – 45
2. अतुल कोहली, लखित डेमोक्रेसी एंड डिस्कॉम बेटर, इंडिया आज, गोइंग क्राइसिस ऑफ गवर्नमेंट, लिटी, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, संस्करण – 2023, पृष्ठ सं. – 102
3. मधु किश्वर, ऑफ द ब्रिटेन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली, संस्करण - 1999, पृष्ठ सं. – 107
4. निरोध सिन्हा, वूमेन इन इंडियन पॉलिटिक्स, ज्ञान पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, संस्करण – 2003, पृष्ठ सं. – 69
5. अतुल कोहली, द स्ट्रेक्चर ऑफ इंडियाज डेमोक्रेसी, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली, संस्करण - 2008, पृष्ठ सं. – 76
6. विकास और जाति की रणनीति : डॉ ऐ.के. वर्मा, दैनिक जागरण, सम्पादकीय

इमेल : sarangtanay@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 155-160
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोक संस्कृति: अवधारणा, स्वरूप एवं प्रसांगिकता

डॉ. राकेश रंजन
Vill+Post-Tilaiya, PS-Bankey Bazar,
Dist-Gaya, Bihar, 824217

शोध-सार
भारत भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अनोखा देश है। भौगोलिक दृष्टिकोण से देखें तो एक ओर जहां समुद्र की लहरें बलखाती हुई प्राकृतिक दृश्य को सौम्य और अद्भुत करती है, वहीं दूसरी तरफ बर्फ की चादर से ढकी धरती सफेद आसमान से कम नहीं लगती है; एक ओर जहां रेत से बना राजस्थान है, वही दूसरी ओर मेघ से आच्छादित मेघालय है तथा झाड़ अर्थात जंगल से घिरा हुआ झारखंड है। जाहिर है,भौगोलिक विविधता सांस्कृतिक विविधता को जन्म देती है। क्योंकि संस्कृति बहुत हद तक भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करती है। इस प्रकार यहां सांस्कृतिक विविधताएं मौजूद है किंतु यह विविधता इसे संपूर्णता में तब्दील करती है। संस्कृति समय-समय पर परिवर्तित होती रही है, किंतु वह अपने मूल रूप से छीन नहीं हो पाती है, संस्कृति न तो मरती है और नहीं मिटती है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता लोक संस्कृति है। यह प्रत्येक जनमानस के लोक चेतना में व्याप्त है। लोक- संस्कृति ने दान स्वरूप भारतीय संस्कृति को यदि कुछ दिया है तो वह आत्मीयता है।
भारत में वैदिक युग से ही विभिन्न संस्कृतियों का समागम होता रहा है, जिसका जिक्र रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय में भी किया है। भारतीयों ने विभिन्न देशों में जाकर और विदेशियों ने यहां आकर सांस्कृतिक आदान-प्रदान किया है। इससे हमारी संस्कृति परिवर्तन अवश्य हुई है किंतु विनिष्ट या लुप्त नहीं हुई। यदि शरबत से इसकी तुलना करें तो भारतीय संस्कृति पानी और बाह्य संस्कृति चीनी है जो यहां की संस्कृति में आकर घुल मिलकर पानी के स्वाद को परिवर्तित करती है, किंतु पानी के अस्तित्व को समाप्त नहीं कर पाती। इसका एक महत्वपूर्ण कारण है यहां की लोक संस्कृति जो बाह्य संस्कृति से अलग और अक्षुण्ण रही है।
बीज शब्द- लोक, संस्कृति, सभ्यता, परंपरा, संस्कार, अभिजात्य, आत्मिक, भौतिक, नैसर्गिकता,आदि।
मुख्य लेख

‘लोक संस्कृति’ की चर्चा करने से पूर्व आवश्यकता है कि इसके स्वरूप को समझ लिया जाए। इस संदर्भ में सबसे पहला प्रश्न उठता है कि लोक क्या है?, संस्कृति क्या है?, संस्कृति व सभ्यता में किस प्रकार का संबंध है?, लोक संस्कृति एवं विशिष्ट संस्कृति में क्या अंतर है? तथा लोक संस्कृति का क्या महत्व और विशेषताएं हैं? और अंतिम प्रश्न

कि यह लोक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है? इन सभी नानाविध प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ना ही इस शोध-आलेख का उदेश्य है।

आधुनिक समय में 'लोक' को अंग्रेजी के फॉक (folk) शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है- जन सामान्य। अर्थात् 'लोक' को सर्व-साधारण जनता के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। लोक के इस अर्थ को लेकर अधिकांश लोग सिर्फ ग्रामीण लोग के अर्थ में प्रयोग करते हैं। किंतु 'लोक' के विराट भाव को ग्राम या नगर के संकुचित सीमा में बांधा नहीं जा सकता है। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि लोक ग्राम तथा नगर दोनों में विद्यमान है। 'लोक' की प्रवृत्ति,अस्मिता या पहचान हमेशा बनी रहती है। यह सही है कि स्थान विशेष के अनुसार लोक अपने मात्रात्मक गुणों में कम या ज्यादा हो सकता है पर विद्यमान सभी जगह होता है। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि- "लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्याहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि-संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समुचित विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यकता होती है उनको उत्पन्न करते हैं।"1 अतः हजारी प्रसाद द्विवेदी की उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि लोक की उपस्थिति ग्राम के साथ-साथ नगर में मौजूद रहता है। किंतु लोक की स्थिति शहर के लोग से भिन्न है। क्योंकि 'लोक' मानव समुदाय की सरल, सहज एवं बनावटी जीवन शैली से दूर एक सच्ची अनुभूति परंपरा के वाहक का नाम है।

'संस्कृति' अंग्रेजी शब्द कल्चर (calture) का हिंदी रूपांतरण है। संस्कृति शब्द के अर्थों को लेकर विभिन्न विद्वानों में विभिन्न मत हैं क्योंकि इसे किसी एक परिभाषा में बांधना बहुत कठिन है, फिर भी हम 'संस्कृति' को सामान्य रूप से समझने के लिए 'दिनकर' द्वारा गढ़ी गई परिभाषा का संदर्भ ले सकते हैं। उनके अनुसार ''संस्कृति एक ऐसा गुण है जो मानव जीवन के छाया के रूप में मौजूद रहता है। यह मनुष्य के स्वभाव में एक आत्मिक गुण के रूप में मौजूद रहता है, जैसे- फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं बल्कि युग-युगांतर में होता है।''2
संस्कृति की परिभाषा देते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "नाना ऐतिहासिक परंपराओं के भीतर से गुजर कर और भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर संसार के भिन्न-भिन्न समुदायों ने उसे महान मानवीय संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का साक्षात्कार किया है।" 3
डॉ नगेंद्र के अनुसार "संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहां उसके प्राकृतिक राग द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है।"4

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत के अनुसार "संस्कृति को मैं मानवीय पदार्थ समझता हूं जिसमें हमारे जीवन के सूक्ष्मस्थल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे उर्ध्व चेतना शिखर का प्रकाश और समदिक जीवन की मानसिक उपात्काओ की छाया गुम्फित है। उसके भीतर अध्यात्म, नीति से लेकर, धर्म सामाजिक रूढ़ि, रीति तथा व्यवहारों का सौंदर्य भी एक अंतर सामंजस्य ग्रहण कर लेता है। संस्कृति को हमें अपने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर कहना चाहिए।5
पाश्चात्य विद्वान मैथ्यू अर्नाल्ड संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं "किसी समाज और राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियां ही संस्कृति है जिससे राष्ट्र, समाज परिचित होता है।"6

आत: सारी परिभाषाओं को एक फ्रेम में डालकर देखे तो संस्कृति एक ऐसी अवस्था है जो ऐतिहासिक परंपराओं और भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का परिमार्जन करती हुई अपनी

विशिष्ट पहचान बनाती है जिसको विभिन्न लक्षणों से पहचाना जा सकता है और वे लक्षण लोग के ही भीतर निहित होते हैं।

इस प्रकार 'संस्कृति' को ठीक से समझ लेने के पश्चात हमारे लिए 'सभ्यता' को समझना आवश्यक है, क्योंकि दोनों के अंतर को समझे बिना संस्कृति को ठीक से समझा नहीं जा सकता है। सामान्यतः लोग 'सभ्यता' तथा 'संस्कृति' को एक मान बैठते हैं, लेकिन दोनों में सूक्ष्म रूप से अंतर पाया जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "सभ्यता समाज का बाहरी रूप है, वहीं संस्कृति समाज का आंतरिक रूप है। सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधा और असुविधा पर, संस्कृति की भविष्य या अतीत के आदर्श पर; सभ्यता नष्ट हो सकती है, किंतु संस्कृति का विनाश नहीं हो सकता, क्योंकि वह स्थाई होती है।"7

सभ्यता ठाट बात है, संस्कृति हमारे जीने का तरीका है। सभ्यता टूट कर नष्ट हो सकती है किंतु संस्कृति अजर-अमर होती है। सभ्यता एक प्रकार का बाहरी आवरण है वही संस्कृति मानव जीवन के विभिन्न पहलू जैसे उसके विचार-व्यवहार में दिखाई देती है।

सभ्यता और संस्कृति के समाजशास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से देखा जाए तो डॉक्टर जी. के. अग्रवाल का मंतव्य है "संस्कृत का संबंध शिष्टाचार और मस्तिष्क के प्रशिक्षण से हैं, जबकि सभ्यता का अर्थ कला और विज्ञान की विकसित अव्यवस्था से है। समाजशास्त्रीय रूप से सभ्यता और संस्कृति इस अर्थ में भिन्न है कि संस्कृति का संबंध सामाजिक जीवन के विचार आत्मक पक्ष से है, जबकि सभ्यता विशेष रूप से भौतिक पक्ष से संबंधित है।"8 अतः यह कह सकते हैं की संस्कृति एक ऐसा तरीका है जो सदियों से मानव जीवन में घुल मिल गया है। सभ्यता जहां बाह्य सुविधाओं तथा व्यवस्थाओं का नाम है, वही संस्कृति हमारे व्यवहार में दिखाई देती है।

'लोक', 'संस्कृति' एवं 'सभ्यता' की चर्चा के पश्चात् 'लोक संस्कृति' को समझना आसान हो जाता है। हालांकि, लोक संस्कृति को भी एक निश्चित परिभाषा में बांधना कठिन है, फिर भी 'लोक संस्कृति' को समझने के लिए सामान्य परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- 'किसी क्षेत्र-विशेष के लोक जीवन में व्याप्त विचार, धारणाएं, मान्यताएं, परंपरा, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन आदि इन सबके समुच्चय को 'लोक संस्कृति' कहा जा सकता है।'
लोक संस्कृति को लेकर विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं-

लोक संस्कृति के संबंध में विश्वविख्यात रूसी कथाकार और विचारक- चिंतक टॉलस्टॉय ने कहा है 'सामान्य जनता में प्रचलित आस्था, विश्वास, परंपराएं एवं रीति रिवाज समाज की वास्तविक संस्कृति का निर्माण करते हैं', इन्हें लिखने के लिए किसी विश्वामित्र की शरण नहीं लेनी पड़ती है बल्कि व्यक्ति अपने पूर्वजों के मुंह से सुनकर एवं विस्तृत समाज में लोगों को वैसा करते देखकर संस्कृति को ग्रहण करता है।'9

जवाहर सिंह के अनुसार "प्रत्येक आंचल का अपना एक विशिष्ट प्रकार का जनजीवन होता है जिसका निर्माण वहां के निवासियों के रीति-रिवाज सामाजिक नैतिक और धार्मिक विश्वासों तथा सांस्कृतिक परंपराओं से होता है वास्तव में इन्हीं सारे तत्वों के समूह को लोक संस्कृति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।"10

प्रो.बलदेव उपाध्याय के अनुसार "लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों, के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है यह दोनों संहिताओं दो भिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायक है अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का।"11
डॉ शालिग्राम शुक्ला के अनुसार "लोक संस्कृति वास्तव में वह संस्कृति है जो अपनी प्रेरणा जनसाधारण से ग्रहण करती है इसकी जन्मभूमि जानता है और इसके अनुयायी बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर देखे जाते हैं।" 12

इस प्रकार उपरोक्त सभी विद्वानों के परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि लोक संस्कृति जन-साधारण के जीवन में व्याप्त विभिन्न क्रिया-कलापों, रीति- रिवाजों, धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों और व्यवहारों आदि से है। साथ ही, यह जन-साधारण लोगों के लिए जीवन पद्धति का आधार भी है।

'संस्कृति' के संबंध में परंपरागत रूप से दो धारणाएं प्रचलित हैं - 'लोक संस्कृति' व 'विशिष्ट (अभिजात्यवादी) संस्कृति'। लोक संस्कृति तथा विशिष्ट संस्कृत में बहुत ही बारीक किंतु महत्वपूर्ण अंतर होता है। 'लोक संस्कृति' जहां जनसाधारण वर्ग की संस्कृति है, जिसमें सहजता,स्वाभाविकता,नैसर्गिकता,अंधविश्वास, रीति-रिवाज और मिथकीय चेतना आदि का जीवन के लगभग हर आयाम पर गहरा असर होता है। वहीं 'विशिष्ट संस्कृति' अभिजात्य वर्ग की संस्कृति होती है, जिसमें तार्किकता, वैज्ञानिकता, कृत्रिमता, दिखावा आदि तत्वों का अधिक समावेश होता है।

'लोक संस्कृति' का स्वरूप अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। यह मानव जीवन की विभिन्न क्रिया-कलापों से संबंधित होने के कारण इसका क्षेत्र अधिक जटिल एवं व्यापक हो जाता है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों ने 'लोक संस्कृति' की विभिन्न श्रेणियाँ निर्धारित किया है। प्रसिद्ध लोक संस्कृति विशेषज्ञ 'सोफिया बर्न' ने इन्हें तीन श्रेणियां में बांटा है-

1. लोग विश्वास
2. रीति रिवाज तथा प्रथाएं और
3. लोक साहित्य।

वहीं, दूसरी तरफ पंडित रामनारायण ने लोक संस्कृति के 10 मूल तत्व बताएं हैं जो इस प्रकार है :

1.भिन्नता में एकता
2.बह्यतमरूप में परिवर्तन या तात्विक की एकता
3. मानवता और सहिष्णुता
4.प्रकृति की उपासना
5.अमर सत्य का पालन
6.सब प्रकार की सद् विद्या और कला कौशल की उन्नति
7.आध्यात्मिक विकास
8.संतो, तत्वज्ञानियों महापुरुषों का युग-युगांतर में अटूट प्रादुर्भाव
9.ज्ञान की बिपाशा और जहां से प्राप्त हो सकता है उसका ग्रहण
10.प्रजापालक शासन। 13

लोक संस्कृति के अंग्रेजी पर्याय फोकलर शब्द के जन्मदाता विलियन टाइम्स ने इसकी व्याख्या करते हुए इसे सर्व साधारण जनता का ज्ञान कहा।

लोक संस्कृति के नियामक तत्वों की बात करें तो इसमें जन्म से लेकर मृत्यु, त्योहार से युद्ध अर्थात मानव जीवन से जुड़े सभी क्रियाकलाप शामिल हैं। समाज में प्रचलित धर्म, जीवन दर्शन ,आचार-विचार ,वेशभूषा, खान-पान, मेले, त्यौहार उत्सव आदि इसके नियामक तत्व हैं।

लोक संस्कृति लोक जीवन के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में देखा जाता है। भारतीय संस्कृति लोक संस्कृति का गुच्छा है। लोक संस्कृति का संबंध जीवन के एक पहलू से नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक पहलू से है। यदि संस्कृति जीवन जीने का तरीका है तो उसे तरीकों को पुष्ट करती है लोक संस्कृति। 'लोक संस्कृति' मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी क्रिया-कलापों में यह मौजूद होता है, क्योंकि लोक संस्कृति मनुष्य के जीवन-पद्धति का आधार होता है। यह व्यक्ति

तथा समाज को नियंत्रित व संचालित करता है। लोक संस्कृति के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

हिंदी साहित्य में लोक संस्कृति की बात करें तो प्रत्येक समाज का अपना साहित्य होता है। किसी भी समाज में वहां की लोक संस्कृति की विशेष महत्व रखती है। क्योंकि संस्कृति लोक जीवन से जुड़ी होती है और उस लोक का साहित्य लोक संस्कृति में अभिव्यक्त होता है। भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप जहां एक तरफ संस्कृत साहित्य में रामायण, महाभारत, गीता एवं भास्कर, दांडी आदि के काव्य और नाटकों में व्यक्त हुआ; वहीं दूसरी तरफ हिंदी साहित्य के आदिकाल की बात करें तो लोक संस्कृति की दृष्टि से चंद्रवरदाई कृति 'पृथ्वीराज रासो', नरपति नाल कृति 'विशलदेव रासो' और 'आल्हा खंड', जगनिक कृत 'परमाल रासो' का उल्लेख महत्वपूर्ण है। साथ ही भक्ति साहित्य भी इसे अछूता नहीं रहा। भक्त कवियों ने आमजन से स्वयं को जोड़ने के लिए लोक संस्कृति का सहारा लेते हुए जहां कबीर कहते हैं "कबीर कुता राम का मुतिया मेरा नाम, वही तुलसीदास द्वारा "राम सो बड़ों कौन, मोसो छोटो कौन? तथा परमानंद दास द्वारा "कहा करो बैकुंठ नहीं जाए" इसे स्पष्ट देखा जा सकता है इन कवियों ने लोक जीवन से उदाहरण लेकर आम जनता तक अपनी बातों का प्रसार किया है। इतना ही नहीं आगे आधुनिक साहित्य के विभिन्न विधाओं में भी लोक संस्कृति के विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं.

किंतु, वर्तमान समय में 'लोक संस्कृति' के समक्ष सबसे बड़ा संकट उसके अस्तित्व को लेकर है। विश्व संस्कृति के नाम पर जो नव संस्कृति फैलाई जा रही है उससे हमारी लोक संस्कृति अपनी पहचान खोती जा रही है। यहां तक मनुष्य का जीवन यंत्रवत नहीं होता जा रहा बल्कि वह स्वयं यंत्र बनता जा रहा है। इससे मुक्ति का एक ही मार्ग है कि आज हम संस्कृति की पुरानी जड़ लोक संस्कृति की गहराई को समझें। लोक संस्कृति की जड़ से अलग होकर हम आधुनिक संस्कृति में शांति से जी नहीं सकते हैं। वहीं, दूसरी ओर वर्तमान समय में लोक संस्कृति के समक्ष सबसे बड़ा संकट है पश्चिमी सभ्यता संस्कृति का प्रभाव। वैश्वीकरण तथा सोशल मीडिया के दौर में पूरा विश्व "एक गांव"की अवधारणा को पूरा कर रहा है जिसके कारण हमारे संस्कार और संस्कृति प्रभावित हो रही है। संस्कार के अभाव में संस्कृति की बात उठाने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। अतः संस्कृति जो वर्तमान समय में नृत्य-संगीत जैसे मनोरंजन के उसे सार्वजनिक प्रदर्शन तक सीमित रह गई है जो वस्तुतः सभ्यता के बाह्य जीवन या रहन-सहन के अंग होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम सभ्यता और संस्कृति के अंतर को समझ कर दोनों को बचाने की भरपूर प्रयास करें।

निष्कर्ष

लोक संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक विरासत की आत्मा है। यह न केवल हमारे अतीत से जुड़ी हैं, बल्कि वर्तमान में भी हमारी सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों का आधार प्रस्तुत करती हैं। साथ ही यह क्षेत्रीय या जातीय सामाजिक समूहों को विशिष्ट पहचान भी दिलाती है. इतना ही नहीं यह भारत जैसे विविध संस्कृति वाले देश में लोगों के बीच एकता, अखंडता, समानता तथा बंधुत्व स्थापित करने में बहुत ही प्रभावशाली है. किंतु, आज जबकि आधुनिक समाज 'लोक संस्कृति' को हेय दृष्टि से देखा है। वह 'लोक संस्कृति' को असभ्य और पिछड़ों की संस्कृति समझता है। इसका मुख्य कारण आधुनिक समाज में संस्कार की कमी तथा पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण है। अतः लोक संस्कृति का मुख्य उद्देश्य लोगों को अपनी संस्कृत में आस्था व विश्वास पैदा करना है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'जनपद' वर्ष 1, अंक 1 ,पृष्ठ-65

2. डॉ रुचि गुप्ता, 2006,भारतीय संस्कृति शाश्वत जीवन दृष्टि एवं संगीत नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिशर, डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ संख्या- 03

3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1973, अशोक के फूल, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 63
4. नागेंद्र, साकेत एक अध्ययन, पंचम संस्करण- आगरा, साहित्य रत्न भंडार, पृष्ठ संख्या -100
5. डॉ रुचि गुप्ता, 2006,भारतीय संस्कृति शाश्वत जीवन दृष्टि एवं संगीत नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिशर, डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ संख्या- 03
6. वही, पृष्ठ- 04
7. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 1989, भारतीय साहित्य के निर्माता हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिल्ली साहित्य अकादमी, प्रकाशन पृष्ठ- 32
8. डॉ जी. के. अग्रवाल, 1980,समाजशास्त्र, आगरा: साहित्यभवन, पृष्ठ- 299
9. डॉ सीताराम झा 'श्याम', हिंदी नाटक : समाजशास्त्रीय अध्ययन,बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ- 106
10. डॉक्टर संतराम देशवाल, 2004, हरियाणा : लोक संस्कृति एवं कला, पंचकूला : हरियाणा साहित्य अकादमी, पृष्ठ -19
11. वही , पृष्ठ - 20
12. डॉ सुरेश गौतम, 2008,लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति, दिल्ली: संजय प्रकाशन, पृष्ठ -244
13. सुखविंदर बाठ, 2002, संस्कृति का लोक पक्ष, दिल्ली: शिव प्रकाशन, पृष्ठ-19

rakesh.kmcdelhi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 161-164
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत–पाकिस्तान की विदेश नीतियों के निर्धारित तत्व व उद्देश्य

विनोद कुमार
शोधाथी, नामांकन कमांकः Phd/224002P0020 पंजीयन कमांकः SS 230403,
डॉ. एस.के. सिद्धार्थ
शोध निर्देशक,
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर–471001 (मध्यप्रदेश)

प्रस्तावनाः

स्वाधीनता के पश्चात् दोनों देशों के आपसी संबंध बड़े पैमाने पर पेचीदा रहे हैं। भारत और पाकिस्तान की विदेश नीतियों के निर्धारण में कई तत्व और उद्देश्य भूमिका निभाते हैं। दोनों देशों की विदेश नीतियों, उनके राष्ट्रीय हितों, क्षेत्रयि स्थिरता और वैश्विक मंच पर अपनी भूमिका को लेकर निर्धारित होती है। भारत–पाकिस्तान के बीच संबंध ऐतिहासिक रूप से तनावपूर्ण रहे हैं, दोनों देशों की विदेश नीतियां एक–दूसरे के प्रति कठोर रूख अपनाती रही हैं जिसमें ऐतिहासिक, राजनीति और सुरक्षा संबंधी मुद्दे शामिल हैं जिसमें कश्मीर मुद्दा, सीमा पार आतंकवाद, इस्लामिक कट्टरवाद, व्यापार, जल सन्धि, परमाणु हथियारों की दौड़ प्रमुख है। जैसे– 1948, 1965, 1971, 1999 के युद्धों में उजागर हो चुकी है। 2001 में भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला हुआ। 2008 में ताजमहल पर हमला, कश्मीर में उरी हमला, 18 सितंबर 2016 को भारतीय सेना पर हमला, 14 फरवरी 2019 को जम्मू–कश्मीर के पुलवामा में एक आत्मघाती हमला किया, जून 2019 में विंग कमांडर अभनिंदन पहले गिरफ्तार फिर 60 घंटे बाद में रिहाई, 22 मार्च 2025 को जम्मू–कश्मीर के पहलगाम में धर्म के नाम पर हत्या करना।

21वीं शताब्दी की शुरुआत से वर्तमान तक कभी कश्मीर समस्या, कभी सीमापार आतंकवाद, कभी–कभी सुरक्षा ऐजेंसियों पर हमला, कभी संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रश्न उठाकर भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश बदलने की कोशिश की लेकिन परिणाम कुछ नहीं। विदेश नीति विश्व व्यवस्था और वैश्विक शासन को भी आकार देती है और जिसकी आकांक्षा रखते हैं।

भौगोलिक क्षेत्रः

भौगोलिक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दोनों देशों के बीच सीमा विवाद, आतंकवाद और पानी के बंटवारे जैसे मुद्दे भौगोलिक कारकों से प्रभावित है। भौगोलिक स्थिति दोनों देशों को अपनी सुरक्षा चिंताओं को संबोधित करने के लिए प्रेरित करती है। दोनों के बीच भौगोलिक दूरी की बात करें तो सीमा रेखा जिसे रेडक्लिफ रेखा भी कहा जाता है, लगभग 3,323 किलोमीटर लंबी है। यह सीमा रेखा गुजरात, राजस्थान, पंजाब और जम्मू कश्मीर राज्यों से होकर गुजरती है जिसमें से भारत ने लगभग 2000 किलोमीटर तार बाड़ लगवाया है। पाकिस्तान की सीमा भारत, अफगानिस्तान, ईरान और चीन से सीमा लगती है ओर भारत की पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश और म्यांमार सीमा साझा करता है। इसके अलावा भारत समुद्री सीमा श्रीलंका एवं मालदीव के साथ भी साझा करता है। भारत–पाकिस्तान की भौगोलिक निकटता के कारण, व्यापार, परिवहन और ऊर्जा सहयोग की संभावनाएं हैं लेकिन सीमा विवाद और अविश्वास के कारण इन संभावनाओं का पूरी तरह से उपयोग नहीं किया गया है।

आतंकवादः

भारत की पश्चिम की सीमाएं पाकिस्तान से लगती है, पाकिस्तान उपमहाद्वीप का भाग है। 1971 में पाकिस्तान का विभाजन हुआ। पूर्वी पाकिस्तान आधुनिक बांग्लादेश बन गया। आजकल विश्व की राजनीति तथा पारस्परिक व्यवहार में क्षेत्रवाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण विभाजक तत्व बन गया है। सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, राजनीतिक आदि कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिए जागरूक है और संघर्षरत भी है। कश्मीर में आतंकवाद के पीछे पाकिस्तान का हाथ है। पंजाब के मामले में भी ऐसा हुआ था। कश्मीर में आतंकवाद फैलाने के लिए पाकिस्तान ने अपनी गुप्तचर संस्था आई.एस.आई. में एक विशेष विभाग बना दिया जो कश्मीर में पाकिस्तानी आतंकियों की घुसपैठ कराता है, उन्हें धन और हथियार उपलब्ध कराता है। 21वीं शताब्दी में पाकिस्तानी आतंकवादियों ने अपने को कश्मीर तक सीमित नहीं रखा बल्कि पूरे भारत में आतंकी कार्यवाही कर भारत को भयभीत करने का प्रयास किया। आतंकवाद ने हमारे समाज के प्रत्येक पक्ष, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक को समग्र रूप से प्रभावित किया है। इसके कारण समाज में हिंसा, अनैतिकता, अविश्वास एवं अंधविश्वास का बोलबाला हो गया है। आतंकवाद के कारण हमारा राजनीतिक जीवन भी विषाक्त बन गया है। आजकल प्रदर्शित हिंसाप्रधान फिल्मों तथा प्रकाशित होने वाले साहित्य ने आतंकवाद को बहुत बढ़ावा दिया है, इनमें अपहरण, फिरौती वसूलने एक धन्धे के रूप में अपना लिया, हत्या आदि आतंकवादियों को साधारण एवं सामान्य घटनाओं के रूप में दिखाया जाता है साथ ही आतंकवादी कार्यवाहियों के नए–नए मार्ग भी बताए जाते हैं। पंजाब, जम्मू–कश्मीर, असम में आतंकवाद का सर्वाधिक जोर रहा है। यहां आतंकवादी अपने साथियों को आतंकवाद के बल पर जेल छुड़वा लेते हैं। सीमापार आतंकवाद का मुख्य लक्ष्य भारत में भय और अशांति का वातावरण उत्पन्न करना है। ये आतंकी गतिविधियां मुख्य रूप से बाजारों, पर्यटक केन्द्रों और परिवहन केंद्रों जैसे सार्वजनिक स्थानों पर की जाती है।

1999 का कारगिल युद्ध भारत और पाकिस्तान के बीच मई को कारगिल जिले में युद्ध हुआ था। पाकिस्तानी सैनिकों और आतंकवादियों ने भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ की और राजनीतिक क्षेत्रों में घुसपैठ की और रणनीतिक क्षेत्रों पर कब्जा की लिया जिसके बाद भारत ने जवाबी कार्यवाही की। यह युद्ध 'ऑपरेशन विजय' के रूप में जाना जाता है और 26 जुलाई को भारत की जीत के साथ जाना जाता है।

2001 में भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला जैश–ए–मौहम्मद के आतंकवादियों द्वारा किया गया था। 2008 में मुंबई हमले, पाकिस्तान स्थित आतंकवादी संगठन लश्कर–ए–तैयबा द्वारा किए गए जिसमें 166 लोग मारे गए और सैकड़ों घायल हुए। जम्मू–कश्मीर के उड़ी सैक्टर में एलओसी के पास स्थित भारतीय सेना के स्थानीय मुख्यालय पर हुआ एक आतंकी हमला जिसमें 16 जवान शहीद हो गए।

2019 को जम्मू–कश्मीर राष्ट्रीय राजमार्ग पर भारतीय सुरक्षा कर्मियों को ले जाने वाले सीआरपीएफ के काफिले पर आतंकवादी हमला हुआ जिसमें 40 भारतीय सुरक्षाकर्मियों की जान गयी थी। 2025 में जम्मू–कश्मीर के पहलगाम में आतंकवादी हमला जिसमें धर्म के नाम पर 26 सिविल नागरिक मारे गए। यह पर्यटकों पर आतंकी हमला है।

व्यापारः

सीमापार आतंकवाद दोनों देशों के बीच व्यापार संबंधों को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है।

पाकिस्तान से आयातः

पाकिस्तान, भारत को तांबा, कांच के सामान, रसायन, सल्फर, फल, सूखे मेवे और तिलहन जैसे चीजें निर्यात करता है।

भारत से निर्यातः

भारत से पाकिस्तान को दवाएं, पेट्रोलियम उत्पाद, प्लास्टिक, रबर, रसायन, रंग, सब्जियां, मसाले, चाय, कॉफी और अनाज निर्यात करता है। अनुमान है कि 10 अरब डालर का अनौपचारिक व्यापार जिसमें तीसरे देशों के माध्यम से व्यापार शामिल है और अब भी जारी है। 2019 पुलवामा हमला के बाद भारत ने

पाकिस्तान में आने वाले सामनों पर आयात शुल्क 200% तक बढ़ा दिया था, जिससे व्यापार में कमी आई है। कश्मीर मुद्दे पर तनाव और राजनयिक संबंधों में कमी के कारण भी व्यापार प्रभावित हुआ है।

जल संधिः

भारत और पाकिस्तान के बीच सिंधु जल संधि एक महत्वपूर्ण जल संधि समझौता है, जो विश्व बैंक की मध्यस्थता में हुआ था 1960 में। यह एकल समझौता रहा है, लेकिन समय–समय पर इसमें कुछ विवाद भी हुए हैं। संधि में पांव नदियां जो रावी, व्यास, सिंधु, झेलम, चिनाब जिनका उद्गम स्थान भारत में और पानी का उपयोग पाकिस्तान में होता है। यह अर्थव्यवस्था व जीवन शैली के लिए महत्वपूर्ण है वर्तमान में भारत ने पहलगाम में हुए आतंकी हमले के बाद सिंधु जल संधि को स्थगित कर दिया है, क्योंकि भारत का मानना है कि पाकिस्तान आतंकवाद को बढ़ावा दे रहा है।

परमाणु हथियारः

भारत और पाकिस्तान के बीच परमाणु हथियारों की होड़ एक जटिल और खतरनाक स्थिति है, और दोनों के बीच तनावपूर्ण संबंध है खासकर कश्मीर मुद्दे को लेकर। भारत ने 1998 में पांच और परीक्षण करके खुद को परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र घोषित किया। पाकिस्तान ने भी 1998 में परमाणु परीक्षण किया और परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बन गया। 2024 के अनुमान के आधार पर परमाणु हथियार भारत के पास 172 और पाकिस्तान के पास 170 है। यह होड़ जारी है जो कि एक चिंता का विषय है। यह होड़ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को भी खराब कर सकती है।

पाकिस्तान की राजनीतिः

पाकिस्तान की राजनीति एक बहुदलीय प्रणाली है, जिसमें द्विसदनीय संसद (नेशनल असेंबली और सीनेट) है। असेंबली 336 और सीनेट 104 सीटें शामिल है। प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख और राष्ट्रपति राज्य कर प्रमुख है। राजनीति भी एक अस्थिरता भी एक प्रमुख मुद्दा है, जिसमें अकसर सरकारें बदलती रहती है और राजनीति विरोध प्रदर्शन होते रहते हैं। पाकिस्तान की राजनीति में सेना का एक महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है, और अतीत में कई बार सैन्य तख्तापलट हुए हैं। पाकिस्तान को एक मजबूत आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें उच्च मुद्रास्फीति और कर्ज का स्तर शामिल है। पाकिस्तान की सुरक्षा व्यवस्था में सेना अर्धसैनिक बलु और खुफिया एजेंसियां शामिल हैं, जो देश की सीमाओं, आंतरिक सुरक्षा और राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए काम करती है।

भारत की राजनीतिः

भारत की राजनीति संसदीय लोकतांत्रिक गणराज्य है जिसमें राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख है। प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होता है। लोकसभा (543) निचला सदन और राज्य सभा (252) उच्च सदन शामिल है, कई राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर मान्यता प्राप्त हैं। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है जहां सरकार सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार करती है। भारत में एक स्वतंत्र न्यायपालिका है, जो संविधान और कानूनों की व्याख्या करती है। भारतीय राजनीति में सुरक्षा जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा, आंतरिक सुरक्षा और राजनीतिक सुरक्षा शामिल हैं।

निष्कर्षः

भारत और पाकिस्तान की विदेश नीतियां दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों और वैश्विक संदर्भों से निर्धारित होती हैं। भारत अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा, क्षेत्रीय अखंडता और आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित करता है जबकि पाकिस्तान अपनी स्वतंत्रता और संप्रभुता की रक्षा, मुस्लिम देशों के साथ संबंधों और विश्व शान्ति पर ध्यान केंद्रित करता है। दोनों देशों के बीच संबंध तनावपूर्ण रहे हैं, लेकिन दोनों देश अपने संबंधों को बेहतर बनाने और क्षेत्रीय शांति और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है।

संदर्भ ग्रंथः

- भारत–पाक संबंध आदि से अब तक ; लेखकः आर.पी. सिंह ; प्रकाशकः कैटरपिल्लर पब्लिशर्स 1376, द्वितीय फ्लोर कश्मीरी गेट दिल्ली– 110006 ISBN: 978-93-83446-37-7

- भारतीय विदेश नीति भूमंडलीकरण के दौर में ; लेखकः राजेश मिश्रा ; प्रकाशकः ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड 3-6-752 हिमायतनगर, हैदराबाद 500029, तेलंगाना, भारत ISBN: 978-93-5287-426-2
- भारत–पाक राजनीति एवं सामाजिक संबंधों का इतिहास ; लेखकः संजय पवार प्रकाशकः वंदना पब्लिकेशन दूसरी मंजिल, जे.एम.डी. हाऊस 4-बी अंसारी रोड़, दरियागंज नई दिल्ली– 110002 ISBN: 978-93-83386-29-1
- भारत–पाक और अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद ; लेखकः प्रो. मामनचंद खंडेला ; प्रकाशकः प्रेमचंद बाकलीवाल आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स 807, व्यास बिल्डिंग, चौड़ा रास्ता जयपुर– 302303 (राज.) ISBN- 978-81-7910-293-0
- भारत–पाक संबंध विभाजन से अब तक ; लेखकः डॉ. कृष्णानंद शुक्ल ; प्रकाशकः राज पब्लिकेशंस 108, 4855/24 अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली– 110002 ISBN- 978-81-86208-82-3
- प्रतियोगिता दर्पण ; अगस्त 2025 ; 9770974639001

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 165-168
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में मानवाधिकार

डॉ० विभा शर्मा

सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान

,

एस.आर.के. राजकीय महाविद्यालय राजसमन्द 313324

परिचय :–

विश्व की अन्य सभ्यता एवं संस्कृतियों के मुकाबले भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति कही अधिक मानवोन्मुख रही है। यहां के शासक वर्ग का लक्ष्य सदैव प्रजा का कल्याण रहा है। प्राचीनकाल से लेकर भारतीय राजा रजवाडों के शासन में दास दासियों के साथ मानवोचित व्यवहार किया जाता था जो उस युग के विष्व इतिहास में अन्यत्र दिखाई नहीं देता है। यूरोप, लैटिन अमेरिका एवं अफ्रीका में दासत्व की प्रथा एवं भारतीय समाज में दासत्व की प्रथा में जमीन आसमान का अन्तर था यहां के समाज में व्यक्ति पहले मानव था उसके बाद वह दास था जबकि भारत के अन्यत्र गुलाम एवं दास केवल ओर केवल गुलाम और दास थे इससे ज्यादा कुछ नहीं।

भारत में सदैव मानवीय गरिमा को प्रश्रय दिया है यही कारण है कि दासत्व जैसी प्रथा जो मानव अधिकारों के लिए कलंक का विषय है भारतीय समाज में कभी भी इतनी उग्रता लिए हुए नहीं रही है। यहां एक ओर तथ्य उल्लेखनीय है कि जहां मानवाधिकारों का हनन होता है वहीं मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संकल्पित चिन्तकों एवं मानवाधिकारवादियों का निरन्तर प्रादुर्भाव होता रहा है विष्व इतिहास अब्राहम लिंकन, जॉन ब्राउन, विलियम वाईबर फोर्स, बैंजामिन फ्रेंकलिन जैसे महापुरूषों का साक्षी है। मानवाधिकार सभ्य समाज का आधार स्तम्भ है, वर्तमान में मानवाधिकार की अवधारणा काफी व्यापक हो चुकी है इसे किसी एक दृष्टि से आंकलित नहीं किया जा सकता है। हैराल्ड लास्की ने कहा है कि अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां है जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास नहीं कर सकता है। अतः व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में मानव के अधिकार भी आवश्यक तत्व है।

हम यह जानते हैं कि आदि काल से मानव इतिहास मे मानवाधिकार अपने वर्तमान स्वरूप में नहीं रहा है परन्तु इसके प्रति मानवीय चेतना इतिहास के हर युग एवं काल में रही है। भारतीय इतिहास पर दृष्टि डाले तो मौर्य साम्राज्य से लेकर ब्रिटीष काल तक मानव अपने अधिकारों के लिए चेतन रहा है। महात्मा बुद्ध एवं सम्राट अशोक के समय मानवीय गरिमा को उस परिवेश एवं समय स्थिति काल के अनुसार महत्व मिला। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में कहा है कि प्रजा के कल्याण में ही राजा का कल्याण है। कलिंग अभिलेख में अषोक ने उत्कीर्ण करवाया था कि प्रजा संतान की तरह है और इसमें अधिकारियों को जनता पर अत्याचार न करने की चेतावनी दी गई है।

21 वी सदी के भारत में विकास के नित नए आयाम स्थापित हो रहे है, वहीं आज मानवाधिकार हनन का दायरा भी विस्तृत होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संगठनों का सामने आना लाजिमी है।

इस आलेख का वर्तमान में महत्व यह है कि विभिन्न संगठन जो इस क्षेत्र में कार्यरत है उनके द्वारा किए गए प्रयासों का परिणाम नागरिकों को मिल रहा है अथवा नहीं जिनके लिए ये गठित हुए है। इनके माध्यम से मानवाधिकारों की स्थापना किस सीमा तक हो पायी है।

उद्धेष्य :– मानवाधिकारों की प्राप्ति में मानवाधिकार संगठनों की नागरिकों के सशक्तिकरण में, मानव अधिकारों के अनुरक्षण में भूमिका को जानना समझना ही इस आलेख का उद्धेष्य है। किस तरह मानवीय अधिकारों की स्थापना कर उसे अक्षुण्ण रखा जा सकता है। मानव अधिकारों की प्राप्ति उस अन्तिम पंक्ति के अन्तिम व्यक्ति तक हो इसके लिए क्या किया जाना चाहिए। मानव के समग्र कल्याण को किस तरह आगे बढाया जा सकता है क्या मानव के निर्भिक होकर जीवन यापन करने की कल्पना बिना मानवाधिकार की प्राप्ति के सम्भव है।समय–समय पर मानवाधिकारों की स्थापना के लिए वार्ताएं, नीति निर्माण एवं आमुखीकरण हेतु कार्यशालाएं एवं प्रशिक्षण इत्यादि कार्यक्रम होते रहे है। विभिन्न लेख एवं आलेखों में राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर इससे जुडे संस्थानों के सुदृढीकरण को लेकर चर्चाएं एवं परिचर्चाएं भी होती रही है उनका समयबद्ध परीक्षण करना समसामयिक आवश्यकता है।

कल्याणकारी राज्य तथा मानवाधिकार परस्पर अन्तःनिर्भर विचारधाराए है आजादी के पचहत्तर वर्ष उपरान्त कल्याणकारी राज्य की आदर्ष अवधारणा का वास्तविक धरातल पर परीक्षण करना आज के परिदृष्य में समीचीन है। इसी आवश्यकता ने प्रस्तुत विषय के अध्ययन के लिए शोधार्थी को प्रेरित किया है जिससे कि :–

- कल्याणकारी राज्य में मानवाधिकार के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करना।
- मानवाधिकार संगठनों के साथ वैयक्तिक विकास एवं मानवाधिकार में सह सम्बन्धों की स्थापना करना।

उक्त बिन्दूओं को जानने समझने एवं वास्तविकता के धरातल पर परखने के लिए निम्न अध्ययनों को आधार बनाया गया है :–

- भारतीय संविधान एवं मानवाधिकार
- वैयक्तिक विकास एवं मानवाधिकार
- मानवाधिकार संगठन एवं मानवाधिकार

भारतीय संविधान एवं मानवाधिकार :–

भारत की आजादी के लगभग डेढ वर्ष बाद ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की स्थापना के लिए मानवाधिकार का घोषणा पत्र 10 दिसम्बर 1948 को जारी किया गया इसी समय भारत में भी संविधान निर्माण का दौर चल रहा था ऐसे में मानव अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में प्रावधानों का होना लाजिमी था।

अधिकार को अनेक रूपों में परिभाषित किया गया है एक तथ्य पर सभी विचारक सहमत हैं कि अधिकार कुछ करने या रखने की स्वाधीनता है जो विधि द्वारा मान्यता प्राप्त और संरक्षित है। इसका अगला कदम है विधिक अधिकार जो किसी विशेष विधि के दायरे में आने वाले व्यक्ति को उस विधि के द्वारा प्राप्त होते हैं। ये अधिकार आत्यन्तिक नहीं है और उस विधि द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से सीमित होते हैं। मूल अधिकार इस अवधारणा का अगला कदम है ये ऐसे आधारभूत अधिकार है जो किसी नागरिक के बौद्धिक, नैतिक, और आध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य है। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का विकास अवरूद्ध हो जायेगा और उसकी शक्तियां अविकसित रह जायेगी ....। संविधान के भाग ती न एवं चार में मानव अधिकारों के सम्बन्ध में रखे गए हैं। जिन्हें मूल अधिकार कहा गया है।

सही अर्थों में शांति एवं आजादी की प्राप्ति तभी सम्भव है जब हम प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति द्वारा प्रदान की गई मानवीय गरिमा का सम्मान करें और ऐसी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था स्थापित करें जो सबके लिए समान और न्यायपूर्ण हो।

वैयक्तिक विकास एवं मानवाधिकार

अर्थशास्त्री कहते है कि मानव एक आर्थिक प्राणी है एवं उसके सारे क्रियाकलाप अर्थ के इर्द–गिर्द होते है वहीं समाजशास्त्री मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानकर समाज के बिना मानव के व्यक्तित्व विकास की कल्पना करना बेमानी बताते हैं। राजनीतिक विचारक सभ्य समाज में नागरिक अधिकारों एवं कर्तव्यों की बात करते है एवं जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य को राज्य के अधीन मानते हैं।

चाहे राजनीतिक विचारक हो या अर्थशास्त्री या फिर समाज विज्ञानी सभी इस पर एकमत है कि मानवाधिकार की लडाई तभी लडी जा सकती है जबकि मानव को पहले उसकी मूलभूत जरूरते

उपलब्ध करा दी जावे अर्थात जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना, यह न्यूनतम पूर्ति तभी सम्भव है जबकि राज्य का प्रत्येक नागरिक एवं समाज का हर परिवार आर्थिक स्वायत्ता को प्राप्त करे उसे जीविकापार्जन के पर्याप्त अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित हो। इस तरह पर्याप्त आर्थिक स्वायत्ता वह जरिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज में अपने आप को स्थापित कर अपनी पहचान को इंगित कर सकता है, इस तरह परिवार एवं समाज में आर्थिक रूप से समर्थ व्यक्ति निश्चित ही राजनीतिक रूप से अपनी एवं समाज की लडाई लडने के लिए मजबूत आधार प्रदान कर सकता है। यह सर्वविदित है कि समर्थ व्यक्ति परिवार के बालको की शिक्षा के प्रति जागरूकता दिखाता है एवं प्रयासरत रहता है कि परिवार में शैक्षणिक वातावरण का निर्माण रहे। परिवार में शैक्षणिक वातावरण न केवल व्यक्ति को राजनीतिक अपितु वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करता है जिससे दिन प्रतिदिन व्यापक से और व्यापक हो रहे मानवाधिकरों के प्रति भी उसमें सजगता आती है एवं वह स्वयं के अधिकारों के न केवल अनुरक्षण के लिए अपितु उससे भी बढकर मानव मात्र के गरिमामय जीवन के सन्दर्भ में बातें करने लगता है। इस तरह आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक विकास एवं मानवाधिकार में अन्तर्निहित सम्बन्ध है एवं आपस में इस प्रकार पूरक है कि एक का विकास दूसरे को आवष्यक रूप से प्रभावित करता है। इसे एक छोटे से उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है कि महात्मा गांधी नरेगा योजना में सौ दिवस के रोजगार से व्यक्ति एवं परिवार में आर्थिक मजबूती के फलस्वरूप वह बच्चों के षिक्षा एवं स्वास्थ्य के प्रति सचेत होकर उन्हें विद्यालय भेजने में रूचि प्रदर्षित करने लगा है अन्यथा इसके पहले तो सम्पूर्ण परिवार बच्चों से लेकर बडे तक जीविकोपार्जन के लिए ही प्रयासरत रहता था न तो उसे व्यक्तित्व विकास की चिन्ता थी न ही मानव अधिकार उसके सोच के विषय थे जिसके मूल में कहावत है कि *भूखे पेट भजन न होए गोपाला....* अर्थात पेट भरा होने के बाद ही व्यक्ति को अपने सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों के बारे में सूझता है।

मानवाधिकार संगठन एवं मानवाधिकार

मानवाधिकार संगठनों, संचार माध्यमों जनता के द्वारा प्रायः मानवाधिकार हनन के आरोप लगाए जाते हैं। सोशल मिडिया एवं समाचार तन्त्रों के भारी लवाजमे से आज सुदूर किसी ढाणी गांव में हो रही छोटी सी घटना भी तुरन्त ही देशभर में फैल जाती है। यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि किसी घटना के घटित होने के कई पहलु होते है किन्तु सामने वही आता है जिसे परोसा जाता है एवं दिखाया जाता है। ऐसा भी नहीं है कि सदैव ही मानवाधिकारों का उल्लंघन किया जाता है।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित किया गया है जो धारा 2 डी में उल्लेखित है। इसके अनुसार मानवाधिकार का अर्थ व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता समानता व गरिमा से सम्बन्धित है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत है या अन्तर्राष्ट्रीय करारों में वर्णित है और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार घोषणापत्र के अनुच्छेद 10 में सिविल और राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय करार में मानव गरिमा और अभियुक्तों के अधिकारों के बारे में बताया गया है। अतः स्पष्ट है कि जब तक ऐसे कारण एवं परिस्थितियां उत्पन्न नहीं हो पुलिस बलों को मानव अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत रहना चाहिए दूसरी ओर नागरिकों को भी समाज में शान्ति एवं सौहार्द्रपूर्ण स्थितियां के लिए अपने दायित्वों का निर्वहन करना चाहिए।

आज भारत में मानवाधिकार के क्षेत्र में कई बडे संगठन कार्यरत है जिनमें प्रमुख है एमनेस्टी इन्टरनेशनल इण्डिया, चाईल्ड राइट्स एण्ड यू क्राई, ह्युमन राईट्स लॉ नेटवर्क, पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबरटिज पीयूसीएल, ऑक्सफाम इण्डिया एवं प्रथम।

उपसंहार :– वर्तमान अध्ययन यह जानने के लिए किया गया कि कल्याणकारी राज्य में मानवाधिकारों की स्थापना के लिए मानवाधिकार संगठन की क्या भूमिका है, समय एवं परिस्थितियों में संसाधनों में अभिवृद्धि के साथ उनमें क्या–क्या परिवर्तन अपेक्षित थे एवं क्या परिवर्तन हुए, राज्य की कल्याणकारी नीतियों से नागरिकों के मानवाधिकारों की प्राप्ति में क्या उल्लेखनीय प्रगति आयी। मानवाधिकार संगठनों की भूमिका एवं सक्रियता से राज्य को कई बार अतिरिक्त सजगतं रखनी होती है बावजूद इसके कई बार मानवाधिकार के उल्लंघन के आरोप राज्य मशीनरी पर लगते है जिनमें कभी सच्चाई तो कभी मानवाधिकार संगठनों द्वारा दबाव की राजनीति होती है।

मानवाधिकारों की वर्तमान स्थिति में देखे तो यह सामने आया है कि भारत में मानव अधिकारों को लागू करने के क्षेत्र में पर्याप्त कार्य हुआ है। बस हमें सभी पहलुओ को समग्र एवं समेकित दृष्टि से देखने की जरूरत है।

सन्दर्भ

1. मीणा डॉ. आलोक कुमार, डॉ. मीनाक्षी (2014) मानवाधिकार : दशा एवं दिशा, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर
2. श्रीवास्तव श्रीमती सुधारानी (2003) भारत में मानवाधिकार की अवधारणा अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली आईएसबीएन 81–88775–41–ग
3. मिश्रा डॉ. महेन्द्र के. (2008) भारत में मानवाधिकार एस आर एस पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स दिल्ली आईएसबीएन 81–8346–015–1

vibhamanoj1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 169-174
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचन्द के उपन्यासों में यथार्थवाद

डॉ० सुमेधा शर्मा
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग),
शासकीय महाविद्यालय करसोग, जिला मंडी हिमाचल प्रदेश पिनकोड :-175011

शोध सार -

प्रेमचंद का हिंदी कथा साहित्य में आगमन एक युगान्तकारी घटना है। उनसे पहले हिंदी कथा साहित्य में जासूसी, तिलस्मी और ऐयारी से भरपूर कहानियां और उपन्यास लिखे गए थे। यथार्थवादी चित्रण को साहित्य की मुख्य प्रवित्ति बनाने का श्रेय प्रेमचंद को ही जाता है।प्रतीक प्रेमचंद सही मायनों में गांव, गरीब और किसान को नायक बनाने वाले पहले कलाकार थे प्रेमचंद के आरंभिक कथा साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की झलक है लेकिन परवर्ती साहित्य में उन्हें यथार्थवाद या आलोचनात्मक यथार्थवाद के पुरस्कर्ता के रूप में देखा जा सकता है। "गोदान" और "कफ़न" जैसी रचनाएँ इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। प्रेमचंद वास्तविकता की फोटोग्राफिक प्रस्तुति को यथार्थवाद नहीं मानते थे, वे प्रकृतिकवाद के भी खिलाफ थे। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन (लखनऊ 1936) में दिया गया उनका वक्तव्य उनकी यथार्थवाद विषयक मान्यताओं को बताने के लिए काफी है।कहानियों से ज्यादा उनके उपन्यास यथार्थ का समग्र और ईमानदार चित्रण प्रस्तुत करते हैं। "सेवासदन" से शुरू होकर "गोदान"पर खत्म होने वाली उनकी औपन्यासिक यात्रा उनके निरंतर परिवर्तित होते दृष्टिकोण का परिचय देती है।

शब्दकोश:- आदर्शोन्मुक्त यथार्थवाद, तिलस्मी-ऐयारी, जातीय-जीवन, सामाजिक संक्रान्ति, नायकत्व।

प्रस्तावना:-

प्रेमचंद युग में यथार्थवाद

हिंदी कथा- साहित्य में प्रेमचंद का उदय एक युग-प्रवर्तक एवं अविस्मरणीय घटना है। न सिर्फ यथार्थवाद बल्कि अमूचा उपन्यास जगत उनका ऋणी है तो इसलिए कि वे ऐसे पहले कलाकार हैं जो हिंदी कथा साहित्य को मनोरंजन, तिलस्म और रोमांस की दुनिया से बाहर लाकर जीवन की सामाजिक अर्थवत्ता से जोड़ते हैं। राजकुमारों, ऐय्यारों तथा समाज सुधारक महापुरषों को नायकत्व से अपदस्थ करके गांव के गरीब किसान को हिंदी कथा साहित्य में नायकत्व से विभूषित करने वाले प्रेमचंद पहले कथाकार हैं, जिन्हें सच्चे अर्थों में यथार्थवाद का पुरस्कर्ता कहा जा सकता है। उनके कथा साहित्य में राजाओं से लेकर कूड़ा बीनने वाले और आदर्शवादी नायक-नायिकाओं से लेकर गुंडे और बदमाश तक मौजूद हैं। उनके मन में गाँव के प्रति किसी भी प्रकार का रोमांटिक भ्रम नहीं था। भारतीय उपन्यास की इस यथार्थवादी परम्परा को हिंदी में लाने का श्रेय प्रेम चन्द को ही दिया जा सकता है। हिन्दी उपन्यास में किसान के आने से

उसी के अनुरूप कथ्य,भाषा और शिल्प भी आए जिससे उपन्यास को यथार्थवादी संस्कार प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यास प्रेमाश्रम,रंगभूमि, कर्मभूमि तथा गोदान कृषक-जीवन के यथार्थ पर ही लिखे गए हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थवाद

'सेवासदन' (1918) से लेकर 'गोदान'(1936) तक की औपन्यासिक यात्रा में प्रेमचंद का यथार्थवाद निरन्तर परिपक्व और परिष्कृत होता गया है। अमृतराय के अनुसार सन 1901के आसपास प्रेमचंद ने अपना पहला उपन्यास 'श्याम' लिखा। हालांकि 'श्यामा' सम्बन्धी तथ्य ज्यादा प्रामाणिक नहीं है।

'सेवासदन' (1918) उनका पहला मत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें नायिका सुमन मध्यवर्ग की सामाजिक-आर्थिक कठिनाइयों के चलते अपनी से दुगुनी उम्र के दुहाजू गजाधर के साथ बियाह दी जाती है। अनमेल विवाह और पति की शंकालु प्रवृति से विद्रोह करके सुमन अपनी स्वतंत्रता और सम्मान के लिए वेश्यावृत्ति का रास्ता अख्तियार कर लेती है। वेश्या जीवन के बहाने यह उपन्यास स्त्री की सामाजिक-आर्थिक पराधीनता की समस्या को उठाता है । 'सेवासदन' की कहानी में एक तीखा व्यंग्य है, उन सामाजिक स्थितियों पर जो कृष्णचन्द्र जैसे भले इंसानों को इस पूँजीवादी समाज में पथभ्रष्ट होने को मजबूर करती है। यहाँ दहेज के लोभी और झूठे दिखावे में फंसे मध्यवर्गीय शिक्षित युवा वर्ग की भी आलोचना है जो आधुनिक होने का दम भरता हुआ भी मध्यकालीन संस्कारों में जकड़ा हुआ है। 'सेवासदन' अपने युग की प्रमुख सामाजिक समस्याओं को उठाता है; जबकि दहेज, अनमेल विवाह, पूंजीपतियों की भोग-वृत्ति तथा पुरूष-वर्चस्व जैसी अन्य समस्यायें मुख्य समस्या को घनीभूत करती है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में "प्रेमचंद ने विस्तार से दिखाया है कि इस समाज व्यवस्था में सम्पति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नहीं देते,वेश्याओं को जन्म भी देते हैं। प्रेमचंद ने सामाजिक सम्बन्धों की छानबीन कितनी गहराई से की है, यह इसी से जाहिर होता है कि उन्होंने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तियों को कठघरे में खड़ा कर दिया है.......

प्रेमाश्रम - प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1922) गांधी जी के असहयोग आंदोलन की ऐतिहासिक परिस्थिति में लिखा गया था।किसान जीवन पर आधारित होने के कारण यथार्थवादी साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचन्द-साहित्य के सोवियत अध्येता वालिन के शब्दों में 'प्रेमाश्रम' पहली ऐसी प्रमुख रचना है, जो हिन्दी-उर्दू साहित्य में इतने साहस से एक नये नायक-किसान नायक को लायी। लेखक ने किसानों के हर दिन के जीवन को दिखाने की ओर विशेष ध्यान दिया है। पहले अधिकतर उँची सामाजिक स्थिति वाले लोगों को ही नायकों के योग्य माना जाता था।" उपन्यास के क्षेत्र में यह यथार्थवादी नायक की प्रतिष्ठा थी। 'प्रेमाश्रम' में जमीदार ज्ञानशंकर के खिलाफ लखनपुर के किसानों मनोहर, बलराज और बिलासी का प्रतिरोध दिखाया गया है। यह प्रतिरोध अंग्रेजी-साम्राज्य वाद के साथ भारतीय सामन्तवाद के अनैतिक गठजोड़ की भी असलियत बयान करता है। इस उपन्यास में सामन्तवाद की प्रतीक पतनोन्मुख ज़मीदारी प्रथा की अनिष्टकारी समस्या की जड़ों में जाकर समग्रता के साथ उसका विश्लेषण किया गया है। उपन्यास में प्रेमचंद जिस ढंग से गॉवों का वर्ग-संघर्ष चित्रित करते हैं और सत्यग्रह की असफलता दिखाते हैं, उसमें उस दौर की सबसे बड़ी विचारधारा अर्थात गांधीवाद की आलोचना भी निहित है।

प्रेमाश्रम रजनीति और समाज की प्रतिनिधि परिस्थितियों का चित्रण करता है। इस'संक्रांति' को स्पष्ट करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं- "प्रेमचंद के दृष्टिकोण की खूबी इस बात में है कि वह समाज में देख सकते हैं कि कौन सी चीज मर रही है और कौन सी चीज उग रही है....... यहां कुछ शक्तियां पतनशील है तो कुछ शक्तियां उदयशील भी ।" निश्चित रूप से 'प्रेमाश्रम' का अंत आलोचनात्मक यथार्थवाद के विपरीत जाता हुआ है। ज्ञानशंकर, सुक्खू चौधरी, ईज़ाद हुसैन और बिसेसर साह जैसे नेगेटिव पात्रों का हृदय परिवर्तन स्वाभाविक और यथार्थवादी नहीं है। पूरे कथानक

में प्रभावहीन भूमिका निभाने वाले प्रेमशंकर द्वारा 'प्रेमाश्रम' की स्थापना समस्या का आदर्शवादी समाधान प्रतीत होता है। प्रतिगामी शक्तियां रचना के अंत तक यथावत बनी रहती है, जिनके रहते लखनपुर की जनता सुखी नहीं हो सकती।
रंगभूमि- 'रंगभूमि' (1925) भरतीय स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक प्रतिनिधिक परिस्थितियों पर आधारित उपन्यास है। केंद्रीय कथा में पांडेपुर गांव के अंधे भिखारी सूरदास अंग्रेजी साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष दिखाया गया है जबकि दूसरी कथा में उदयपुर रियासत के सामंती यथार्थ का चित्रण है। पूंजीपति जान सेवक के हथकंडों से अपनी जमीन बचाने के लिए सूरदास सत्याग्रह करता हुआ शहीद हो जाता है। यह साम्राज्यवाद और पूंजीवाद से संघर्ष करते नायक की यथार्थवादी त्रासदी या असफलता है। दूसरी कहानी सामंतवर्ग की कायरता, लोभ और अंतर्विरोधों को उद्घाटित करती है। देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में आते परिवर्तन, अहिंसा और सत्याग्रह के विरुद्ध सिर उठता उग्रवाद, व्यवस्था के खिलाफ जनता का प्रतिरोध, स्त्री का राजनीति में प्रवेश, गांवों में औद्योगिकरण और पूंजीवाद का प्रवेश, परिवार और गाँव जैसे इकाइयों का ह्रास तथा इन सबके फलस्वरूप होने वाला परिवर्तन और संक्रमण रचना में प्रतिनिधिक परिस्थितियों की सृष्टि करता है।

'रंगभूमि' के ज्यादातर पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि जान पड़ते हैं। क्लार्क यदि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि है तो जॉन सेवक पूंजीवाद की चरित्रहीनता का प्रतीक है। महेन्द्रप्रताप, भरतसिंह और रानी जहान्वी सामन्तवाद के वर्ग-चरित्र बनकर उभरते हैं। इन सबके बीच अंधे,अनपढ़, दलित और भिखारी सूरदास को एक 'टाइप' पात्र के रूप में लाना रंगभूमि का सबसे बड़ा यथार्थवादी पहलू है। उपन्यास के अंत में सूरदास को पराजित दिखाना 'यथार्थवाद की विजय' का उद्दाहरण है, इस सम्बंध में शिवकुमार मिश्र का संकेत महत्वपूर्ण है- " फिर भी चूंकि प्रेमचंद पूरी ईमानदारी के साथ वस्तुस्थिति से अपना सम्बन्ध रखते थे,इसलिए उन्होंने सूरदास को पराजित दिखाया। यह यथार्थ वाद की विजय थी । ऐंगल्स ने इसी को बाल्जाक के संदर्भ में 'ट्रायम्फ ऑफ रियलिज्म' कहा था।" पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह 'रंगभूमि' के अंत में कोई काल्पनिक या आदर्शवादी समाधान नहीं है, इन सब कारणों से यह तुलनात्मक रूप से बेहतर यथार्थवादी उपन्यास है।

कायाकल्प- 1926 में प्रकाशित कायाकल्प यथार्थवाद की दृष्टि से एक कमजोर रचना ही मानी जायेगी। इसमें जहां एक ओर रानी देवप्रिया की पूर्वजन्म की कल्पना से युक्त कहानी है तो दूसरी ओर जगदीशपुर रियासत का सामंती यथार्थ। रानी देवप्रिया का चरित्र सामन्तवाद का वर्ग-चरित्र है, वह अपने हर नये प्रेमी को पूर्व-जन्म का पति स्वीकार कर लेती है रचना के अंत में वह भोग-विलास छोड़कर अपना जो कायाकल्प करती है, वह विश्वसनीय नहीं लगता। चक्रधर के चरित्र में राजनेताओं और समाजसेवकों के अंतर्विरोध स्वाभाविक लगते हैं। किंतु अंत में उसका भी गृह त्याग कर महात्मा का वेश धारण कर लेना हृदय परिवर्तन का उदाहरण है, जिसके कारण उपन्यास का समापन कृत्रिम,अव्यवहारिकऔर यांत्रिक प्रतीत होता है। उपन्यास में किसी भी पात्र को टाइप या प्रतिनिधि चरित्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। प्रेमचंद की यथार्थवादी यात्रा में यह उपन्यास एक कमजोर कड़ी ही सिद्ध होता है।

निर्मला- सेवासदन के बाद स्त्री-जीवन की समस्या पर लिखा गया प्रेमचंद का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है- 'निर्मला' जिसका प्रकाशन 1927 में हुआ। निर्मला की करुण कहानी को हमारे मध्यवर्गीय समाज में कहीं भी, कभी भी घटते हुए देखा जा सकता है, यह उसका एक यथार्थवादी पहलू है। पिता की आकस्मिक मृत्यु के बाद भारी दहेज न जुटा पाने के कारण निर्मला का तीन बेटों के बाप अधेड़-विधुर तोताराम से विवाह भी एक त्रासदी है और अंत में अपने ही किशोर-पुत्र को लेकर तोताराम की सन्देह-वृति के कारण मानसिक संताप में घिलती निर्मला की मृत्यु भी एक त्रासदी है। प्रेमचंद का यह पहला दुखांत उपन्यास है, जो कोई आदर्श या समाधान प्रस्तुत नहीं करता । दहेज़ प्रथा और अनमेल विवाह के मूल में भी यहाँ स्त्री की सामाजिक-आर्थिक पराधीनता की समस्या को ही उभारा गया है। निर्मला एक यथार्थवादी

उपन्यास है जिसे स्वीकार करते हुए डॉ० त्रिभुवन सिंह ने थोड़ा अतिश्योक्ति का परिचय दिया है। उनका मानना है कि "समाज को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करने वाला 'निर्मला' जैसा उपन्यास हिंदी साहित्य में दूसरा लिखा ही नहीं गया।"

गबन- मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन और अंतर्विरोधों को उजागर करने के कारण 'गबन' (1931) का कथानक यथार्थवादी प्रतीत होता है। 'आभूषण मण्डित संसार' से आई अपनी पत्नी जालपा की चंद्रहार की ख्वाहिश पूरी करने के लिए उपन्यास का नायक रमानाथ सरकारी राशि का गबन करने के बाद इधर-उधर भागता फिरता है। रमानाथ-जालपा की कहानी में मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता, झूठा दिखावा नैतिक पतन तथा दांपत्य का विघटन जैसे यथार्य सन्दर्भ हैं तो दूसरी ओर देवीदीन खटिक की कथा में स्वाधीनता आंदोलन के चित्रण के साथ राजनेताओं, पूंजीपतियों और पुलिस व्यवस्था की आलोचना को शब्द दिये गये हैं।

उपन्यास 'गबन' के पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र हैं। नायक रमानाथ आर्थिक विषमता से पीड़ित मध्यवर्गीय नवयुवकों का प्रतिनिधि है जिसके रूप में लेखक ने अच्छाई-बुराई तथा संकल्पों-विकल्पों का यथार्थवादी पुंज प्रस्तुत किया है। रामदरश मिश्र के अनुसार "वास्तव में मध्यवर्ग का सारा संघर्ष यहीं केन्द्रीभूत है। रमानाथ जीवन भर उच्च आकांक्षा और आर्थिक तथा व्यक्तिगत हीनताओं के संघर्ष से पीड़ित रहता है। उसके इस संघर्ष को तीव्र रूप में दिखाने के लिए लेखक को अपनी ओर से प्रयास नहीं करना पड़ता। पात्र स्वयं एक बार उसमें उलझकर अपने अशक्त, आडम्बरप्रिय संस्कारों के कारण अनेक विषम परिस्थितियों में उलझता जाता है, छूटने के बजाय और फँसता जाता है...... और इस प्रकार कथानक, पात्रों और समस्याओं की दृष्टि से गबन एक यथार्थवादी रचना मानी जा सकती है।

कर्मभूमि- 1932 में प्रकाशित 'कर्मभूमि' प्रेमचंद का एक बहुआयामी उपन्यास है। स्वाधीनता आंदोलन के युगीन सन्दर्भों, गाँधी-इरविन समझौता, अम्बेडकर का मंदिर-प्रवेश आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन जैसी प्रतिनिधि परिस्थितियों को यह उपन्यास कथानक के भीतर परोक्ष रूप से चित्रित करता है। बलात्कार पीड़िता मुन्नी का संघर्ष, अछूतों का मंदिर प्रवेश और सुखदा का भूमि - आंदोलन जैसी घटनाएं जनता के संघर्ष और प्रतिरोध को व्यंजित करती है, जनता की जीत यहां चिर-संघर्ष से प्राप्त होने के कारण आदर्शवादी नहीं लगती। उपन्यास का अंत किसी हृदय परिवर्तन और कृत्तिम समाधान को प्रस्तुत नहीं करने के कारण महत्वपूर्ण है।

'कर्मभूमि' के स्त्री पात्र पुरुष पात्रों की तुलना में अधिक संघर्षशील, परिपक्व और प्रतिरोध की चेतना से युक्त हैं। मुन्नी गोरे सैनिकों से बलात्कार की शिकार होने के बाद प्रतिरोध से भी आगे प्रतिशोध तक जाती है। रेणुका और सुखदा जैसे पात्र नारी की बदलती संघर्षशील छवि को प्रस्तुत करते हैं। अमर-सलीम की दोस्ती तथा अमर -सकीना का प्रेम साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रतीक बनकर उभरता है। नायक अमरकांत के रूप में प्रेमचन्द ने राजनीति का अंतर्विरोध चरित्र पेश किया है जिसमें देशभक्ति और समाजसेवी जैसे आदर्शों के बावजूद अवसरवाद,कायरता,चालाकी और समझौतापरस्ती जैसी कमजोरियां भी हैं।

मैनेजर पांडये के शब्दों में यह उपन्यास "गरीब किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और दलित के व्यापक जागरण, आंदोलन, उसके दमन और प्रतिरोध की जटिल समग्रता का आख्यान है।" जन संपृक्ति उपन्यास के यथार्थवाद की प्रमुख विशेषता है।

गोदान- अंतिम उपन्यास 'गोदान' (1936) न केवल प्रेमचंद का बल्कि समग्र हिंदी-साहित्य में यथार्थवाद का उच्चतम प्रतिमान है। कुछेक अंतर्विरोध-असंगतियों के बावजूद यह आलोचनात्मक यथार्थवाद को उसकी आत्यंतिक सीमाओं तक अभिव्यक्त करता है। 'गोदान' में दो कथाएँ समानांतर स्तर पर चलती है। शहर की कहानी ग्रामीण यथार्थ को अधिक घनीभूत करने के उद्देश्य से लाई गई अनुभव होती है। जैसे बालजाक ने 'द पीजेंट्स' में फकीर मोहन सेनापति ने 'छः माड़ आठ गुंठ' में वैसे ही प्रेमचंद ने गोदान में किसान-जीवन का समग्र यथार्थ उसके गुण-दोषों के साथ चित्रित किया है।

गोदान की कथा से कौन परिचित नहीं है कि किस तरह बेलारी गाँव का गरीब किसान होरी जीवन में एक बार नहीं,बल्कि कई मौतें मरता है। उसकी गाय रखने की छोटी सी 'साध' फिर भी अधूरी ही रह जाती है। समस्या-विश्लेषण की दृष्टि से किसान की गरीबी और कर्ज़ उपन्यास की मूल समस्या है, जिसके मूल में आर्थिक विषमता ही मुख्य कारण है। प्रेमचंद 'गोदन' में दिखते हैं कि गरीब को घेरने वाली प्रतिगामी शक्तियां कितनी एकजुट हैं और किसान किस कदर अकेला है। प्रेमचंद यहां जमीदारों-महाजनों के प्रति ही निर्मम नहीं है, अपने प्रिय पात्र किसान की धर्मभीरू कायरता, सहिष्णुता और समझौतापरस्ती के प्रति भी आलोचनात्मक रवैया अपनाते हैं। अपने प्रिय नायक होरी के प्रति यह निर्ममता प्रेमचंद जैसा यथार्थवादी ही दिखा सकता था।

मुख्य समस्या के इर्द-गिर्द यह उपन्यास सामन्तवाद, पूँजीवाद, ब्राह्मणवाद, स्त्री व दलित-मानवता का शोषण जैसी अन्य समस्याओं की भी गहरी पड़ताल कार्य-कारण संबंधों की रोशनी में करता है। राय साहब अमरपाल सिंह पतनोन्मुख ज़मीदारीप्रथा अर्थात सामन्तवाद के मि० खन्ना पूंजीपति वर्ग के तथा झिंगुर सिंह, पंडित दातादीन और पटेश्वरी ग्रामीण महाजनी सभ्यता के प्रतिनिधि वर्गीय पात्र है, जिनका चरित्र-चित्रण ही उनकी यथार्थवादी आलोचना है। इन सबके बीच होरी, धनियां और गोबर के चरित्र में प्रेमचंद ने वर्ग और वयक्ति दोनों की विशेषताएं उनके समस्त गुण-दोषों के साथ रखकर अपूर्व यथार्थवादी 'टाइप' चरित्रों का सृजन किया है। होरी यहां आम भारतीय किसान का 'प्ररूप' है, वहीं उसमें कुछ व्यक्तिगत निजी विशेषताएं भी है। उसका अंतर्बाह्य विश्लेषण और मानवीय अंतर्विरोध हर दृष्टि से यथार्थ एवं स्वाभाविक लगते हैं। विजेंद्र नारायण सिंह के शब्दों में " 'गोदान' में होरी की पीड़ा निजी पीड़ा भर नहीं रह जाती, वह उपनिवेशवाद के तहत शोषित पूरे भारतीय किसान की पीड़ा है।" यही होरी वर्ग-चरित्र से अलग जाकर जब गौहत्या के अपराधी भाई हीरा के खेतों की रखवाली करता है और गर्भवती झुनिया को स्वीकार करता है तो उसकी निजी विशेषताएं भी प्रकट होती है। गोपाल राय के अनुसार "धनिया एक प्रारूपिक किसान- पत्नी है, गरीब की मार से बुरी तरह पिटी हुई, जीवन की साधारण सुविधाओं से वंचित.......अभावों के बीच जीने वाली असमय वृद्ध भारतीय कृषक नारी।" लेकिन यही धनिया जब मर्दों से आगे बढ़कर अन्याय का प्रतिरोध करती है, गर्भवती विधवा झुनिया को बहू स्वीकारती है और पोता होने पर गला फाड़कर सोहर गाती है तथा सिलिया चमारिन का साथ देती है तो उसमें आधुनिक, क्रांतिकारी व्यक्तिगत छवि के दर्शन भी होते हैं। गोबर के रूप में प्रेमचंद ने तर्कशील, विद्रोही, किसान से मजदूर बनती, गांव से शहर को विस्थापित होती नई पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र गढ़ा है।

निष्कर्ष - उक्त आलेख में प्रेमचंद के कथा साहित्य विशेषकर उपन्यासों पर दृष्टि डालने के बाद उन्हें हिंदी में यथार्थवाद का युग प्रवर्तक रचनाकार मानना श्रेयस्कर होगा। प्रेमचंद के उपन्यासों का क्रमशः अध्ययन करने के बाद यह लगता है कि निरन्तर बदलते उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण और लेखकीय विचारधारा का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। उत्तर भारत की ग्रामीण और नगरीय सभ्यता का यथार्थ, गरीब और किसान वर्ग को नायकत्व प्रदान करना, जनता की तीव्र समस्याओं से गहरा जुड़ाव, साम्राज्यवाद की आलोचना, बदलते सामाजिक यथार्थ की संक्रांति का चित्रण आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें टॉलस्टॉय की तरह एक महान यथार्थवादी कलाकार का दर्जा देती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मायाधर मानसिंह : फकीर मोहन सेनापति पृ० 69 व 58 (स्रोत-मैनेजर पांडेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० 287)
2. प्रेमचंद : कुछ विचार, पृ० 50(स्रोत-डॉ०सत्यकाम : आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, पृ० 58)
3. प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य,(स्रोत- सं. कुंअर पाल सिंह : साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद, पृ० 167)
4. अमृतराय:युग प्रतिनिधि कलाकार प्रेमचन्द (लेख), सं० डॉ० सत्येंद्र : प्रेमचंद, पृ० 10

5. डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग, पृ० 36-37
6. डॉ० वालिन की टिप्पणी, डॉ० मदनलाल 'मधु'
7. गोर्की और प्रेमचन्द, पृ० 234
8. डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग, पृ० 54-55
9. रामदरश मिश्र : हिंदी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ० 50
10. मैनेजर पाण्डेय : अनभै साँचा, पृ० 153
11. डॉ० गोपाल राय : गोदान : नया परिप्रेक्ष्य, पृ० 131

अणु डाक :- s.sumedha2302@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 175-180
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महाभारते आचारधर्ममहिमा
(Mahabharate Achara Dharmamahima)

कल्पना
शोधच्छात्रा,
श्रीलालबहादुशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली
डॉ.बी.कामाक्षम्मा
निर्देशिका
आचार्या साहित्यविभागः श्रीलालबहादुशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली

धर्मः पुरुषार्थेषु प्रथमत्वेन स्मृत इति। धर्मस्यास्याऽश्रयः वेद एव। एतदर्थं गौतमसूत्रे वेदो धर्ममूलमितसर्वथा दृश्यत एव। मनुस्मृतावपि मनुना धर्मोऽयमखिलधर्ममूलत्वेन प्रोक्तः।
यथोक्तं तत्र मनुना-

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥[1]

स्मृतिग्रन्थस्तत्र धर्मशास्त्रत्वेन स्मृत इति। मनुस्मृतौ निगदितं यत् श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः[2]। तत्र मनुस्मृतौ सर्वेषां वर्णानां धर्माः प्रोक्ताः। इत्यनेन प्रतिभाति यत् धर्मस्तत्र कर्त्तव्यपरकः बोधको वा निगदितः। यदा कथ्यते धर्मोऽयं मानवस्येति तदा कर्त्तव्यमेव निर्दिशति। धर्मस्तत्र गुणरूपेणापि ज्ञायते। यथा मनुष्यस्य गुणः मनुष्यत्वं पशोस्तत्र पशुत्वमिति एतदर्थमेव निगद्यते धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः। वस्तुतः धर्मस्तु वेद एव। धर्म एव मानवं पशोः पृथक् करोति। प्रश्नश्चात्र उत्तिष्ठति यत् किन्नाम धर्मत्वमिति ? मनुस्मृतिः धर्मस्य लक्षणं प्रतिपादयति।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुःसाक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥[2]

धर्मं परिभाषमाणः महाभारतकारस्त्वत्राह-

धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

[1] मनु. 2.6
[2] मनु. 2.12

यद् स्यात् धारणा संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥[1]

महाभारते वनपर्वणि प्रोक्तं यत्- **आनृशस्यं परो धर्मः।**[2] धर्मसेवकः न कदापि विचलितो भवति। ते तु पर्वत इव अचलाः भवन्ति। न्याययुत आचार एव धर्म इति। महर्षिणा दयानन्देनापि प्रोक्तं यत्- पक्षपातरहित न्यायमार्गः एव धर्मः इति। यः धर्मं विरोधयति किलापरं धर्मं सः नैव धर्मः इति निश्चयः। यथोक्तं तत्र –

धर्मं यो बाधते धर्मः न स धर्मः कुवर्त्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः॥[3]

धर्मादर्थं नैव भवति पृथगिति यथा स्वर्गात् न कदापि भवत्यमृतं पृथक्। यावज्जीवेत् सदैव विमलमनसा धर्मं कुर्यात्। फलेच्छां विहाय धर्मं कुर्वाणो तु अधिगच्छति परां गतिम्। धर्मात् परो नहि भवति लाभः इति।[4] महाभारतस्य वनपर्वणि कथ्यते यत् धनाद्धर्मः तथैव भवति यथा शैलात् नदी। कथितं तत्र- धनाद्धि धर्मः स्रवति शैलादधिनदी भवति यथा।[5] शान्तिपर्वणि तत्र निर्दिष्टं वर्तते यत् धर्माचरणे एकलः एव करोति सर्वम्।
यथोक्तं तत्र- **एक एव चरेद् धर्मं नास्ति धर्मे सहायता**[6]**।**

महाभारते महता कण्ठेनोक्तं विद्यते यत् केवलं वेदस्मृतिपाठेन धर्मः नैव क्रियते। यावत् वेदज्ञानमाचरणे व्यवहारे वेति नागच्छति तावत् सः धर्मः नैव धर्म इति। यथोक्तं तत्र– न धर्मः परिपाठेन शक्यो भारत वेदितुम्। वस्तुतः धर्ममार्गः गहनः वर्तते। नैवायं मार्गः सर्वगम्यः वर्तते। धर्मः विनयेन शोभते। विनयः विना धर्मः सदैव दयाश्रित एव भवति। एतदर्थं भगवान बुद्धस्तत्र निगदति न सः धर्मो न यत्रास्ति विनय इति।[7] महाभारतकाले धर्मज्ञा एव भवन्ति स्म किल पण्डिताः। कृत्स्नं ज्ञानं सम्प्राप्य यदि नास्ति तत्र धर्मः तदा त्याज्यः तादृशो ज्ञानी। यथोक्तं तत्र वनपर्वणि – **धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयः।** शास्त्रचिन्तने रताः भूत्वाऽपि यदि नास्ति किमप्याचरणे, तत् व्यर्थमेव सर्वमिति। यथा वनपर्वणि-

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः[8]**॥**

1. वस्तुतः धर्मस्य प्रथमं पर्व सत्यमेवोच्यते। सत्यं विना कुतो धर्मः, धर्मं विना कुतो जयः। एतदर्थं कथ्यते यतो धर्मस्ततो जयः। **सत्यं व्रतपरं व्रतमिति वनपर्वणि निगदितं खलु**[9]**।** उद्योगपर्वणि वेदव्यासेन उक्तं यत् धर्मसंरक्षणं सत्येनैव भवति। सत्येन रक्ष्यते धर्मः।[10]

---

[1] उद्योगपर्व 37.48
[2] वनपर्व-213.30
[3] वनपर्व 131.11
[4] अनुशासनपर्वः-105.65
[5] शान्तिपर्वः, 8.33
[6] वनपर्वः, 193.32
[7] उत्तरबुद्धचरितम् , रामचन्द्रदासकृतम्, 25.38
[8] वनपर्वः 313.110
[9] वनपर्वः, 213.30
[10] उद्योगपर्वः, 34.39

2. एतदर्थमुच्यते- **यत् न तत् सत्यं यत् छलेनाभ्युपेतम्।**[1] महाभारते तु निगदितं यत् स्वर्गस्य पर्व सत्यमेव। तेनैव तीर्यते भवसागर इति भावः यतोहि सत्यात् नास्ति परं पदमिति। धर्मस्याधार एव सत्ययुतः। नहि सत्यात् परो धर्मः तत्र -

एकमेवाद्वितीयं तद्यद् राजन्नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव[2]॥

धर्मः सत्ये स्थितः। सहस्राश्वमेधयज्ञात् सत्यं विशिष्यते –

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुल्या धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥[3]

सन्तोषः किल धर्मस्य द्वितीयं पर्वः। सन्तोषात् परं नहि धनं किञ्चित्। सन्तोषः धर्मद्योतकः। सन्तोषः धर्मलक्षणं परमं सुखं च ।

अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम्।
तस्मात् सन्तोषमेवेह धनं पश्यति पण्डिताः॥[4]

धर्मस्योदयः यस्य भवति स खलु विजयते लोकत्रयमिति भावः। यतः ये भवन्ति सन्तुष्टास्ते न कदापि धनमनुगच्छन्ति। सन्तोषस्य विषये आदिपर्वणि सम्यक् उक्तं यत् मानवस्य कृते सम्पूर्णा पृथिवी अपि या किलास्ति रत्नयुता, पूर्णा न वर्तते । यथा-

पृथिव्यी रत्न सम्पूर्णा हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥[5]

धर्मस्य तृतीयं पर्व भवति विनयः। साधु पुरुषः विनयत्वेन राजते लोके। विनयत्वं तस्य मुख्यं लक्षणमिति। एतदर्थं कथ्यते- **ध्रुवा साधुषु सन्नतिः।**[6] धार्मिकाः जनाः सदा भवन्ति सुखिनः, न भवन्ति भीतियुताः। यतः भातिरधर्मस्य कारणम्।

ये भवन्ति धर्मपरायणास्ते खलु प्राप्नुवन्ति स्वर्गसौख्यम्।[7]
जगति सर्वदा दृश्यते यत् आचारो धर्ममूलक एव।[8]

धर्मपालने आचारस्य महन्महत्वं प्रतिपादितं खलु महाभारते। आचारभ्रष्टजनाः नैव भवन्ति धर्मसंयुक्ता इति। आचारवृक्षस्य मूलं धर्म एव। महाभारतस्य ग्रन्थ एव धर्माधर्मविवेचकः खलु।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा इति तु लोके प्रथितमेव। आचारशब्दस्यार्थमेव एवास्ति आ समन्तात् चरणपर्यन्तं यत्किमपि प्रतिबिम्बितं भवति , तदेवाचरणमिति भावः। वस्तुतः आचारः एव परमो धर्मः इत्यपि मनुना मनस्मृतौ डिमडिमघोषै उद्घोषितः। आचारहीनः न किमपि वेदफलमश्नुते। महाभारतस्य सन्देश विद्यते यद् यः खलु सदाचारी भवति तस्यैव गृहे सर्वसौख्यं वसति खलु, अतएव सर्वदा सदाचारिणा भवितव्यम् । तत्रैवेतदपि प्रोक्तं यत् न कुर्यात्

---

[1]उद्योगपर्वः, 35.48
[2]उद्योगपर्वः, 33.49
[3] आदिपर्वः, 74.103
[4] शान्तिपर्वः, 330.21
[5] आदिपर्वः, 75.51
[6] द्रोणपर्वः, 76.25
[7] शान्तिपर्वः, 228.13
[8] मनु. 4.155

कदापि प्रतिकूलान्याचरणानि। शठे शाठ्यं समाचरेदिति व्यवहारःन खलु ग्राह्यः सर्वदा। यदि सरलभावनया क्रियते व्यवहारस्तदा फलं भवत्यनुकूलमिति भावः। अतएव निगद्यते यत्र –

न पापे प्रतिपापः स्यात् साधुरेव सदा भवेत्।
आत्मनैव हतः पापो यः पापं कर्तुमिच्छति॥[1]

वैदिकवचनं प्रथितं वर्तते यत् केवलाघो भवति केवलादी अर्थाद्यः कोऽपि एकलः अत्ति सः तु पापभाग् भवतीति। इममेव भावं प्रतिपादयता व्यासेन महाभारते तत्र -

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छवसन् स जीवति॥[2]

तत्रैव महाभारते अतिथिपूजा व्याकृता खलु। यथा –

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः[3]॥

आत्मनः प्रतिकूलानि कार्याणि परेषां कृते न करणीयानि खलु। इयमेव भारतीया संस्कृतिरस्ति वस्तुतः सदाचारे सर्वं निहितं विद्यते। आर्जवमाचारमूलमिति। अनेनैव मार्गेण परमं पदमाप्नोति साधकेति भावः महाभारतस्य सदाचारमहिमा देवैरपि गीयते। यथा –

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते॥[4]

जितेन्द्रियः विजयत सदा। सः सदाचारी उच्यते। प्रसङ्गेऽस्मिन् कथितं तत्र- **किमात्मना यो जितेन्द्रियो न वशी।** (शा०प०) अनुशासनपर्वणि सदाचारक्रमे दीर्घायुः कथं भवेदिति प्रतिपादितं विद्यते। तस्य कृते अनुशासनानि तत्र प्रोक्तानि सन्ति। सन्ध्याकाले न च करणीयेति कृतादेशस्तत्र -

सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन् विद्यां न च समाचरेत्।
न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत्[5]॥

सदाचारी जनः सर्वदा भवति बन्धमुक्तः। सदाचारी सदैव सत्कर्म करोति। यतोहि पूर्वकृतं कर्म मानवमनुगच्छति। न त्यजति कर्मजं फलं कदापि। एतदर्थं कथयति महाभारतीयोऽयं श्लोकः–

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति[6]॥

ये खलु भवन्ति सदाचारिणस्ते तु न कदापि किमपि यशसः कुर्वन्ति दानमिति। यतोहि दानं दत्वा विस्मरेत्। दानिनः न कदापि कुर्वन्ति घोषम्। **दानं हि महती क्रिया[7]।** एतदर्थं निगदितमस्ति यत्- **न दद्यात् यशसे दानं न भयान्नोपकारिणे[8]।** प्रत्युपकारञ्तु शत्रुः इच्छति। सदाचारयुताः जनास्तु दत्वा मौनं धारयन्तीति भावः। एतदर्थं सर्वदा

---

[1] **वनपर्वः, 207.45**
[2] **वनपर्वः, 313.58**
[3]**शान्तिपर्वः, 186.5**
[4]**महाभारतम्**
[5]**अनु॰ प॰, 104.119**
[6] **शा॰ प॰, 181.16**
[7]**अनुशासनपर्वः, 9.26**
[8] **शान्तिपर्वः, 37.36**

आचारयुतेनैव भवितव्यम्। ये भवन्ति आचारवन्तः न कुर्वन्ति दुःखस्य चिन्तनम्। महाभारते स्पष्टं निगदितं यद् विनययुक्तः भवन्ति सदाचारी। यस्याचरणं महद् भवति सः सदा विनयवान भवत्येव। विद्यया प्राप्यते विनयत्वमिति। अतः विद्या ददाति विनयमिति प्रोक्तम्। (हितोपदेश) अत उच्यते- **श्रियं ह्यविनयो हन्ति।**[1] अविनयत्वमाचारं हन्ति। महाभारते महता उक्तं यद् देवः सदाचारयुतं मनुष्यं न दण्डेन रक्षत्यपितु सद्बुद्धियुतं करोति मनुष्यम्। देवोऽपि आचारवन्तं जनमेव चिनोति सदा। इममेव भावमत्र महाभारतं व्याकरोति -

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्ति तम्॥[2]

आचारवान् सदा ज्ञानजलेन स्नाति। आचार एव बलं तस्य नान्यद् बलं विद्यते भुवि। आचारवान् एव जानाति धर्मस्य फलाफलम्। यः भवति सदाचारः सः धार्मिकः सदोच्यते। वस्तुतः धर्मस्य पदं गुप्तमिव भवति। यथा सर्वथा सर्पपदं सुदुर्लभं लोके। तथैव धर्मपदं खलु। एतदर्थं प्रोक्तं खलु-

अहेरिव हि धर्मस्य पदं दुःखं गवेषितुम्।[3]
सदाचारी एवाभिजानीति धर्मस्य स्वरूपम्।[4]

सदाचारी एव धर्मस्य रहस्यं जानाति। तेनैव गीयते तत्र। आचारवतः पुरुषस्य तु धर्म एव मित्रमिव दयते सदा। धर्मः यस्य दयते, स एव उदयते आचार- नभसि। आचारवान् विना कारणमुपकुरुते जनान्। परोपकार एव भवति तस्य जीवनम् । परमाचारहीनस्य न भवति गतिर्क्वापि। धर्मज्ञाः भवन्ति बुद्धिमन्तस्तत्र। एतदर्थं महाभारते प्रोक्तं यद् **धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयः।** आचारस्य महिमा पदे-पदे राजत एव। एष आचारः परमो धर्म इत्यपि श्रूयते। एतदर्थं सदा खलु आचारः पालनीयः लोके। अस्मिन्नेवाचारे सम्पूर्णः लोकः व्यवस्थितः।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. **महाभारतम् (सम्पूर्णम्), वेदव्यासः,गीताप्रेस, गोरखपुरम्, 2011 (संशोधितसंस्करणः)**
2. **शान्तिपर्वम् (अखण्डम्), सम्पादकः, श्री.पी.एल्.वैद्यः, Bhandarkar Oriental Research Institute पुणे, 1961**
3. **अनुशासनपर्वम्, सम्पादकः- डॉ. हरिहरशर्मा, चौखम्बासंस्कृतसीरीजकार्यालयः, वाराणसी, 1989**
4. **धर्मशास्त्रसमुच्चयः, विष्णुशास्त्रीपण्डितः, चौखम्बाविद्याभवनम्, 1973**
5. **महाभारते धर्मचिन्तनम् (शोधग्रन्थः), डॉ.चूडामणिशास्त्री, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, 1997**
6. **भारतीयधर्मदर्शनम्, डॉ. विद्याधरशुक्लः, राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्, दिल्लीनगरम्, 2005**

---

[1] उद्योगपर्वः, 34.1

[2] उद्योगपर्वः, 35.40

[3] शा॰ प॰ 132.20

[4] शा॰ प॰ 105.65

7. नीतिशास्त्रविमर्शः, डॉ. विद्यनाथत्रिपाठिन्, चौखम्बासुरभारतीग्रन्थमाला, 2003
8. मनुस्मृतिः (सटीकटीका सहित), मनुः- टीकाः मेधातिथिः, चौखम्बासंस्कृतसीरीजकार्यालयः, 2002
9. नारदस्मृतिः (आचारप्रकरणम्), नारदऋषिः, चौखम्बा विद्याभवनम्, 1970
10. धर्मशास्त्रविवेचनम् (महाभारतपर्यालोचनपूर्वकः), डॉ. वसन्तकुमारः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, 2010
11. महाभारतम् (सम्पूर्णम्), महर्षिः वेदव्यासः, नीलकण्ठः (भारती-टीका) गीताप्रेसगोरखपुरम्, 2011 (संशोधित)
12. महाभारते आचारधर्मस्य स्वरूपम् (Ph.D. शोधप्रबन्धः), डॉ. रमेशचन्द्रः शर्मा, काशीविद्यापीठः, 2001

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 181-186
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी सिनेमा : नारी का योगदान और बदलती छवि

कमलेश कुमार मीना
असिस्टेंट प्रोफेसर,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय सवाई माधोपुर

सार-
आज सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार का युग है, संचार के सबसे सशक्त माध्यम के तौर पर सिनेमा सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। जिसका प्रभाव जनता पर सर्वाधिक पड़ा है, क्योंकि अनपढ़ हो या पढ़ा लिखा, गरीब हो या अमीर सबको समान रूप से प्रभावित करता है। सिनेमा विश्व में मनोरंजन का श्रेष्ठ साधन बनकर उभर रहा है। क्योंकि ये हर जाति, समुदाय, धर्म एवं वर्ग के लिए एक समान है। सिनेमा तेजी से परिवर्तित होते समाज को दर्शाता है। सिनेमा और समाज एक दूसरे के पूरक भी है। व्यक्ति थोड़ी देर के लिए ही सही, अपने दुखपूर्ण संसार से बाहर आ जाता है। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है, उसी प्रकार सिनेमा भी समाज का दर्पण बनता दिखाई दे रहा है।
बीज़ शब्द- सिनेमा,नारी,छवि,मिथक, परम्परा।

भूमिका -

सिनेमा की पहुँच समाज के बहुत बड़े वर्ग तक है, इसीलिए मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक दायित्व निभाने का सवाल भी यहाँ जुड़ जाता है, जब कोई फिल्म रोचक अंदाज में सामाजिक विसंगतियों के चित्र और कुछ सकारात्मक सन्देश संप्रेषित करने में समर्थ होती है तो उसे व्यापक स्तर पर सराहना भी मिलती है। हिंदी सिनेमा में नायिका एक ऐसा मिथक है, जिसकी अनुपस्थिति में कोई फिल्म बन ही नहीं सकती लेकिन अब तक जिसकी उपस्थिति नायक समेत पेड़ों और फव्वारों के चारों ओर चक्कर लगाने के लिए ही होती रही है। कहानी का मूलाधार होने के बावजूद सिनेमा की नायिका को बार-बार कंडीशन किया जाता रहा है, खुद नायिका ही मिथक को बार-बार तोड़ती रही है। अगर कभी कहानी ने उसे घेरे में जकड़ने की कोशिश की तो उससे एक विद्रोह भी हुआ। यह अलग बात है कि बोक्स ऑफ़िस के भूत के डर से फिल्मकारों ने स्त्री को परंपराओं से बाहर निकलने ही नहीं दिया क्योंकि दर्शक वैसी ही सहनशील नारी की छवि देखना और उस पर सहानुभूति जताना चाहते है। जो उसके मानदंडो पर सही ठहरती हो, दर्शक सब कुछ पचा सकता है-एक अकेला नायक सौ–पचास गुंडों को धराशायी कर दे, अकेले के दम पर स्त्री की रक्षा करता हुआ, कोठे पर लगातार बुरी नज़रों की शिकार पवित्र तवायफ बड़े- बड़े डायलोग बोलती नायिका हो, सब कुछ धड़ल्ले से चल जाएगा। हिंदी फिल्मों की नायिकाओं ने एक लंबे अरसे तक अपनी महिमा मंडित छवि को पुष्ट करने के लिए त्याग, ममता और आंसूओं से सराबोर अपनी तस्वीर दिखाई और बोक्स ऑफ़िस पर खूब वाह वाही भी बटोरी है। पिछले दो दशकों में भारतीय महिलाओं ने महिलाओं के रूप में काम करना शुरु किया है और पिछले दशक में यह संख्या नाटकीय रूप से बढ़ी हैं।

"बॉलीवुड ने मानक माँ के पात्रों से लेकर साइड गर्ल के पात्रों तक, और मुख्य चरित्र से एक उत्तरजीवी के रूप में मुख्य चरित्र से एक प्रेमिका के रूप में एक लम्बा सफ़र तय किया है. बॉलीवुड फिल्मों में कामकाजी महिलाओं की भूमिकाओं ने दृष्टिकोण को व्यापक बना दिया है और भारतीय फिल्मों में महिलाओं को चित्रित करने के लिए कई बार बढ़ावा दिया हैं।"1

सिनेमा ऐसा ही एक जनमाध्यम है जिसका महिलाओं के ऊपर बहुत व्यापक प्रभाव होता है, ऐसे में यह जानना जरुरी हो जाता है की आखिर सिनेमा में महिलाओं के साथ कैसा बर्ताव हो रहा है। महिलाओं को किस रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश हो रही है, क्या महिलायें अब भी लोगों , विशेषकर एक खास पुरुष वर्ग के मनोरंजन का साधन है, या उनकी अपनी स्थिति में भी सुधार की शुरुआत हुई है। भारतीय सिनेमा के इतिहास पर समग्रता में एक नजर अगर डाली जाये तो हम ऐसी नायिकाओं को भी पाएंगे जो मिथक को तोड़ भी रही है और अपनी स्थितियों में मुक्ति का एक आख्यान भी बनती रही है।

भारतीय सिनेमा में लंबे समय तक पुरुष का वर्चस्व रहा है| नायिका केवल नाम मात्र की होती थी, भारत के दर्शक परंपरा को ही देखना पसंद करता है| जैसे कि समाज भी नायिका को पतिव्रता और संस्कारी देखना चाहता है| सिंदूर लगाए, करवाचौथ या मंगलसूत्र लगाना आवश्यक है| 'एक चुटकी सिंदूर की कीमत तुम क्या जानो रमेश बाबू' बोलते हुए स्त्री को हम देख सकते हैं| परम्परा के नाम पर वह घूंट-घूंट कर जी रही स्त्री की छवि सब देखना पसंद करते हैं| शराबी पति तक को छोड़ना नहीं चाहती वह गाती रहती है – "न जाओ सैया छुडाके बैयां कसम तुम्हारी मैं रो पडूँगी"……गाती हुई स्थिति दयाजनक लगती है, तो कभी "तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्ही मेरी पूजा तुम्हीं देवता" …………आदि। ठीक इसी तरह "बॉक्स ऑफ़िस पर भी कामयाब होती यह फ़िल्में इस धारणा को पुख्ता करती है कि आज हिंदी फिल्मों में उभरती नई नायिकाओं के किरदार को और अपनी ज़मीन पहचानती लड़कियों की अलग किस्म की मानसिकता को आम दर्शक अपनी स्वीकृति देता है! जैसे-जैसे कहानियां नई स्त्री की तलाश करती जा रही है, वैसे-वैसे नायिकाएं बदल रही हैं। जैसे-जैसे स्त्री की उपस्थिति और उसकी भूमिकाओं का मूल्यांकन होता जाएगा, वैसे-वैसे नई स्त्रियां आती जाएंगी और नायिकाओं का चेहरा और चरित्र बदलता जाएगा। इसकी आज सख्त जरूरत भी है, दरअसल नए माहौल में स्त्री के बदलते चेहरे को पहचानने की कोशिश की जा रही है और इसमें अनंत संभावनाएं हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।"2

यही परोसा गया है लेकिन आज भारतीय सिनेमा के तेवर भी बदलते नजर आये हैं| स्त्री का एक वजूद भी दृष्टिगत होने लगा है| हिंदी सिनेमा में निरंतर स्त्री की छवि बदलती हुई देखाई देती है| बेशक सिनेमा मनोरंजन जनमानस में पैठी हुई प्रवृतियों में यह भी देखा गया कि हंटरवाली नाडिया का रूप सबसे पहले सिनेमा के परदे पर आया जो स्त्री के लिए वर्जित क्षेत्र में जाती है| भारतीय सिनेमा में नरगिस का अपना दौर था, उसके बाद दामिनी, लज्जा, मृत्यु दंड, प्रतिघात, जख्मी औरत, अंजाम, खून भरी मांग, अस्तित्व आदि फिल्मों की नायिकाओं ने एक नयी राह बनाई|

सिनेमा में नारी –

हिंदी सिनेमा का प्रारंभ वैसे तो सन-१९३१ से आर्देशर ईरानी निर्देशित 'आलम आरा' से ही होता है| उसके बाद नारी जीवन की विडंबनाओं को अछूत कन्या, दुनिया ना माने, आदमी, देवदास, इंदिरा एम. ए, बाल योगिनी आदि फिल्मों में नारी जीवन से संबधित बाल विवाह, अनमेल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा आदि समस्याओं को उभारा है| इन फिल्मों में समस्याओं को दिखा भी दिया तो भी कृत्रिमता ही नजर आई है| ससुरालवालों का अत्याचार सहते-सहते भी पति को परमेश्वर मानती हुई दिखाई गई है| हिंदी सिनेमा में स्त्री लगभग तीसरे दशक के बाद से ही सिनेमा के निर्देशन, संगीत, लेखन के क्षेत्र में नजर आने लगी| स्त्री की सिनेमा में भागीदारी में कल्पना लाजमी, मीरा नायर, दीपा मेहता, तनूजा चंदा, फराह खान, पूजा भट्ट, जोया अख्तर आदि नायिकाओं ने अपनी अलग पहचान बनाई है|

५० से ६० के दशक में विमल राय, गुरु दत्त, महबूब खान और राज कपूर जैसे फिल्म बनाने हस्तियों ने नारी के कई रूप माँ, पत्नी, प्रेमिका का सही रूप दिखाया है| सिनेमा में ७० से ९० दशक में नारी का अलग रूप उभर कर आया है| परदे पर बदलाव केवल परदे तक सिमित न रहकर वह समाज में भी बदलाव लेकर आया है|

आर्देशर ईरानी की 'किसान कन्या' महबूब खान की 'औरत' और 'मदर इण्डिया' और जे.पी.दता की गुलामी में रीना रॉय को भी इसे बेहतर ढंग से देखा जा सकता है| विभाजन के तौर पर हम ग्रामीण नायिकाओं को श्रम संस्कृति और शहरी नायिकाओं को मांसलता और यौनिकता के प्रतिनिधि के तौर पर रख सकते हैं| ऐसा इसलिए भी है कि एक उत्पादन के आदिम चरण पर खड़ी है तो दूसरी बाजार और वितरण के आधुनिक और प्रचलित चरण पर शोषण से दोनों को निजात नहीं है पर अधिकांश फिल्म निर्माताओं का मकसद सामाजिक नहीं पूरी तरह से व्यावसायिकता है लेकिन इन सब तथ्यों के बावजूद सच्चाई यह है की महिलाये घरों से बाहर आ रही है. मशहूर फिल्म अभिनेत्री शबाना आज़मी भी महिलाओं के सशक्तिकरण के महत्व को रेखांकित करते हुए कहती है, "आज देश में४९प्रतिशत आबादी महिलाओं की है और हम एक सभ्य देश तभी बना पाएंगे जब ये ४९ प्रतिशत आबादी सशक्त हो जाएगी ." सिनेमा महिलाओं के कामकाजी एवं सशक्त रूप को दिखाकर लोगों के विचार में बदलाव लाने और इस दिशा में उन्हें प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।"3

सिनेमा में नारी का बदलता चरित्र-

फिल्मों ने स्त्री जीवन के कुछ ऐसे पहलू को उठाया जो शायद अब तक किसी कोने में दब गया था| इन फिल्मों ने स्त्री जीवन के परिवारिक और सामाजिक सवालों को ही नहीं उठाया है, बल्कि राजनीतिक सवालों को उठाया। सूरज का सातवा घोडा (१९९२), दामिनी –(१९९३), बेंडीट क्वीन –(१९९४), मम्मो-(१९९४), फायर-(१९९८), सरदारी बेगम –(१९९८), मृत्यु दंड –(१९९८), गॉड मधर(१९९९) ,हरी भरी-(१९९९), गजगामिनी, अस्तित्व, जुबैदा, क्या कहना, लज्जा, चांदनी बार आदि अनेक फिल्मों में नारी का चित्रण हुआ है|

स्त्री की जद्दोजहद अपने अस्तित्व को तलाशने की एक अनवरत प्रकिया परदे पर भी देखी जा सकती है| इसे गोड मधर, फायर, मृत्यु दंड और इशकिया से लेकर डर्टी पिक्चर तक एक अलग ही दौर है, उसके आगे लिव इन रिलेशन शीप को लेकर बनी फिल्म में हम देख सकते हैं, लव आज कल, शुद्ध देशी रोमांस जैसी फिल्मों ने मुक्ति के अपने रास्ते और खुद की पहचान का नया रास्ता ढूंढ ही लिया है| धीरे-धीरे स्थितियां बदल रही है 'गोड मदर' में अपने आत्मसम्मान और प्रखर मेघा और कुटनीति के साथ दिखती हैं, तो धूल का फूल में कुंवारी मां अपने बच्चे को स्वीकार करती हुई 'क्या कहना' में भी वही स्वीकृति को देखा जा सकता है| 'भूमिका' में अपनी अस्मिता तलाशती स्मिता पाटिल, 'अर्थ' में शबाना का पति प्रेम से उबरती हुई, 'अस्तित्व' में तब्बू के माध्यम से स्त्री की महज महत्वाकांक्षाओं को देखा जा सकता है| नायिकाओं का स्टीरियोटाइप इमेज से बाहर स्त्री की अस्मिता को पहचानने की कोशिश करना, क्वीन की नायिका का अपना संसार देखा जा सकता है| इंगलिश विंग्लिश की अधेड उम्र की नायिका की चाहत आज के दौर के साथ चलने की कोशिश में सफलता प्राप्त करती है| क्वीन की नायिका मध्यमवर्ग के परिवार के घर की स्थितियों तथा एक परिवार द्वारा शादी के लिए रिजेक्ट करने के बाद भी वह खुद अकेले हनीमून पर विदेश चले जाने का फैसला लेती है| आज इसने सारे भ्रम मिटा दिए जैसे कि हनीमून पर दो लोग जाते है लेकिन यहाँ पर भी दूसरे पात्र का होना, नहीं होना उसे कोई फर्क नहीं पड़ता ये एक पुरुष को चेलेन्ज है तू क्या नकारता है तेरे बगैर भी स्त्री की यात्रा रुकनेवाली नहीं है|

'क्वीन' फिल्म में महिलाओं के जीवन का एक मात्र उद्देश्य पति परमेश्वर नहीं है, उसके अलावा अपनी पहचान की अपेक्षा रखती है| क्वीन की नायिका साधारण सी लड़की जिसकी शादी होनेवाली है, वह हर एक लड़की की तरह सपने संजोती है, लेकिन विदेश में पला बड़ा लड़का उसे देशी मानता है और उसके साथ शादी तोड़ देता है| उस लड़की

का सपना कोई चाँद छूने का नहीं था, बल्कि शादी में खुश रहने का था| उसमें कौन-सा उसने गुनाह कर लिया मासूम लड़की शादी तो नहीं, लेकिन अपने हनीमून के लिए अकेले ही यूरोप चली जाती है| स्त्री चाहे घर में रहे या बाहर सुरक्षित नहीं है, उसे वहां पर भी एक नए संघर्ष के साथ रहना पड़ता है| सिनेमा के माध्यम से केवल वर्त्तमान ही नहीं भविष्य के द्वार भी खोलता हुआ नज़र आता है| अनेक समस्याओं में भी वह अपना एक नया रास्ता बनाती हुई आगे बढती है| अपने अनुभवों से सब को अपना बना लेती है, सभी जगह लोग निष्ठुर ही नहीं होते अच्छे लोग भी होते हैं| यह कहानी बहुत कुछ कह जाती है|

'डेढ़ इश्किया' इस फिल्म में तीन स्त्रियों की कहानी है| कोई साधारण स्त्री की कहानी नहीं है लेकिन कुछ नई बात है, जो हमें सोचने पर मजबूर करती है| माधुरी दीक्षित एक ऐसी स्त्री की भूमिका में है जो अपने जीवन के अकेलेपन को तोड़ने के लिए किसी मर्द के कंधों का सहारा आसानी से नहीं लेती है बल्कि बाकायदा स्वयंवर रचती हैं, एक स्त्री के लिए एक दूसरे से बेहतर दिखने की प्रवृति को देख एक सुख का अनुभव करती हुई देखती है| स्त्री अस्तित्व की एक अलग कहानी है|

'हाईवे' इम्तियाज अली की एक ऐसी कहानी है जिसमें नायिका आलिया भट्ट ने अपना किरदार बखूबी निभाया है| आये दिन घर के बाहर की समस्याएं हम लोग देखते हैं, लेकिन घर के भीतर भी जो समस्याओं का सामना कर रही हमारी बहु- बेटियों की पीड़ाओं से हम अनजान है यह फिल्म एक ऐसी ही कहानी को लेकर चलती है| समाज में स्त्री घर में अपनों के बीच भी सुरक्षित नहीं है तो बाहर की तो बात ही क्या करें ? जो स्त्रियाँ घर में पीड़ित है लेकिन उसे किसी भी तरह चुप किया जाता है, घर के लोग भी समाज के डर से उसे बोलने से रोकते हैं| अपने घर में आनेवाले रिश्तेदारों, संगी, साथी और पड़ोसियों जो हमारे घर का हिस्सा बन कर रहते हैं आज उन लोगों पर भी हमें नजर रखनी होगी, घर का ही कोई सदस्य दुश्मन न बने उसका ध्यान आकर्षित करनेवाली फिल्म है| आलिया भट्ट बचपन में यौन शोषण का शिकार लड़की के चरित्र को निभाती है | शायद ऐसी आलिया हजारों हैं अपने आसपास जिन्होंने चाचा-मामा के नाम पर अपने साथ हो रहे अन्याय को सहा होगा| चांदनी बार की कहानी भी कुछ ऐसी ही है| समाज में हम हिदायत देते हैं लड़कियों को अनजान लोगों से बचने की लेकिन घर के ऐसे लोगों से कैसे बचेगी हमारी लड़कियां? और कहाँ जाएगी और किसे सुनाएगी?

'गुलाब गेंग' फिल्म स्त्री के पक्ष को अलग तरीके से रखती है| सच्ची घटना के बारे में यह फिल्म है| फिल्म की घटना को छोड़, याद नहीं आता की एक साथ कब इतनी सारी स्त्रियाँ झुण्ड बनाकर गुंडों को पिटती होगी ऐसा, माधुरी प्रमुख नायिका है, जिन्होंने उनकी बेटा, लज्जा, मृत्यु, अंजाम और आजा नच ले इस तरह की भूमिकाओं में पारंगत है| स्त्री सह ले तो घर में भी शोषण होता है और ठान ले तो पूरे गाँव के साथ पंगा ले सकती है| समाज को चुनौती देती हुई औरत सच में अपने साथ हो रहे अत्याचार के खिलाफ खड़ी हो जाई तो किसी की हिम्मत नहीं की स्त्री के जीवन के साथ कोई खेल सके |

'रिवोल्वर रानी' स्त्री के स्वर को उभारने वाली फिल्म है| सिनेमा में परिवर्तन हो रहा है नायक के स्थान नायिका का वर्चस्व मजबूरी में रिवोल्वर उठाना भी जानती है, और प्यार में पिघल भी सकती है|

'मेरी कोम' एक स्त्री की जिजीविषा और प्रगतिशील चेतना की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है| उन तमाम लड़कियों औरतों के लिए एक प्रेरणा की तरह है जिनके जीवन में सिर्फ अभाव है| शून्य से शिखर तक पहुँचने की कहानी है| स्त्री की अस्मिता और स्त्री चेतना का एक नया रूप हमें दिखाई देता है| भारतीय समाज का कोई भी हिस्सा हो, क्षेत्र हो स्त्री का संघर्ष बराबर चलता रहता हैं| "यह उल्लेखनीय है क्योंकि कॉम ने अपने कैरियर के दौरान जिन चुनौतियों का सामना

किया। वह अपनी शादी के बाद दो बच्चों की मां के रूप में वापसी करती है। तमाम बाधाओं के बावजूद कॉम ने अपनी अद्भुत यात्रा को बरकरार रखा है।"4

'मरदानी' एक महिला पुलिस अधिकारी की कहानी है जो यह बताती है कि कैसे एक महिला पुलिस अधिकारी के रूप में अपने कैरियर को बना रही है एवं मानव तस्करी का मुकाबला करती है यह फिल्म एक गंभीर विषय के बारे में ही नहीं बल्कि यह मानव तस्करी के अनेक रहस्यों को उजागर करने के लिए प्रेरित करती है। यह फिल्म यह बताने का प्रयास भी करती है कि महिलाएं किस प्रकार गंभीर परिस्थितियों का सामना कर सके।

'मसान' एक ट्रेनर देवी पाठक की कहानी है जो अपने प्रेमी की मृत्यु पर पश्चाताप के बावजूद उसने तर्कहीन सीमाओं को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने से रोकने से इंकार कर दिया। वह इस बात का एक बड़ा उदाहरण थी कि किस तरह समाज की खातिर एक महिला के पेशे को कभी भी कुर्बान नहीं किया जाना चाहिए।

'पीकू' फिल्म के किरदार पीकू ने हर पेशेवर महिला का अवतार लिया इस फिल्म में, और अपने पिता के प्रति उसकी अटूट भक्ति उसकी विषमताओं के साथ उसकी नाराजगी से मेल खाती थी। वह अपने कैरियर और व्यक्तिगत पसंद को लेकर आश्वस्त थी, फिर भी हम में से कई लोगों की तरह वह अभी भी शादी के सामाजिक दबाव में संघर्ष कर रही थी। सीधे शब्दों में कहें तो वे एक ऐसी महिला थीं, जिनसे हम सभी की पहचान हो सकती है।

'तुम्हारी सुलू' फिल्म की नायिका ने एक ऐसी गृहिणी महिला का किरदार निभाया जो देर रात रेडियो जॉकी के रूप में काम करती है। उससे केवल अपने परिवारों की देखभाल करने की अपेक्षा क्यों करते है, नौकरी एवं घरेलू दायित्वों को संतुलित करने के लिए रोजमर्रा का संघर्ष, परिवार की रूढ़िवादिता के खिलाफ कभी खत्म न होने वाली लड़ाई यह सभी विषय इस फिल्म के मुख्य थे। जिनसे जीवन के कई क्षेत्रों में महिलाएं संबंधित हो सकती है।

'पंगा' एक ऐसी फिल्म है जो उन अनगिनत श्रम का सम्मान करती है, जो माताएं अपने परिवारों में लगाती है। और साथ ही उन्हें अपनी आकांक्षाओं को कभी नहीं छोड़ने और खुद को दूसरा अवसर देने के लिए प्रोत्साहित करती है। एक महिला अपने परिवार की मदद से एक मां के रूप में खेल में वापसी करती है और ग्रैंड फिनाले में टीम इंडिया के लिए कबड्डी कप जीतती है। यह गृहिणी महिलाओं के लिए प्रोत्साहित करने वाली फिल्म है, कि वह अपने घर के कार्य के साथ-साथ अपने परिवार की मदद से अन्य क्षेत्रों में भी अपनी काबिलियत से अवसर ढूंढ सकती है।

निष्कर्ष -

स्त्री विमर्श चाहे साहित्य में हो या फिल्मों में एक नया अवतार एक नयी वाणी में स्त्री ने अपना द्वार खोल दिया है| परंपरा में बांधकर अभी तक पुरुष प्रधान समाज ने उसे कहीं रोक के रखा है, आज वह सपनों की उड़ान भर रही है और समाज, परिवार को भी नई रोशनी दे रही है। आज हिंदी सिनेमा में महिलाओं का सशक्त चित्रण हो रहा है, यह समाज की एक मांग है, और मांग होने के साथ-साथ अब महिलाएं अपने अस्तित्व को लेकर सचेत होने लगी है। वे अपने आत्मबोध के प्रति सावधान होती जा रही है, जो समाज का आधारभूत सच भी है। वह शादी जैसे फैसले स्वयं ले रही है, अपनी जिंदगी अपनी शर्तों पर जीना चाह रही है तो यह कहा जा सकता है कि आज हिंदी सिनेमा में नारी की छवि परिवर्तित होने के साथ-साथ सशक्त भी हुई है। २१वी सदी के सूचना युग में समाज में परिवर्तन हुआ उसके साथ नारी के जीवन में भी परिवर्तन आया है और वही एक तस्वीर फिल्मों में भी आने लगी है| स्त्री की उड़ान अब आसमान से पार तक की हो गई है|

संदर्भ-

1. मधुर भंडारकर की फिल्मों में स्त्रीवादी मीडिया दृष्टि, अनिल कामले, शिवालिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2016
2. स्त्री साहित्य और विश्व सिनेमा, विजय शर्मा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, प्रथम संस्करण 2018

3. हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, जबरीमल पारख, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006
4. हिंदी सिनेमा 20 वी से 21 वी सदी तक, संपादक प्रहलाद अग्रवाल, साहित्य भंडार इलाहाबाद, संस्करण प्रथम, 2009
5. विजय रंजन, बॉलीवुड की नारी गाथा , शिल्पायन , दिल्ली संस्करण, 2015
6. भारत और नीदरलैंड की प्रथम साहित्यिक पत्रिका http://amstelganga.org/

मो.9024444972
E-mail - kkmahar04@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 187-189
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में भ्रष्ट प्रशासन

मनीषा देवी
डिप्टी सुपरीटेंडेंट,
सी. आर एजूकेशन कालेज रोहतक

सामाजिक विकास के लिए जो अंग महत्वपूर्ण है, वह है राजनीति, न्याय, पुलिस इत्यादि व्यवस्था का आपसी सहयोग। परन्तु यदि देखें तो ये व्यवस्थाएँ नीति से दूर होती जा रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप जनता का इन व्यवस्थाओं के प्रति विश्वास उठना स्वाभाविक है। जहाँ राजनीति में अवसरवादिता आ गई वहीं न्यायव्यवस्था में भ्रष्टता, पुलिस की तानाशाही ने जनता को त्रस्त कर दिया है। इन्हीं स्थितियों का यथार्थ चित्रण भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यासों में करके इनका नग्न रूप पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। पुलिस जो जनता की सुरक्षा के लिए नियुक्त की जाती है वही तानाशाह बनकर जनता में आक्रोश का कारण बन बैठी है। पुलिस प्रशासन जहाँ अपराधों को नियंत्रित कर शान्ति बनाए रखने के लिए है, वहीं आज अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर तनाव को अधिक हवा देने में जुटी नजर आती है। 'काला पहाड़' उपन्यास में स्वास्थ्य विभाग पर करारी चोट करते हुए भगवानदास मारेवाल यह कहने में संकोच नहीं करते कि जिन डॉक्टरों को ईश्वर का दूसरा रूप माना जाता है, वही आज वरदान की जगह अभिशाप बन चुके हैं। जान बचाने की अपेक्षा वह मृत्यु की कगार पर पहुँच चुके व्यक्ति से भी पैसे एंठते नहीं हिचकिचाते। ''यही हाल यहाँ के इकलौते उस प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र का है, जिसका डॉक्टर गरीब मरीजों से खुल्लमखुल्ला सरकारी दवाइयों के पैसे लेने से नहीं चूकता है, और इलाज तक की उसने बाकायदा फीस तय की हुई है।''[1] गरीब लोग अपने इलाज के लिए सरकारी अस्पताल में जाते हैं मगर अब सरकारी अस्पताल के भ्रष्ट डॉक्टरों ने भी उपचार करने एवं दवाइयों के पैसे लेने आरंभ कर दिए हैं।

भगवानदास मोरवाल कृत 'काला पहाड़' उपन्यास में जब प्रधानमंत्री महू गांव में शहीदी मीनार का शिलान्यास करने आता है तो क्षेत्र के बुजुर्ग लोग प्रधानमंत्री से पूछना चाहते हैं क्यों उनको समय पर पेंशन नहीं दी जाती? वे शिकायत भी करना चाहते हैं कि पोस्टमेन और पोस्टमास्टर उनकी पेंशन में से कुछ पैसे स्वयं रख लेते हैं। ''कुछ बड़े बूढ़ों ने तो यहाँ तक तय कर लिया कि प्रधानमंत्री जी से यह जरूर कहना है कि उनकी पेंशन कभी मिलती है और कभी नहीं। अगर ऐसा है तो क्यों? कुछेक ने यह कहने का मन बना लिया कि प्रधानमंत्री जी के कानों तक यह बात पहुँचानी है कि उनकी पेंशन की रकम बढ़ाई जाए क्योंकि इस समय मिलने वाली पेंशन की रकम इतनी कम है कि पोस्टमैन और पोस्टमास्टर को उनका हिस्सा देने के बाद, उन्हें जो रकम मिलती है, उससे गुजारा करना बेहद मुश्किल है।''[2] प्रत्येक विभाग में कुछ ऐसे कर्मचारी होते हैं जो वेतन तो सरकार से लेते हैं आम जनता की सहायता करने का, मगर वे कर्मचारी अपने कर्त्तव्य को पूर्ण नहीं करते। गरीब जनता से पैसे लूटकर ही उनके कार्य को पूर्ण करते हैं।

वैसे तो प्रत्येक प्रशासनिक विभाग में भ्रष्टाचार, लूट–खसोट की नीति चली हुई है, मगर पुलिस प्रशासन में सबसे अधिक भ्रष्टाचार है। पुलिस की नियुक्ति इसलिए की जातीी है किसी पर अत्याचार न हो मगर वर्तमान में सबसे ज्यादा शोषण पुलिसकर्मी ही आम जनता का कर रहे हैं। जब रक्षक ही भक्षक हो गए हैं तो फिर कौन सहायता करेगा?

भगवानदास मोरवाल कृत 'रेत' उपन्यास में कंजर समाज का चित्रण किया गया है। कंजर समाज के लोगों का मुख्य व्यवसाय चोरी करना व देह का व्यापार करना है। गाजूकी क्षेत्र की औरतें देह का व्यापार करती हैं और उनके पति चोरी करते हैं। चोरी करते समय पुलिस के पकड़े जाने पर पति को जेल जाने से बचाने के पैसे देने पड़ते हैं। मगर पैसे ना होने की स्थिति में पुलिस कर्मचारी के साथ देह संबंध भी बनाने पड़ जाते हैं।

गाजूकी थाने में इंस्पेक्टर केहर सिंह ने कंजर समाज के पुरुष व औरतों के लिए रजिस्ट्री कानून लागू कर दिया, जिसके विषय में सुनकर जौहरी कंजर नरपत से कहता है, ''इसका मतलब रजिस्ट्री का डंडा अब भी चलता रहेगा। अपने मर्दों को हवालात से छुड़वाने के लिए जमानत के नाम पे दरोगाओं के बगल में सोना पड़ेगा।''[3]

'रेत' उपन्यास के कंजर समाज की रेखा और हेमा खिलावडी तिबारे में अपने खोखे रख लेती है। तिबारे क्षेत्र के सभ्य समाज के लोग इन खोखों का विरोध करने लग जाते हैं और सरपंच की शिकायत पर धरमपुरा थाने से पुलिस आ जाती है। खोने रखने की जमीन खिलावड़ियों द्वारा खरीदी गई थी। इस कारण पुलिस कुछ न कर सकी। पुलिस सरपंच को यह बोल कर चली गई कि अगरे ये इस क्षेत्र में देह व्यापार करें तो शिकायत कर देना फिर इनको जेल में डाल दिया जाएगा। मगर वास्तव में खिलावड़ियाँ धर्मपुरा थाने में देह व्यापार के लिए थाने में घूस देकर आती हैं। कमला बुआ वैद्य जी को कहती है, ''वैद्जी हमारा और इस पुलिस का तो जूं और घाघरी जैसा नाता है। न जूं से घाघरी छोड़ते बनती है, न घाघरी से जूं। वैसे भी हम पुलिस से बनाकर ना रखें, तो हमें कौन जीने दे। पता है धर्मपुरा कोतवाली में आने के लिए पुलिस महकमें में मोटी रकम चढ़ाई जाती है।''[4] इस प्रकार भगवानदास मोरवाल ने पुलिस प्रशासन में भ्रष्टाचार तथा इस पद के साथ अन्याय करते हुए दर्शाया गया है। वह पुलिस के प्रति निराश तो है ही साथ ही उन्हें अपने रक्षक अब भक्षक लगते हैं, जिनका काम केवल लोगों में तनाव उत्पन्न करना है और अपनी जेबें भरना है।

हमारे समाज में न्यायपालिका को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। कहा जाता है कि जिस देश की न्यायपालिका स्वस्थ हो, न्याय पर आधारित हो वहाँ की जनता को अपने अधिकारों के साथ–साथ संतोष भी प्राप्त होता है कि कहीं कुछ भी गलत नहीं हो सकता, परन्तु जिस राज्य की न्यायपालिका ही सुस्त हो वहाँ से जनता निराश तथा हतप्रभ होती नजर आती है। निर्भया काण्ड में दोषित आरोपियों को सजा देने में पूरे सात साल लग गए, इससे हमारे देश की न्यायव्यवस्था को भली–भांति समझा जा सकता है। 'वंचना' उपन्यास में जानकी के साथ हुए बलात्कार के जुर्म में रामकरन को अदालत में किसी तरह की सजा नहीं सुनाई जाती। अदालत की राय थी, ''इज्जतदार और बड़ा आदमी किसी का, वो क्या कहते हैं बलात्कार कर ही नहीं सकता। दूसरा, यह कहा कि कोई मर्द अपने किसी सगे–सम्बन्धी के आगे ऐसा काम नहीं कर सकता। कोई अगड़ी जाति का मर्द किसी छोटी जाति की औरत के साथ इसलिए ऐसा गलत काम नहीं कर सकता क्योंकि वह मैली होती है।''[5]

इस देश की प्रशासन व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए भगवानदास मोरवाल जी यहाँ की सरकार तथा आम जनता को सचेत करते हुए, समय पर आँखें खोलने का सन्देश देते हुए लेखक कहता है कि ''गजब है। बिना पढ़े रिकार्ड रूम में भेज दिया। यानि जिस निचली अदालत की तरफ से कातिलों के खिलाफ वारंट जारी होना चाहिए था, वहाँ तक फाइल पहुँची ही नहीं।''[6] यह छोटा सा प्रसंग है, परन्तु इसमें भारत की न्याय व्यवस्था का एक कटुसत्य हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है कि जिस देश की अधिकतम जनसंख्या निम्न वर्ग की है, वहाँ उन्हें न्याय मिलना तो दूर मुजरिम खुले में सांस लेने को आजाद है। यहाँ की न्याय–व्यवस्था उन्हें दूसरा जुर्म करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देती है, वकील भी अपनी जेब भरने के लिए कई तरह के हथकंडे अपनाते हैं जैसे वकील ब्रजनंदन को अपने वरिष्ठ साथी का दिया हुआ गुरूमंत्र याद आता है ''मुवक्किल से फीस तभी ले लेना, जब उसकी आँखों में आँसू या हाथ में हथकड़ी पड़ी हो। आँसू सूखने और हथकड़ी खुलने के बाद कोई भला आदमी फीस नहीं देता।''[7]

'शकुन्तिका' उपन्यास में जब उग्रसेन के घर उसका पोता जन्म लेता है तो वह पूरी रात इसका जश्न मनाते हैं, यहाँ तक कि पूरी रात डीजे की आवाज से पड़ोसियों की नींद हराम हो जाती है, परन्तु उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भारत देश में जहाँ रात के दस बजे के बाद

किसी भी प्रकार का लाउडस्पीकर या डीजे बजाने पर प्रतिबन्ध है, वहीं प्रशासन तब तक अपना काम नहीं करता, जब तक कोई शिकायत दर्ज न करें। ''हमारे देश के कानून और इसे लागू करने वाली व्यवस्था इतनी उदार और संस्कृति पोषक है कि किसी की भावनाओं को आसानी से आहत नहीं होने देते हैं। इसलिए वे तब तक दहाड़ते रहते हैं, जब तक कोई दुःखी होकर इनकी कोई शिकायत न कर देता।''[8] इतना ही नहीं जब सिया की शादी के लिए लड़का ढूँढ़ा जाता है और वह ठेकेदार निकलता है तो उग्रसेन के माध्यम से मोरवाल जी ठेकेदारों के जरिये नेताओं व अफसरों की कमाई का कच्चा–चिट्ठा खोल देते हैं ''यानि ठेकेदार है। रात–दिन पैसों में खेलता है। फिर तो ठेके भी अफसरों और नेताओं को घूस देकर लेता होगा? जब ठेके ही घूस देकर लेता है, तो मिलावट भी खूब करता होगा?''[9]

बलवंत इसका उत्तर बड़े ही सहजता के साथ देता है कि आजकल बलवंत इसका उत्तर बड़े ही सहजता के साथ देता है कि आजकल बिजनेस ईमानदारी से नहीं होता। बिना लिये–दिये ठेके पास नहीं होते हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिखाया है। सरकार के द्वारा समाज के लोगों की सेवा एवं सहयोग के लिए कर्मचारियों, अफसरों की नियुक्ति की जाती है, मगर ये लोग आम जनता की सेवा न करके गरीब लोगों से अपनी सेवा करवाते हैं। पुलिस को जनता के रक्षक के रूप में जाना जाता है, मगर वर्तमान समय में रक्षक ही भक्षक बन गए हैं। इस प्रकार मोरवाल जी ने अपने उपन्यासों में भ्रष्ट प्रशासन को दिखाया है।

संदर्भ

1. मोरवाल, भगवानदास, काला पहाड़, पृष्ठ 29
2. मोरवाल, भगवानदास, काला पहाड़, पृष्ठ 29
3. मोरवाल, भगवानदास, रेत, पृष्ठ 41
4. मोरवाल, भगवानदास, रेत, पृष्ठ 147
5. मोरवाल, भगवानदास, वंचना, पृष्ठ 91
6. मोरवाल, भगवानदास, वंचना, पृष्ठ 71
7. मोरवाल, भगवानदास, शकुन्तिका, पृष्ठ 8
8. मोरवाल, भगवानदास, शकुन्तिका, पृष्ठ 104
9. मोरवाल, भगवानदास, शकुन्तिका, पृष्ठ 111

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 190-194
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

THE CLIMATE CHANGE AND NATIONAL SECURITY

DR. RAM TIWARI
ASSISTANT PROFESSOR,
DEPARTMENT OF DEFENCE AND STRATEGIC STUDIES,
V.S.S.D PG COLLEGE KANPUR

Science and technological progress makes it possible to ensure a life of plenty on earth, to create the material conditions for the flourishing of mankind. Yet these very products of man's brain and hand are being turned against him due to selfish class-inspired ambitions and in pursuit of enrichment by the capitalist world's ruling elite. Naturally, science and technology by themselves do not threaten peace. The threat comes from international reaction, and notably, US imperialism, using scientific and technological advances for aggressive ends.

Environment is defined as the aggregate of all external conditions and influences that affect the life and development of organisms. Fortunately, the responsible world is aware of the effects of environment on survival of life on the planet. There is focussed attention on major environmental issues. When localised, the issues are those that affect the territorial integrity or political stability of a nation such as disputes over scarce water resources, or rehabilitation of hapless refugees fleeing a degraded environment in search of a better life. National governments have to see the global impact of environment while managing environmental security.

Future climate and its impact could well trigger bloody wars fought over access to basic necessities like drinking water. The greenhouse effect is causing melting of glaciers that are precious reservoirs of clean water. Not only would the melt destroy the world's freshwater reservoirs, it is projected to cause floods and droughts, reduce the area of arable land, adversely impact fish and food stocks, erode coastlines as sea levels rise and trigger large movement of populations to safer areas. Climate refugees could face hostility from local residents and this could lead to conflict. Large-scale migration and competition for resources could become a serious security challenge.

Environment, in its natural state, has its complex physical, chemical and biotic factors that act upon an organism or an ecological community and ultimately determine its form and survival. Environmental security relies more on the protection and preservation of the environment to make it more potent for sustainable development and survival of life on earth than on response activities. Currently, environmental security, in its serious sense, is applicable to the three geophysical terrains—land, ocean and air space. It is yet to extend seriously to the no-geographical, though physical, outer space. There are already concerns of outer space becoming an overhead (Albert Einstein may not favour this expression) junkyard of space vehicles, burnt-out rockets, slipped-off screwdrivers and other knick-knacks. It may be a short gap before the world communities seriously take note of clean outer space contiguous to the

air space. Outer space is the terrain through which the earth gets blasted every moment with harmful radiation. The ozone layer at the outer border of air space acts as an armour, protecting the planet from harmful rays. It is reported that ozone depleting gases have pierced the ozone layer creating a hole that is likely to expand, over the South Pole.

Challenges to environmental security

Ironically most of the challenges to environmental security originate from activities meant to improve standards of human life. Identified causes are:

- Rise in population and their insatiable need for resources
- Clash of developmental projects with the environment
- Overuse of renewable resources
- Wasteful use of resources
- Use of environment damaging resources including fuel
- Terrain abuse
- Inability to appreciate the interactive matrix of the geophysical terrains
- Disasters that cause permanent changes in environment
- War and military preparations
- Causalties, and acts of sabotage and terrorism
- Toxic wastes and hazardous materials
- Problems of legislation and enforcement
- Global warming and climate change

Population growth

Population growth induces pressure on the environment, thereby making the policies and measures inadequate for its protection and regenerative preservation. Though there is a different school of thought advocating that population, if controlled and made supportive, is good for a nation. An oversized population increases demand for resources and energy.

Development and environment

Development work often encroaches into sustainable and life-supporting environmental areas. The result will be destruction of life-sustaining habitats.

Resource usage

Over consumption, exploitation and wastage of resources can leave a telltale effect on the world permanently.

Terrain abuse

Terrain abuse in developmental and habitation activities is far too common. Degradation of land, air and ocean is a much feared subject.

Lack of appreciation of the interactive matrix of geophysical terrains

The three geophysical terrains are environmentally interactive. Activity in one can cause collateral damage in another. This has to be understood.

Disasters

While a disaster-free world is hard to imagine, the beginning of a solution for environmental security is based on the principles of zero disaster policies.

War and military preparations

War and military preparations can cause serious damage to the environment. It has an ancient beginning when the Romans destroyed the fields of Carthage by spreading salt. In the modern world, the United States experimented with chemical weapons and climate modifications in Vietnam. Environmental warfare techniques are quite seriously etched in the memories of the Vietnam War. In the Persian Gulf War of 1991, the retreating forces of Saddam Hussein intentionally set fire to oil wells causing unprecedented air and water pollution. The Environmental Modification Convention of 1997 forbids hostile use of environmental modification techniques having widespread, long-lasting or severe effects as the means of

destruction, damage, or injury to any other state party. Wars can destroy environment. A nuclear winter may follow large-scale nuclear war. Outer space if used for military purposes could be contaminated, making Earth an unsafe habitat.

Causalities, and acts of sabotage and terrorism

An accident can cause serious environmental damage. The accident at the Chernobyl nuclear power station in the former Soviet Union on 25-26 April 1986 was the worst in history so far. Such causalities are bound to happen anywhere and at anytime when human slackness overpowers caution.

Toxic wastes

Currently, production, trade, use and release of synthetic chemicals and toxic wastes are widely recognised as a threat to human health and environment, but safe handling of these wastes is a neglected practice.

Legislation and enforcement

Legislation and enforcement calls for stringent laws without affecting the normal "traffic ad business" at national and international level. Such laws will also need the backup enforcement that includes a quick delivering judicial system.

Global warming and climate change

Global climate change is considered as one of the major issues that may affect environmental security. The starting point was the alarm caused by the discovery of a hole in the ozone layer over Antarctica in 1985. Chlorofluorocarbons are the principal cause of ozone depletion. According to author Paul Brown, large parts of the civilised world may not survive if global warming is not arrested. Small coastal and island nations are likely to disappear below the rising sea when the ice-caps melt. James A. McCarthy, an environmental scientist based in Harvard University, predicts that most of the earth's people will be on the losing side. There are also voices that say global warming is nothing new, but a cyclic process in which the world gets hot and cold periodically since it has not yet settled down.

Global warming is a problem that cuts across national boundaries; it has to be dealt with by the international community working together. Despite growing scientific evidence our present patterns of consumption and production are leading to a massive disruption of the planet's life support systems, particularly of our climate and essential resources such as water, the most governments continue to hide their respective heads in the sand. Global warming threatens the very survival of the planet just as the possibility of a nuclear holocaust did in the cold war years. Yet is remarkable how the G-8 continues to waffle on the subject. The G-8 summit at Heiligendamm, Germany, got nowhere near agreeing to German Chancellor Angela Merkel's proposal that world emissions be halved by 2050. If that seemed too ambitious to G-8 leaders, and US in particular, they might as well have declared that they did not want to deal with the problem even as the doomsday clock ticked away. No doubt the world may have crossed the tipping point, or the stage after which climate change will become irreversible. Considering the already unfolding consequences of the climate change, what are the world leaders waiting for.

The G-8 is the world's economic top table, without those economies, the world would be in an even greater state of the poverty than it already is, with one-third of humanity surviving on less that $ per day. All of us are dependent on the G-8 for our present and future prosperity. The G-8's staple diet should be economic issues, but the greatest long term threat to life on this planet goes further. G-8 or rich countries are too broke to save the world, they have money for weapons and research on ribbed condoms. But not for fighting global warming. They have money for everything which keeps the engines of economy running, but not for making the world safe for living with clean air and water. Climate change affects us all. Therefore, it is only a truly global effort that can save the world.

Developed countries should cut their carbon emissions at least by 80% by the year 2050, with 20-30% cuts by 2030, if the earth has to be saved from a complete environmental catastrophe, says the Human Development Report (HDR) 2007 released on Tuesday, Nov. 27, 2007. The report also calls for 20% cuts in carbon emissions by fast growing economies like India and China. These steps would stabilise CO_2 equivalent concentration at 450 parts per million in the atmosphere (currently it is 379 process would be only 1.6% of global GDP upto 2030. To achieve these emission targets, the report proposes a set of policies which include carbon taxation, cap-and-trade programmes, reduction in emission quotas, encouraging renewable energy through economic incentives, stringent implementation of efficiency measures in industry, buildings and transport and support to breakthrough technologies for carbon capture and storage.

The United Nations Development Programme's annual report focuses on various aspects of human development like health, gender and poverty every year. The 2007 report makes a stronger case for action on climate change which it calls the 'defining human development issue of our generation." Drawing upon the scientific evidence revealed by the Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC), the UN report says that there is a small window of opportunity in this century for limiting the global temperature increase of 2 degrees Centigrade. If this is not done, humanity will face a series of climatic changes that will wreak havoc on the planet. These will include flooding of coastal areas crop failures, epidemics, severe water scarcity, and increase in natural disasters.

In perhaps the most severe indictment of the way governments have been handling the issue of climate change, last year's report says "the gap between scientific evidence and political response remains large." "The world's poor and future generations cannot afford the complacency and prevarication that continues to characterise international negotiations on climate change." It says, calling for a slew of measures to hasten global cooperation on the issue. World leaders are stated to meet in Bali, Indonesia, in December last year to discuss measures for controlling carbon emissions. The Kyoto Protocol which called for voluntary cuts in emissions is set to expire in 2012, but major emitters like the US and Australia have not signed it.

Greenhouse Gases: Major Culprits

Country	CO_2 Emissions (Million Tons)	Growth rate (1990-2004)	CO_2 Emissions per capita (Tons)
United States	6046	25	20.6
China	5007	109	3.8
Russia	1524	-23	10.6
India	1342	97	1.2
Japan	1257	17	9.9
Germany	808	-18	9.8
Canada	639	54	20.0
United Kingdom	587	1	9.8

Korea	465	93	9.7
Italy	450	15	7.8
World	28983	28	4.5

The world is in our hands. As we entered the third millennium, humanity is faced with a daunting challenge. The global economy is expanding amidst a global deterioration in the environment. In this articles argue, unless we arrest the current trends in the environment of planet earth, there will soon be an economic decline as well. We need a shift in paradigms to deal with shrinking forests, falling water tables, disappearing plants species and the changing climate. There is no time to lose. The balance of nature is being destroyed through sound, air and water pollution, causing danger to the lives of all living beings. It is time for us to wake-up and safe-guard our earth for today and tomorrow. The environmental challenges in India mirror those in the rest of the world. Here, people's movements to protect the environment and livelihoods are calling for a new model of development that provides benefits for all without stripping the environment and destroying livelihoods.

As the 21st century begins, several well-established environment trends are shaping the future of civilization like population growth, rising temperature, falling water tables, shrinking cropland per person, collapsing fisheries, shrinking forests and the loss of plant and animal species. Global average temperature has also risen during the last three decades—the period when carbon dioxide (CO_2) levels have been rising most rapidly. The rich countries are too broke to save the world, they have money for weapons and research. But not for fighting global warming. They have money for everything which helps the engineers of economy running, but not making the world safe for living.

The time has come for the save world from global warming earth on fire.

- Let us have deeds, not words.
- Let us have life, not death.
- Let us have peace, not war.
- Let us have policy, not dilemma.
- Let us have prove, not promise.
- Let us have security, not ruin.
- Let us have bread, not bomb.
- Let us have survival, not elimination.
- Let us have new clear concept, not nuclear development.
- Let us work towards a clean, green and healthy atmosphere. For today and tomorrow.

It can be done, if the people of the world unite to do it. Start today, because tomorrow, we may not have a planet left to save.

A more secure world is our shared responsibility. Hazards to our security must be countered where they emerge. Today, the world's focus is on economics. Since the planet's resources are limited, and our lives are driven by the engine of economics, war is inevitable. Unless subtler aspect of life becomes important, peace remains a dream. Our greatest priority should be changing people's mind-set and behaviour so that they are grounded in a culture of peace.

In 2011, as a nation we are once again at critical crossroads, we can either allow ourselves to descend in chaos and anarchy or rise to peace and prosperity. It is my hope that we will rise as one to face this challenge, and leave a better world for future generations. As any journey begins with a single step therefore, we need to chart the direction we are heading

in our quest to better manage our environment to support sustainable development and to maintain the quality of life we want to enjoy now and in the future.

We should always remember that **do not fear your enemies the worst they can do is kill you. Do not fear your friends—the worst they can do is betray you. Fear the indifferent—they neither kill nor betray, but only with their silent consent do betrayal and murder exist on earth.** All peoples, every inhabitant of our planet must become aware of the impending danger, become aware of it in order to pool their efforts in the struggle for existence. In conclusion I would like to say that I believe green peace is likely not only to remain international in its scope and vision but will become increasingly global threat and opportunities. None than this, I believe it is clear that, due to the dominance of industrialism, the main difficulties we face-ecological and societal in the form of rethinking politics and its relation with environment, economics, science and technology—are found in very similar forms all over the world. It is time for us to wake-up and safeguard our earth for today and tomorrow.

References

1. Survey of the Environment-2000, The Hindu Publication.
2. Editorial: Times of India.
3. Global Warming, Subodh Verma, Times of India, Nov. 29, 2007.
4. National Security, Prabhakaran Paleri, New Delhi.
5. Environmental Education, R.L. Madan, New Delhi.
6. Whence the threat to peace, Military Publishing House, Mascow, 1987.
7. Global warming issue, Dr. S.K. Mishra.
8. Nuclear Holocaust: A Threat to all, S.K. Mishra.
9. Human Development Report 2007/2008.
10. India Vision 2020
11. The Tribune Sunday January 9, 2011
12. Neil Padukone; Security in Complex Era : Emerging Challenges Facing India, New Delhi.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 196-199
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद और पंथनिरपेक्ष शब्दों को जोड़े जाने के कारणों का विधिक अध्ययन" (42वें संविधान संशोधन 1976 के विशेष संदर्भ में)

डॉ. भूपेंद्र करवन्दे
सहायक प्राध्यापक,
रत्ना श्रीवास्तव
शोधार्थी,
शा.जे. योगानन्दम छत्तीसगढ़ कालेज(छ.ग.) कलिंगा यूनिवर्सिटी रायपुर(छ.ग)

1.भूमिका–

भारत का संविधान, जो विश्व के सबसे विस्तृत और जीवंत लोकतंत्र का मूल स्तंभ है, उसकी प्रस्तावना को संविधान की आत्मा कहा जाता है। यह प्रस्तावना भारतीय गणराज्य के उद्देश्यों, आदर्शों और मूल्यों को दर्शाती है। इनमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता जैसे सार्वभौमिक मूल्य निहित हैं। लेकिन प्रस्तावना में सम्मिलित कुछ विशेष शब्द जैसे समाजवाद और पंथनिरपेक्षता पर समय–समय पर वैचारिक और राजनीतिक विवाद उत्पन्न होते रहे हैं। वास्तव में जब संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ तब समाजवाद और पंथनिरपेक्षता शब्द प्रस्तावना का हिस्सा नहीं थे। ये शब्द आपातकाल के दौरान 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा जोड़े गए। इस संशोधन ने भारतीय संविधान की प्रस्तावना में "समाजवादी", "पंथनिरपेक्ष" और "एकता और अखंडता" जैसे शब्द जोड़े। तब से आज तक, यह विषय राजनीतिक दलों, न्यायविदों, इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों के बीच बहस का केंद्र बना हुआ है।

2.संविधान सभा का उद्देश्य प्रस्ताव क्या था?–

भारत की स्वतंत्रता का मार्ग केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक रूप से भी व्यापक परिवर्तन का मार्ग था। स्वतंत्र भारत को कैसी दिशा दी जाए, यह प्रश्न संविधान निर्माण से पूर्व ही भारत के नेताओं के सामने था। इसी संदर्भ में 13 दिसंबर 1946 को पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा संविधान सभा में प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव भारत के भावी संविधान की आत्मा और आधारशिला सिद्ध हुआ। उद्देश्य प्रस्ताव भविष्य के संविधान के मूलभूत सिद्धांतों और आदर्शों को स्थापित करता है। यह प्रस्ताव स्पष्ट करता है कि भारत एक स्वतंत्र, लोकतांत्रिक गणराज्य होगा, जो सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और अवसर की समता प्रदान करेगा। नेहरू जी द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव में निम्नलिखित प्रमुख बातें शामिल थीं–

- भारत को एक स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य बनाना।

- सभी प्रदेशों और उनके निवासियों को एकता और अखंडता के सूत्र में बांधना।
- न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित समाज की स्थापना करना।
- अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों, जनजातियों और समाज के कमजोर वर्गों के अधिकारों की सुरक्षा करना।
- अंतर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग की भावना को बढ़ावा देना।

नेहरू जी ने यह स्पष्ट किया कि प्रस्ताव केवल कानूनी दस्तावेज नहीं है, बल्कि एक नैतिक प्रतिज्ञा है जो भारत के समग्र विकास और समता पर आधारित समाज के निर्माण का संकल्प है। यह उद्देश्य प्रस्ताव संविधान सभा द्वारा 22 जनवरी 1947 को पारित किया गया और बाद में भारतीय संविधान की प्रस्तावना के रूप में इसे स्वीकार किया गया। यही कारण है कि प्रस्तावना को संविधान की "आत्मा" कहा जाता है।

3.समाजवाद क्या है?–

समाजवाद एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारधारा है जो समाज में समानता, सामूहिक स्वामित्व और संसाधनों के समान वितरण को प्राथमिकता देती है। भारत के संविधान की प्रस्तावना में "समाजवादी" शब्द 1976 में 42 वें संशोधन के तहत जोड़ा गया। इसका उद्देश्य था कि भारत को एक ऐसा राष्ट्र बनाना जहाँ सभी नागकिों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय मिले। भारतीय संदर्भ में इसे गांधीवादी समाजवाद के रूप में देखा गया है। समाजवाद की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न है–

- उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के स्थान पर सरकार या समाज का नियंत्रण होता है।
- समाजवाद आर्थिक विषमता को कम करने का प्रयास करता है। इसमें सभी नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसे मूल अधिकार समान रूप से देने की बात की जाती है।
- समाजवादी राष्ट्र अपने आर्थिक विकास को योजनाओं के जरिए संचालित करते हैं, जैसे भारत में पंच वर्षीय योजनाएँ।
- समाजवादी राष्ट्र में निजी लाभ की जगह समाज के सामूहिक कल्याण को प्राथमिकता दी जाती है।
- समाजवाद जाति, धर्म, वर्ग या लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करता है और सभी को बराबरी का दर्जा देने की बात करता है।

4.पंथनिरपेक्षता क्या है?

पंथनिरपेक्षता एक ऐसा सिद्धांत है जिसके अनुसार राज्य किसी धर्म विशेष का समर्थन या विरोध नहीं करता तथा सभी धर्मों के प्रति समान दृष्टिकोण अपनाता है। "पंथ" का अर्थ है धर्म या मजहब और "निरपेक्षता" का अर्थ है निष्पक्षता या तटस्थता। इस प्रकार पंथनिरपेक्षता का अर्थ है– राज्य का सभी धर्मों से तटस्थ और निष्पक्ष रहना। भारत धार्मिक रूप से विविधता वाला देश है जहाँ अनेक धर्मों के अनुयायी रहते हैं। इसलिए संविधान निर्माताओं ने इसे एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्थापित किया। सन् 1976 में 42वें संविधान संशोधन की प्रस्तावना में "पंथनिरपेक्ष" शब्द जोड़ा गया। पंथनिरपेक्षता का उद्देश्य समाज में धार्मिक सहिष्णुता, आपसी सद्भाव और समानता बनाए रखना है। यह विचार भारत जैसे बहुधार्मिक समाज के लिए अत्यंत आवश्यक और उपयोगी है।

5.प्रस्तावना में जोड़े जाने का कारण–

"समाजवाद" जोड़ने के कारणः

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में "समाजवाद" शब्द को 42वें संविधान संशोधन (1976) के माध्यम से जोड़ा गया। इसके पीछे कई ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक कारण थे। जो निम्न हैं–

- **समाज की आर्थिक विषमता को समाप्त करना–** भारत में स्वतंत्रता के बाद भी पूंजी का केंद्रीकरण, संपत्ति की असमानता और गरीबी जैसे मुद्दे बने रहे। "समाजवाद" शब्द जोड़ने का उद्देश्य यह दर्शाना था कि राज्य समाज में समानता, सामाजिक न्याय और आर्थिक संतुलन को बढ़ावा देगा।
- **राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों को स्पष्ट करना–** संविधान के भाग 4 में पहले से ही समाजवादी तत्व निहित थे। जैसे– सभी को समान आजीविका के साधन देना, सभी में संसाधनों का समान

वितरण करना आदि। समाजवाद जोड़कर इन उद्देश्यों को और अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तावना में स्थापित किया गया।

- **गांधी और नेहरू जैसे नेताओं के विचारों का प्रतिबिंब—** महात्मा गांधी, पंडित नेहरू जैसे नेताओं ने समावेशी विकास, ग्राम स्वराज और समान अवसरों पर बल दिया था। नेहरू स्वयं समाजवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे और राज्य द्वारा नियोजित अर्थव्यवस्था को समर्थन देते थे। यह संशोधन इन विचारों का संवैधानिक प्रतिबिंब था।
- **आपातकालीन काल में सत्ता के केंद्रीकरण को वैध ठहराना— (**1975—77) के आपातकाल के दौरान इंदिरा गांधी सरकार ने समाजवादी नीतियों को औपचारिक रूप से संविधान में शामिल करके राज्य की भूमिका को मजबूत करना चाहा ताकि सरकार को समाज के कमजोर वर्गों के पक्ष में निर्णय लेने में संवैधानिक वैधता मिल सके।
- **भारतीय समाज को एक न्यायपूर्ण और समानतावादी दिशा में ले जाना—** "समाजवाद" शब्द यह सुनिश्चित करता है कि भारत में किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति, लिंग या वर्ग के आधार पर भेदभाव न हो और सभी को समान अवसर उपलब्ध हों।

संविधान की प्रस्तावना में "समाजवाद" जोड़ने का उद्देश्य केवल एक शब्द का समावेश नहीं था, बल्कि यह एक राजनैतिक दृष्टिकोण और नीति निर्देश था जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि भारत एक समानतावादी, न्यायसंगत और समावेशी समाज बने।

"पंथनिरपेक्षता" जोड़ने के कारण:

संविधान की प्रस्तावना में "पंथनिरपेक्षता" शब्द जोड़े जाने का कारण भारतीय लोकतंत्र और संविधान के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ रहा है। इसे 42वें संविधान संशोधन (1976) के माध्यम से प्रस्तावना में जोड़ा गया था। इसके पीछे कई ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनैतिक कारण थे। प्रस्तावना में पंथनिरपेक्षता शब्द जोड़ना एक सांकेतिक और वैधानिक घोषणा थी कि भारत एक ऐसा राष्ट्र है जो सभी धर्मों के प्रति सम्मान रखता है और नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता, समानता और निष्पक्षता प्रदान करता है। यह संविधान के बुनियादी ढांचे का हिस्सा बन चुका है, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने भी मान्यता दी है। सुप्रीम कोर्ट ने एस.आर. बोम्मई वाद में पंथनिरपेक्षता को संविधान का मूलभूत ढांचा माना है।

6.प्रस्तावना का महत्व—

भारतीय संविधान की प्रस्तावना संविधान की आत्मा मानी जाती है। यह संविधान के उद्देश्य, मूल भावना और आदर्शों को स्पष्ट करती है। प्रस्तावना भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित करती है। यह न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूलभूत सिद्धांतों को स्थापित करती है। प्रस्तावना न केवल संविधान के मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करती है, बल्कि यह देश के नागरिकों को यह भी याद दिलाती है कि संविधान उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों की रक्षा के लिए बनाया गया है। यह न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या में दिशा भी देती है।

7.न्यायालय का दृष्टिकोण—

- **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद (1973):** सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संविधान की मूल संरचना में कुछ परिवर्तन नहीं किए जा सकते हैं। इस फैसले ने भारतीय लोकतंत्र पंथनिरपेक्षता और सामाजवाद जैसे मूल्यों की संवैधानिक स्थिति को सुदृढ़ किया।
- **एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994):** इस वाद में न्यायपालिका द्वारा पंथनिरपेक्षता को संविधान का मूलभूत ढांचा घोषित किया गया। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि राज्य सभी धर्मों और धार्मिक समुदायों के साथ समान व्यवहार करता है। धर्म व्यक्तिगत विश्वास की बात है उसे लौकिक क्रियाओं में नहीं मिलाया जा सकता है। लौकिक क्रियाओं को राज्य विधि बनाकर विनियमित कर सकता है। न्यायमूर्ति रामास्वामी ने कहा कि पंथनिरपेक्षता ईश्वर विरोधी नहीं है। भारतीय परिपेक्ष्य में पंथ—निरपेक्षता का सकारात्मक रूप है। सकारात्मक पंथ—निरपेक्षता वैयक्तिक विश्वास को आध्यात्मिक पक्ष से पृथक करती है। राज्य न तो किसी धर्म का पक्ष लेता है न ही किसी धर्म का

विरोध करता है। राज्य धर्म के मामले में तटस्थ है और सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है।

- **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980):** न्यायालय ने इस वाद में समाजवाद को मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में संतुलन का आधार बताया गया। इस मामले में कोर्ट ने कहा कि समाजवाद का लक्ष्य राज्य द्वारा कल्याणकारी योजनाएँ बनाकर आर्थिक न्याय दिलाना है, लेकिन इसके लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता।
- **इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण (1975):** इस वाद में 42वें संशोधन की वैधता पर सवाल उठे लेकिन न्यायालय ने संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने का दृष्टिकोण अपनाया। सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट किया कि संसद संविधान की मूल संरचना को नहीं बदल सकती और कोई भी संशोधन जो लोकतंत्र की भावना को कमजोर करता है, वह असंवैधानिक होगा।

8.निष्कर्ष–

प्रस्तावना में समाजवाद और पंथनिरपेक्षता शब्दों का समावेश महज भाषायी परिवर्तन नहीं था, बल्कि यह भारतीय संविधान की उस मूल भावना की औपचारिक पुष्टि थी, जो स्वतंत्रता आंदोलन से ही भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दृष्टिकोण को परिभाषित करती रही है। 42वें संविधान संशोधन (1976) के माध्यम से इन शब्दों को जोड़ा गया, जब देश आपातकाल की संवेदनशील स्थिति से गुजर रहा था। यद्यपि इन मूल्यों की अभिव्यक्ति पहले से ही मौलिक अधिकारों, नीति निदेशक सिद्धांतों और अन्य संवैधानिक प्रावधानों में निहित थी, लेकिन इन्हें प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से जोड़ना इन आदर्शों को सुस्पष्ट, दृढ़ और विधिसम्मत रूप में स्वीकार करना था। न्यायपालिका ने भी समय–समय पर अपने निर्णयों में यह स्पष्ट किया कि समाजवाद और पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान की मूल संरचना का अभिन्न अंग हैं, जिन्हें बदला नहीं जा सकता। सुप्रीम कोर्ट के केशवानंद भारती, एस.आर. बोम्मई, मिनर्वा मिल्स जैसे ऐतिहासिक निर्णय इस बात की पुष्टि करते हैं कि इन सिद्धांतों की रक्षा न्यायपालिका का कर्तव्य है। अतः इन शब्दों को प्रस्तावना में जोड़े जाने का उद्देश्य न केवल संवैधानिक आदर्शों को औपचारिक स्वरूप देना था, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की बहुलतावादी, धर्मनिरपेक्ष और सामाजिक–आर्थिक न्याय आधारित संरचना को स्थायी रूप से मजबूत करना भी था।

9.संदर्भ सूची–

1. https://www.dristiias..com
2. https://www-constitutionofindia-net (access 9 july 2025)
3. ऑस्टिन, ग्रेनविल, (2019), भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. पाण्डेय, डॉ. जय नारायण, (2016), भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद
5. बावेल, डॉ. बसन्ती लाल, (2013), भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 200-204
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर वेदना और स्त्री वेदना के समिलित स्वर

डॉ. अनीता कुमारी
जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली -110025

सारांश–
किन्नर और स्त्री के वेदना के सम्मिलित स्वर कमोबेश एक ही है क्योंकि दोनों ही हाशिए के समाज से संबंध रखते हैं। हाशिए के समाज से तात्पर्य उस वर्ग से है जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी तौर पर अथवा अन्य किसी रूप में वंचना और वर्जनाओं का शिकार है। समाज से इस रूप से वंचित होने के कई कारण हैं, उदाहरण स्वरूप देखे तो सामाजिक रीति रिवाज, धार्मिक मान्यताएं कुरीतियां आदि। समाज इस वर्ग के साथ जाति, धर्म, लिंग और जन्म समुदाय के आधार पर पक्षपात करता है। सामान्यतः असुरक्षित उपेक्षित एवं हाशिए पर स्थित समूहों के साथ होने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहार अक्सर उसके अपमान उत्पीड़न एवं उन्हें डराने धमकाने के रूप में देखने को मिलते हैं और ऐसे व्यवहार को सामाजिक एवं राजनीतिक आर्थिक परंपराओं तथा सांस्कृतिक कार्यों से अनुचित समर्थन भी प्राप्त होता है। हाशिए के समाज से संबंधित कुछ वर्ग इस प्रकार हैं:- महिलाएं, अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी, अनुसूचित जाति, एलजीबीटी समुदाय इत्यादि।

समाज दो वर्गों में बंटा है स्त्री और पुरुष। सभ्यता की शुरुआत के दिनों में देखें तो समाज में स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेद भाव नहीं था। किंतु धीरे-धीरे समय परिवर्तन के साथ इसमें अंतर दिखाई देने लगा। वैदिक काल में देखे तो स्त्री और पुरुष के अधिकारों में कोई फर्क नहीं था। पुरुष के साथ-साथ स्त्रियों को भी यज्ञ में समान रुप से बैठने का अधिकार था किंतु उत्तर वैदिक काल आते-आते समाज पुरुष प्रधान समाज में तब्दील होता गया और स्त्रियां दरकिनार होती गई। स्त्रियों को एक सीमित दायरे में बांध दिया गया। जिसके कारण उन्हें अपने अधिकार और इच्छा से जीवन जीने के लिए एक लंबा संघर्ष करना पड़ा। 'श्रृंखला की कड़ियां'में महादेवी वर्मा कहती है कि जिस प्रकार मनोरंजन के लिए पुरुष पशु पक्षी को पालता है ठीक इसी प्रकार स्त्रियां भी उसके लिए बस मनोरंजन की वस्तु मात्र है। स्त्रियों की शिक्षा के लिए सावित्रीबाई फुले ने एक लंबा संघर्ष किया। भारतीय संस्कृति में या तो नारी को लक्ष्मी, सरस्वती,दुर्गा का रूप देकर पूजा गया या उसे समाज से उपेक्षित रखा गया। लेकिन स्त्रियों की प्रगति तभी हो सकती है जब उसे इस विविधकारी खेमे से बाहर रख कर समानता की दृष्टि से देखा जाए। इसी संदर्भ में किन्नर की स्थिति देखे तो उनके साथ तो प्रकृति ने ही दोहरा व्यवहार किया। शारीरिक रूप से पुरुष और भावनात्मक रूप से स्त्रियों का मिला-जुला रूप बनाया। जिसके कारण समाज उसे कभी स्वीकृत नहीं कर पाया। किन्नर हमेशा एक अपनी मंडली बना कर रहने लगे और समाज से उपेक्षित महसूस करने लगे। भले ही समाज की उपेक्षा करने का नजरिया स्त्री और किन्नर के प्रति अलग रहा, एक तरफ जहां स्त्री परिवार में रहकर अपेक्षित समझी गई वहीं दूसरी तरफ किन्नर को भी समाज और परिवार से अपेक्षित रखा गया। इस संदर्भ में देखे तो स्त्री और किन्नर का जो दर्द,दुख

है वह एक समान रुप से दिखाई देता है। स्त्री और किन्नर के वेदना के सम्मिलित स्वर को हम किन्नर आधारित हिंदी के विभिन्न कहानी के माध्यम से स्पष्ट करेंगे।

शिव प्रसाद सिंह रचित ‘बिंदा महाराज’ किन्नर समाज पर आधारित कहानी है। भले ही, समाज किन्नर को स्त्री पुरुष के खेमे से बाहर रखता है किंतु उसके अंदर प्रेम, करुणा, दया, ममता आदि मानवीय संवेदनाएं स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। बिंदा को घर से निकल जाने पर उसके मनोभाव का वर्णन इस प्रकार है “उसी दिन लड़ झगड़कर उसके भाई ने घर से निकाल दिया। था ही कौन उसका अपना जो पैरों मे रेश्मी बेडीया डालकर रोक सकता था। मां-बाप एक प्राणहीन शरीर उपजाकर कर चले गए। मर्द होता तो बीवी बच्चे होते पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता बच्चों की किलकारियों से आत्मा संतृप्त हो जाते।”[1]

बच्चों की किलकारियों के लिए बिंदा सदा तरसता रहा। इसके लिए कभी वह अपने चचेरे भाई के पुत्र से नाता जोड़ता तो कभी वह दीपू मिश्रा के यहां जाकर उसके ढाई वर्ष के पुत्र से मोह महसूस करता है। दीपू मिश्र के पुत्र की मृत्यु के बाद वह बड़ा अकेला महसूस करने लगता है और उसे लगता है कि वह डायन है आत्मभक्षी है। उसके साथ जो भी रहेगा सुखी नहीं रह सकता है। बिंदा के अंदर यह ममता वाली भावना बिल्कुल उसी प्रकार है जिस प्रकार एक स्त्री के अंदर होती है। सामाजिक स्त्री को तभी पूर्ण रूप से देखा है,जब वह मां बनती है और स्त्री भी स्वयं को पूर्ण महसूस करती है जब उसके अंदर ममत्व वाली भावनाएं जागृत होती हैं। एक स्त्री की भांति किन्नर के अंदर भी ममत्व की भावनाएं मौजूद होते हैं। बिंदा महाराज बच्चे के लिए जीवन भर तरसता है इससे स्पष्ट होता है कि किन्नर और स्त्री की वेदनाएं और भावनाएं समान है। बच्चे से मां के बिछड़ जाने पर जो तड़प मां के अंदर होती है बिल्कुल वही तड़प बिंदा महाराज महसूस करता है। बिंदा महाराज की आत्मा प्यार की प्यासी थी, किंतु उसके नसीब में प्यार के बदले लांछन आती है वही उसकी नियति है।

किरण सिंह रचित ‘संझा' एक ऐसे किन्नर की दास्तां है जो अपनी असलियत को तीस वर्षों तक समाज के सामने आने नहीं देती है। संझा एक किन्नर के रूप में गांव के सबसे इज्जतदार आदमी वैद्य महाराज के घर पैदा लेती है। संझा को उसके माता-पिता चारदीवारी के अंदर ही रखते हैं। उसके मां की मृत्यु के बाद वैद्य जी उसकी देखरेख में कोई कमी नहीं करते हैं। "वैद्य जी मुंह अंधेरे उठ जाते। बेटी को करुआ तेल मलते फिर नहलाते धुलाते। वैदायन की कुछ सूती साड़ियों में लंगोट बना लिए थे। सुनी घर में भी बेटी को लंगोट पर पजामी फिर लंबी फ्रॉक पहना कर रखते। थुल थुल वैद्य जी बेटी के साथ बड़े आंगन में दौड़-दौड़ कर खेलते जिससे वह थक जाते। संझा के सोने के बाद उसकी कोठरी में बाहर से ताला बंद करते और गद्दी पर औषधि देने के लिए बैठ जाते।"[2] उम्र बढ़ने के साथ ‘संझा के शारीरिक विकास की अपूर्णता के कारण पिता उसे जंगल जाकर औषधी लाने से मना कर देते हैं। अपने अविकसित अंग की सच्चाई जानकर संझा का मानसिक संघर्ष दिन प्रतिदिन बढ़ता चला जाता है। उसकी बढ़ती उम्र के साथ वैद्य जी को उसके विवाह के ताने सुनने को मिलते हैं। ‘संझा की सच्चाई सबके सामने ना आ जाए उसके लिए वैद्य जी ललित महाराज के दत्तक पुत्र कनाई से उसकी शादी कर देते हैं। क्योंकि कनाई भी नपुंसक होता है, इसलिए ‘संझा की वास्तविकता सबके सामने नहीं आती है। किंतु जब वासुकी द्वारा कनाई पर बलात्कार का आरोप लगाया जाता है तो कनाई और संझा दोनों की सच्चाई सबके सामने आ जाती है। संझा की सच्चाई जानने के बाद गांव वाले उसे अपवित्र, अछूत मानते हैं और उसे मारने को उतारू हो जाते हैं। "चौगांव के लोगों में सांझा को नंगा करने की होड़ मची थी। उसकी मां की सफेद धोती हवा में छोटे-छोटे टुकड़ों में उछाल रही थी।"[3] संझा कहानी में एक तरफ जहां,संझा का संघर्ष है वहीं दूसरी तरफ उसकी मां वैदायान भी इस दर्द से गुजरती है। वैद्य जी हमेशा संझा को बंद कमरे में रखते हैं ताकि उसकी सच्चाई दुनिया के सामने ना आ जाए। वैदायन भी इस चिंता से पीड़ित रहती है अंत में इसी चिंता में वैदायन की मृत्यु भी हो जाती है तो इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस प्रकार एक नारी और एक किन्नर की वेदना में समानता है।

अंजना वर्मा कृत 'कौन तार से बीनी चदरिया' किन्नर समाज पर अंकित एक ऐसी गाथा है, जो विभिन्न घटनाओं के साथ पाठक के सामने यह स्पष्ट करती है, कि किन्नर समुदाय में जन्म लेने वाले बालक को ना तो परिवार में कोई जगह मिलती है और ना ही समाज में। कहानी के पात्र कुसुम और सुंदरी किन्नर है। दोनों नाचने गाने का काम करती है। सुंदरी और कुसुम की बातचीत का अंश इस प्रकार है "सुंदरी बोली एक कुसुम! हमारा ई शरीर कोनो काम का है क्या? चइला जैसा है देह ! चढ़ जाएगा अग्नि पर कुसुम ! तुम पहली बार जाओगे हमारे साथ हमारे गांव। देखना मेरा घर कैसा है। जिसके भाग में जितना लिखा रहता है ना उतने मिलता है। हमारे भाग में क्या लिखा था? यही दुआ है दूसरे नाचना सो नाच रहे हैं।"[4]

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि किन्नर नाच गान को अपना भाग्य समझते हैं। समाज ने यह करने और सोचने पर मजबूर कर दिया है, कि जीविकोपार्जन के लिए नाच गान ही उनका पेशा है।

सुंदरी एक संपन्न घर में जन्म लेती है। उसकी मां उसे सबसे छुपाए रहती है।एक रात सुंदरी की मां के सो जाने पर उसके घर वाले किन्नर को सौंप देते हैं। इससे सुंदरी की मां काफी दुखी रहने लगती है। मां के वृद्ध हो जाने पर सुंदरी जब मिलती है तो उसकी मां अपना दर्द बयां करते हुए कहती है "तुम्हें इतना रूप दिया भगवान ने, पर उसका माथा खराब हो गया था कि तुझे ऐसा बना दिया। फिर भी जैसी भी थी... रहती मेरे आंगन में। पर सब उठा ले गए मुझे छल करके। मैं सो रही थी। हमेशा इसी डर से दरवाजा बंद करके सोई थी। उसे दिन तुझे लेकर सोई तो आंख लग गई। किवाड़ खुले हुए थे। तभी सब उठा ले गए... दे दिया तुम्हें खोजवा को"[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि अलग होने का दर्द जितना सुंदरी झेलती है उतना ही दर्द उसकी मां भी महसूस करती है। वह एक दूसरे के समीप रहे या दूर एक दूसरे के प्रति लगाव सदा बना रहता है।

डॉक्टर पदमा शर्मा के द्वारा लिखित 'इज्जत के रहबर' कहानी किन्नर समुदाय के ऊपर लिखी गई है। अन्य कहानियों की तरह इसमें भी किन्नर की समस्या के साथ-साथ उसके मानवीय गुणों को दर्शाया गया है। इस कहानी में एक अनाथ बच्चा को किन्नर द्वारा अपनाए जाने की घटना है। किन्नर के अंदर भी मातृत्व गुण विद्यमान होता है जिसका यह उदाहरण है। बल्लू के बारे में कहानीकार कहती हैं "बल्लू तेरह चौदह साल का बालक है। उसकी रेखें निकलना शुरू हो गई थी। बल्लू को याद आया लोग कहते हैं कि चौदह साल पहले एक पागल कहीं बाहर से घूमती फिरती इस मोहल्ले में आ गई थी, इसी गली में के घरों से मिलती रोटी के टुकड़ों पर पलने लगी थी। वह युवती अचानक गर्भवती हुई और कुछ महीनो बाद उस पगली के एक बच्चा पैदा हुआ था। सब चिंतित थे कि पगली उसे बच्चों को कैसे पालेगी? लेकिन मोहल्ले के किसी परिवार ने इतनी हिम्मत नहीं दिखाई कि उसे बच्चों को पाल सके तब पांडुरंग जिंदा थे। उनकी टीम नया जिम्मा ले लिया था।"[6] बल्लू पूरी जिंदगी किन्नर की टोली में रहता है लेकिन वह समझ नहीं पता कि ये लोग कौन हैं।

कहानी की एक और अंश से पता चलता है कि किन्नर और नारी की वेदना के स्वर सम्मिलित हैं। कहानी के पात्र श्री लाल की बेटी के साथ कुछ लोग बदतमीजी करते हैं। घटना का अप्रत्यक्ष रूप से गवाह बल्लू होता है। बल्लू जाकर किन्नर की एक सदस्य सोफिया से इसका जिक्र करता है। सोफिया को जैसे ही इस घटना का पता चलता है वह श्री लाल के यहां जाती है और कहती है कि "आपने रिपोर्ट क्यों नहीं लिखवाई?"[7]

सोफिया के इस तरह का विरोध दिखाता है कि औरत के साथ हुई बदतमीजी एक किन्नर को भी झकझोरती है शायद इसलिए क्योंकि वह स्वयं को नारी के समीप समझती है। सोफिया रहती है "तुम लोग औरतों को आगे बढ़ाने की बातें तो बड़ी-बड़ी करते हो लेकिन जब कुछ करने की बारी आती है तो पीछे हट जाते हो सच्ची बात तो यह है कि आज भी तुम्हारी मानसिकता नहीं बदली है।"[8] अंत में सोफिया उस गुंडे को सजा देती है और कहती है कि जिस दिन बलात्कारियों को यह सजा मिलने लग जाएगी उस दिन से कोई भी गुंडा औरतों की इज्जत लूटने की हिम्मत नहीं कर सकेगा।

महेंद्र भीष्म कृत 'त्रासदी' कहानी में एक किन्नर और स्त्री के प्रेम जीवन को दर्शाया गया है। रति एक स्त्री है और सुंदरी किन्नर। रति के पति का देहावसान होने के बाद वह अकेली पड़ जाती है। एक बार वह एक मालगाड़ी डब्बे में चढ़ती है तो कुछ भेड़िए घात लगाए बैठे होते हैं और उसके साथ गलत करने की कोशिश करते हैं। वह चिल्लाती है, इसी दौरान सुंदरी उसे बचाती है और दोनों एक दूसरे के करीब आते हैं। रति के बचाने के क्रम में सुंदरी का चेहरा खराब हो जाता है। क्योंकि सुंदरी एक हिजड़ा है और नाच गान करके अपना जीवन यापन करती है। चेहरे खराब हो जाने से सुंदरी का जीविकोपार्जन का साधन ठप्प हो जाता है। ऐसे में रति उसको सहारा देती है और दोनों साथ रहने का निर्णय लेते हैं। किंतु रति के बेटे को यह सब स्वीकार नहीं होता है अंत में वह सुंदरी की हत्या कर देता है। सुंदरी की मृत्यु के बाद रति पुनः अकेले हो जाती है। रति का यह अकेलापन इस बात की गवाही देता है कि एक किन्नर और स्त्री को अपनी इच्छा अनुसार जीने का हक नहीं देती है, इस दृष्टिकोण से दोनों की वेदनाएं समान है।

लवलेश दत्त की कहानी 'नेग' हिजड़ो के मानवता से परिचय कराती है। इस कहानी के केंद्र में सुधीर और सुमन है। सुधीर की पहले से दो लड़कियां हैं। तीसरे बच्चे के रूप में उसे लड़का चाहिए, किंतु कुदरत करिश्मा से पुनः इस बार लड़की ही जन्म लेती है। सुमन को बार-बार खोजते हुए सुधीर कहता है "मैंने तो पहले ही कह दिया था कि अगर लड़की ही पैदा करनी है तो मेरे पास डिलीवरी के खर्च के पैसे नहीं है।"[9] लड़की पैदा होने पर सुधीर कहता है "अब मैं अपने हाथ से मार तो नहीं सकता था ना तो क्या करता घर तो लाना ही था।"[10] घर में बच्चा पैदा होने की खुशी में किन्नर नेग मांगने आते हैं। किन्नरों को यह पता होता है कि लड़का हुआ है। सुमन के सास समाज में इस बात को छुपाती है की लड़की जन्म ली है। हिजड़े ताली पीटते हुए, कहते हैं ,लो चाचा हमारा नेग दो और हमे विदा करो एक साड़ी ब्लाउज और ढाई हजार रुपए लो जल्दी करो। रामा देवी सक पका गई करे तो क्या करें अगर सच बोल तो मोहल्ले भर में बदनामी और अगर सच ना बोला तो ढाई हजार रुपए साड़ी ब्लाउज के लिए बिना यह जाएंगे नहीं। सुमन अपने कमरे में सब की बातें सुनकर नवजात बच्ची को हिजड़े के पांव में डालकर कहती है "लो ले जाओ इसे इसके पैदा होने की कोई खुशी इस घर में नहीं है... मातम मना रहे हैं घर वाले... अगर इनके जन्म का नेग नहीं दे सकते तो इसी को ले जाओ। "[11] पूरे घर में सन्नाटा छा जाता है हिजड़े बच्ची को उठाकर प्यार करने लगते हैं और उल्टे नेक के रूप में कुल ढाई हजार रुपए देते हुए कहती हैं "लो चाचा हमारी तरफ से नेग तुम्हारे घर में लक्ष्मी आई है यह बताने में शर्म कैसी?"[12] किन्नरों के इस व्यवहार से रामा देवी की आंखें भर आती है।

कहानी के प्रमुख प्रसंग से यह पता चलता है कि जिस प्रकार एक किन्नर के पैदा होने से घर का माहौल मातम में छा जाता है उसी प्रकार यहां लड़की पैदा होने पर घर के सदस्य अप्रसन्नता जाहिर करते हैं। सुमन की सास को तो यहां तक लगता है कि अगर समाज में यह बात सामने आई की लड़की हुई है तो उसकी बेज्जती होगी। यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार किन्नर का जन्म लेना समाज में किसी अभिशाप से काम नहीं है उसी प्रकार एक लड़की का भी जन्म लेना। इस प्रकार स्त्री और किन्नर समाज के हाशिए वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं।

संदर्भ सूची

1. खान, डॉ. एम फिरोज (सं), थर्ड जेंडर हिन्दी कहानियाँ, अनुसंधान पुब्लिसहर्ष एंड डिस्ट्री, कानपुर 208001, संस्करण 2021, पृ सं- 29
2. वही पृ सं 27
3. वही पृ सं 65
4. वही पृ सं 78
5. वही पृ सं 107
6. वही पृ सं 109
7. वही पृ सं 97

8. वही पृ सं 101
9. वही पृ सं 101
10. वही पृ सं 123
11. वही पृ सं 123
12. वही पृ सं 126

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 205-208
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रतिभा राय कृत 'आदिभूमि' उपन्यास में बोंडा समाज का यथार्थ चित्रण

डॉ० पुनीत कुमार
सहायक प्राध्यापक,
स्टॉरेक्स विश्वविद्यालय, गुरुग्राम (हरियाणा)

शोध सार

प्रस्तुत शोध में लेखिका प्रतिभा राय ने उड़ीसा के बोंडा आदिवासी जन–जीवन और उसके परिवेश की जीवन्त कथा का वर्णन किया है। इसमें आदिम मानव–समाज का प्रतिनिधित्व कर रही बोंडा जनजाति की धड़कन है। यह बोंडा के पारस्परिक जीवन–मूल्यों, आवेगों और विश्वासों के साथ ही आज के सांस्कृतिक और आर्थिक वैश्वीकरण के दौर में विकास के नाम पर आधुनिक समाज द्वारा हो रहे उसके दोहन–शोषण और उससे उपजी विकृतियों की गाथा है। इस उपन्यास में पाँच पीढ़ियों की कहानी है, जिसमें प्रागैतिहासिक बोंडा जीवन और समाज के सुख–दुख, जय–पराजय, उसके द्वन्द्व और संघर्ष आदि विविध पक्षों को लेकर पूरी एक शताब्दी में फैले कथानक का ताना–बाना शुद्ध रूप और उसकी सात्विक संभावना का एक विराट फलक पर रचा गया महत्वपूर्ण औपन्यासिक दस्तावेज है।

यथार्थ चित्रण का अर्थ है किसी वस्तु, घटना या स्थिति को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करना, बिना किसी कल्पना या आदर्श के। यह चित्रण वास्तविक जीवन की घटनाओं, सामाजिक परिस्थितियों या मानव स्वभाव को दर्शाने के लिए किया जाता है। लेखिका प्रतिभा राय ने अपने 'आदिभूमि' उपन्यास में बोंडा समाज का वास्तविक रूप का चित्रण किया है। बोंडा का अर्थ है – वन की संतान। इन प्रकृति पुत्रों को स्वयं को बोंढा कहलाने में कोई लाज नहीं है।

सोमा मुदली खुद ही है बोंडा पहाड़ का अनलिखा इतिहास। वह सबसे पुराना जीवित मनुष्य है इस पहाड़ पर। वह बोंडा जाति का जीवन्त पूर्व–पुरुष है। बोंडा समाज में पुरुष बेपरवाह होता है। वह सारा दिन इधर–उधर घूमता रहता है। घर का सारा काम करने की जिम्मेदारी बोंडा समाज की स्त्रियों पर होती है। इसी कारण बोंडा समाज में शादी के समय इंगेयबप (लड़के) की उम्र दस वर्ष होती है और सेलानी (लड़की) की उम्र 20–21 वर्ष होती है। लड़के की उम्र 10–12 वर्ष होने के कारण उस पर न घर का दायित्व होता है और न ही उसे संसार की कोई फिक्र होती है। लड़की को ही घर के सारे काम करने होते हैं और अपने बाल स्वामी (पति) को पाल–पोषकर आदमी बनाती हैं। ''इंगेर बय (लड़के) की दस, सेलानी की बीस–इक्कीस बरस। बोंडा राजा में दोनों में उमर का यह फ़रक रहता है।''[1]

बोंडा समाज के लोग पहाड़ों पर दुर्गम स्थानों पर रहते हैं जिसके कारण उस समाज तक सरकार द्वारा बनाई जाने वाली नीतियाँ लागू नहीं हो पाती। बोंडा समाज का अपना ही अलग कानून है। दुर्गम स्थान व बोंडा समाज के लोगों का आक्रामक व्यवहार होने के कारण वहाँ पर कोई भी अध्यापक पढ़ाने के लिए जाने को तैयार नहीं होता। सन् 1960 से वहाँ पर आठ प्राइमरी स्कूल हैं। ये स्कूल भी केवल शिक्षा के नक्शे पर हैं। वास्तव में कोई स्कूलघर नहीं हैं। शिक्षक अपने गाँव में रहकर वेतन पाते हैं। ''जिन दुर्गम इलाकों में सरकार ने भुवनेश्वर के दफ्तर के खाते में स्कूल खोले हैं, वहाँ से यहाँ तक इन्स्पेक्शन के लिए लोग आ–जा सकेंगे? बाघ–भालू उठा ले

जाय या बोंडा ने तीर मार दिया तो सरकार पेट भरेगी हमारे बाल–बच्चों का? बैठो चुपचाप। महीने के महीने यहाँ के रिकार्ड दिखा दो। मुझसे दस्तख्त लो, वेतन लो। जान बची ... बस। कभी कभार बी.डी.ओ. का या मेरा कोई छोटा–मोटा काम कर दो....। हमारे बच्चों को घण्टे भर साँझ को पढ़ा दिया करो।''[2] भ्रष्ट प्रशासन के चलते बोंडा समाज का विकास नहीं हो पा रहा। बोंडा समाज के लोगों का विकास करने के लिए कर्मचारी वेतन पाते हैं मगर कर्मचारी अपने से ऊपर के अफसरों के काम करके फ्री का वेतन प्राप्त कर रहे हैं

मुख्य शब्द – सीसा–पुजारी, किरसानी–सम्मुख योद्धा, धाँगडा माँझी–बेहरा, रेमो–मानव, इसुक–कटारी, सुहुस–छुरी, टाँगी–कुल्हाड़ी, यंग–माँ, सेलानी–औरत, इंगेर बय–लड़का, मामुंग–मामा, घुसी–लँगोटी, रिंगा–गमछा की तरह कपड़ा, पेटरी–पेट से, सगुर–कन्या का धन।

शोध का उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य बोंडा समाज के लोगों पर होने वाले शोषण, अत्याचार से सभ्य लोगों को अवगत कराना है। लेखिका ने अपने इस उपन्यास में दिखाया है कि बोंडा समाज के लोग आज की मूलभूत आवश्यकताओं से परे हैं। आज भी वह समाज अन्य दुनिया से कटा हुआ है और गरीबी व लाचारी में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। जिसे समाज का रक्षक समझा जाता है वह भी उस समाज के लोगों के लिए भक्षक का काम कर रहा है। पुलिस का कार्य होता है किसी भी व्यक्ति के साथ अन्याय एवं शोषण ना हो परन्तु इस समाज का सबसे बड़ा शोषण ही पुलिस कर्मचारी करते हैं। सभ्य समाज को उन्हें भी मानव समझ कर कुशल जीवन जीने के लिए प्रेरित करे।

उपन्यास में दिखाया गया है कि बोंडा समाज में बच्चों के नामकरण के समय एक परम्परा का निर्वाह किया जाता है। बच्चे के नामकरण के समय बच्चे का मामा एक मुर्गा लेकर आता है जिसकी बलि दी जाती है। फिर बच्चे के पूर्वजों के नाम एक–एक करके बोले जाते हैं। अगर बच्चा उस समय मुर्गे की टाँग का पकड़ लेता है तो उस बच्चे का नाम उसी पूर्वज के नाम पर रख दिया जाता है। अगर बच्चा मुर्गे की टाँग नहीं पकड़ता है तो उस बच्चे का नाम उस दिन के नाम पर रखा जाएगा, जिस दिन बच्चे का जन्म हुआ है। ''यदि किसी नाम के बोलते समय मुट्ठी पकड़ ले ... वही नाम बच्चे का हो जाता है, बस। उन्हीं पूर्वजों ने जनम लिया है। पर बच्चे ने किसी में टाँग नहीं पकड़ी। अब मुर्गे की टाँग का कोई काम नहीं। देखा गया ... किस वार को जनमा है – वही उसका नाम। सोमवार को जनमा। अतः सोमा। भाई जनमा बुधवार को, वह है बुदा।''[3]

बोंडा समाज में पाँच–सात वर्ष तक का लड़का घुसी (लँगोटी) पहनता है। वह बिल्कुल नंगा नहीं घुमता। पाँच वर्ष की बोंडा टोकी भी रिंगा पहनती है। छाती पर चार लड़ की माला रखती है। पैसों के अभाव होने के कारण इनके शरीर पर नाममात्र ही कपड़े होते हैं। औरतों के शरीर पर अपनी छाती को ढ़कने के लिए मालाओं की संख्या बढ़ जाती है और कमर के नीचे चार फुट का रिंगा पहनने लग जाती है। इस प्रकार उनका जीवन बड़ा कष्टमय व्यतीत होता है।

बोंडा समाज में लोगों के पास धन का अभाव होता है। उन्हें कोई भी पर्व या किसी शुभ कार्य को करना होता है तो साहूकार का सहारा लेना पड़ता है। जब सोमा ने शादी के लिए सोमवारी को राजी कर लिया तो सोमा के पिता ने अपनी जमीन साहूकार को गिरवी रख दिया। सभ्य समाज की तुलना में बोंडा समाज में शादी की अलग प्रथा है। इस समाज में शादी के समय वर पक्ष की तरफ से वधू के घरवालों को कुछ समान व रूपये देने होते हैं। ''सोमा के बाप को सुख है कि बेटे ने कन्या राजी कर ली है। फिर भी दुख है कि सगुर के रूपये (कन्या का धन) के तौर पर एक गाय–भात टोकरी भर और हण्डी भर ठर्रा आदि के लिए रूपये चाहिए – इसके वास्ते वह साहूकार के यहाँ जमीन बन्धक रखेगा।''[4]

बोंडा समाज में सलप का पेड़ और सेलानी (बेटी) को बोंडा कभी बंधक नहीं रखता। सलप का पेड़ अगर उसे बंधक रखा तो वह नशा नहीं कर पाएगा। सेलानी (बेटी) को साहूकार के वहाँ गिरवी रख दिया तो उसे सगुर का धन नहीं मिल पाएगा। इसलिए बोंडा कभी इन दो चीजों को बंधक नहीं रखता।

बोंडा समाज में नारी की दशा अत्यंत दयनीय है। शादी से पूर्व पिता के घर काम करना होता है और शादी के बाद पति के घर दिन–रात काम करना पड़ता है। इस समाज का एक

नियम है कि अगर कोई सेलानी शादी से पूर्व पेट से हो जाती है तो धाँगड़ को बहुत नुकसान होता है। पेट से होने पर सेलानी के पिता–भाई धाँगड से रूपये प्राप्त कर लेते हैं या उस धाँगड़ से उसकी शादी कर दी जाती है। ''कितने ही धाँगड़ों को समझाया कि ब्याह से पहले सेलानी अगर पेटरी (पेट से) हो गयी तो सेलानी का कोई नुकसान नहीं होता। नुकसान तो धाँगड का है। पेटरी होने वाली से यदि ब्याह किया तो ठीक है – वरना हरजाना अदा करो। गोरु, रूपया, भात, मद, ब्याह में करार के दूने रूपये। हरजाना लेगा सेलानी का भाई–बाप – पेट में बच्चा लिये वह कहीं और ब्याही जाएगी।''[5]

बोंडा पहाड़ पर स्त्रियों को पुरुष की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी पुरुष को स्त्री की आवश्यकता है। पुरुष को स्त्री की आवश्यकता शारीरिक सुख के लिए नहीं, अपितु घर–खेत का काम करने के लिए होती है, क्योंकि बोंडा समाज के लोग बड़े आलसी व कामचोर होते हैं। इसी कारण दस वर्ष के लड़के की शादी बीस वर्ष की लड़की से की जाती है ताकि वह शादी के बाद घर आते ही घर–खेत का काम संभाल ले। ''बोंडा पहाड़ पर स्त्री के लिए मरद जितना जरूरी नहीं, मरद के लिए स्त्री ज्यादा जरूरी है, दो कारण दिखते हैं – देह सुख मिटाने बोंडा पहाड़ पर स्त्री की जरूरत नहीं – देह का दुख मिटाने के लिए उसे अधिक जरूरी है। देह सुख, देह की भूख तो 'धाँगड़ी घर' में मिट जाती है हर रात। पर पेट की भूख, देह का दुख–रोग मिटाती है सिर्फ स्त्री।''[6] इस प्रकार इस समाज में स्त्रियों की दशा बहुत बुरी है। पैसों के लालच में लड़की के पिता–भाई लड़की की शादी किसी बुजुर्ग से करा देते हैं। स्वयं पुरुष सारा दिन सलप का नशा किए हुए घूमते रहते हैं और घर की औरतों को घर एवं खेतों का काम करना पड़ता है।

बोंडा पहाड़ पर लोगों के लिए भोजन की समस्या भी बनी रहती है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण खेती करने के लिए जमीन नहीं होती, इसलिए पहाड़ी क्षेत्र में उगने वाले कन्दमूल खाकर ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। बाघबिन्धु जब जेल में होता है तो उसकी पत्नी उसके आने के इंतजार में अनेक खाद्य पदार्थों को जमा करके रखती है। ''भगवान ने बोंडा पेट में जितनी भूख दी है, पहाड़ पर उतना भोजन नहीं दिया। बोंडा की जिन्दगी बीत जाती है जीवित रहने के लिए भोजन जुटाने में। बरसात में तो खाना जुटाना और भी मुश्किल है। साग, कन्द, गुठली, इमली का काँया (बीज), उबली खीर खाकर दिन बिताते हैं। बुदेई टोकी ने कन्द, मीठा कन्द वगैरह खोदकर रखा है जुंगल से। सोंआ चावल भी काफी रखते हैं मटकी में भरकर। पता नहीं कब बाघबिन्दु चला आए।''[7]

बोंडा पहाड़ पर सरकार द्वारा चलाई जाने वाली नीतियाँ या गरीबों को दी जाने वाली सुविधा कभी पहुँच ही नहीं पाती है। सरकार द्वारा बोंडा पहाड़ के लोगों का विकास करने के लिए परियोजना चलाई गई मगर वे योजना सिर्फ कागजों पर दिखाई दी। बोड़ा पहाड़ के लोगों को शिक्षित करने के लिए सरकार द्वारा स्कूल खोलने के लिए अधिकारियों को बहुत रूपये दिये मगर वे स्कूल कागजों, फाइलों में चलते दिखाई दिए। चुनाव के समय इन गरीब लोगों की याद आती है और उस समय सभी पार्टियों के नेता इनको मिलने के लिए आते हैं। चुनाव के समय इनके विकास और जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनेक वायदे किए जाते हैं। ''खास तुम्हारे भले के लिए। वे चिन्ह पाएँगे, सरकार बनेगी, तुम्हें ढ़ेरों डब्बू, बीज, गौरू खेती की जमीन देंगे। क्या न देंगे?''[8] चुनाव के समय तो अनेक वायदे किए जाते हैं, मगर चुनाव जितने के पश्चात वे सभी वायदे भूल जाते हैं और उन लोगों को भी भूला जाता है।

चुनाव के समय नेता गरीब लोगों को पैसे व शराब का भी लालच देते हैं ''देंगे ... देंगे ... मैंने लीडर बाबू से कहा है – घर–घर के लिए पाँच सौ देंगे। गाँव के लिए गौरू, दस हाण्डी दारू देंगे .... ।''[9]

भ्रष्ट कर्मचारी सरकार से तो कार्य करने के पूरे पैसे लेते हैं मगर उस कार्य पर पूरे पैसे न लगाकर खराब सामग्री का प्रयोग करते हैं। उपन्यास में दिखाया गया है कि गरीब लोगों के लिए सरकार की तरफ से इन्दिरा आवास योजना चलाई गई थी जिसमें गरीब लोगों को मुफ्त में घर बनाकर दिया जा रहा था। मगर सरकारी कर्मचारियों की मिलीभगत से खराब सामग्री का प्रयोग किया जाता है, जिसके कारण रात को तूफान आने के कारण कुछ गाँव के लोगों की इन्दिरा आवास में मृत्यु हो जाती है। गाँव के लोग देखते हैं जो कच्चे मकान थे उनकी छत नहीं गिरी मगर इन्दिरा आवास जैसे पक्के मकान कैसे गिर गए। ''साल भी पूरा नहीं हुआ, इन्दिरा आवास

कैसे ढ़ह गया? आँधी तूफान में माटी की दीवार न टूटी, घास की छान न उड़ी। फिर इन्दिरा आवास की दीवार ढही – टिन की छत भी उड़ी कैसे? काम में कहीं गफ़लत रही है।''[10] इस प्रकार भ्रष्ट प्रशासन की गलती से गरीब लोगों की मृत्यु हो जाती है।

निष्कर्ष

उड़ीसा में अत्यन्त आदिम अवस्था में जी रहे बोंडा सम्प्रदाय के लोगों की आदिम धरती का इतिहास पर्वतों के पन्नों पर जरूर लिखा मिलेगा, और कहीं इनका इनका लिखित–अलिखित इतिहास भले न मिले। वह इतिहास इन वंशजों का कोई पता नहीं देगा। अतीत के बारे में अज्ञ है, भविष्य के बारे में निर्लिप्त हैं वे, वर्तमान सर्वस्व है।

बोंडा समाज की वर्तमान स्थिति दयनीय और विचारणीय है। बोंडा समाज के लोगों की आर्थिक स्थिति अत्यंत कमजोर है, जिसके कारण वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते। वर्षा ऋतु में खाने की समस्या बनी रहती है क्योंकि खेती करने योग्य जमीन हैं नहीं और वर्षा ऋतु में चारों तरफ पानी हो जाने के कारण कन्द मूल लाना भी मुश्किल हो जाता है। धन के अभाव में तन से भी नंगा रहते हैं। औरते केवल छाती को ढ़कने के लिए मालाओं का प्रयोग करती हैं और कमर के नीचे चार फुट का रिंगा पहनती हैं। पुरुष केवल धोती के नाम पर शरीर पर कपड़ा लपेट कर रखते हैं। सरकार को ऐसे गरीब लोगों के उत्थान के लिए योजनाएँ बनानी चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि ये योजनाएँ गरीब लोगों तक पहुँच पा रही हैं या नहीं।

संदर्भ

1. प्रतिभा राय, आदिभूमि, पृष्ठ 28
2. वही, पृष्ठ 191
3. वही, पृष्ठ 38
4. वही, पृष्ठ 52
5. वही, पृष्ठ 63
6. वही, पृष्ठ 85
7. वही, पृष्ठ 152
8. वही, पृष्ठ 298
9. वही, पृष्ठ 299
10. वही, पृष्ठ 484

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 August 2025 Page No. : 209-212
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

‘यमदीप’ उपन्यास में किन्नर जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति

आशु प्रज्ञा
(शोधार्थी),
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

नीरजा माधव द्वारा लिखित ‘यमदीप’किन्नर जीवन पर आधारित हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है।जिसका प्रकाशन 2002 में हुआ है। ‘यमदीप’उपन्यास में किन्नर जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति मिलती है। किन्नरों का जीवन सदा से संघर्षमय रहा है। उनका जीवन कई कटु अनुभवों से होकर गुजरता है। आम मनुष्य की भाँति उनका जीवन सामान्य नहीं होता उन्हें प्रकृति की मार के साथ-साथ समाज के ताने भी सुनने पड़ते हैं। उन्हें पारिवारिक उपेक्षा के साथ ही सामाजिक उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

नीरजा माधव ने अपने उपन्यास ‘यमदीप’ में किन्नरों की सभी उमड़ती हुई भावनाओं को रेखांकित किया है। उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए समाज को पूर्णतः प्रयास करना चाहिए। उनकी भावनाओं को तवज्जो देना चाहिए। उन्हें समाज द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखा नहीं जाना चाहिए। किन्नरों को शिक्षा और संवेदना के स्तर पर समाज से जोड़ा जाना चाहिए। नीरजा माधव के उपन्यास ‘यमदीप’के संदर्भ में डॉ. प्रमिला त्रिपाठी लिखती हैं-‘‘किन्नर सम्बन्धी कथानक का चयन करना नीरजा माधव की सामाजिक दृष्टि की सम्पन्नता को बताता है क्योंकि उन्होंने किन्नरों के जीवित यथार्थ के राज को खोला है। किन्नरों के मन की गहराइयों में उठती भावनाओं रूपी प्रश्नों का उत्तर नीरजा माधव जी ने यमदीप में दिया है, जिनमें मुख्यधारा के समाज को किन्नर समुदाय का बुनियादी हक देने में कटौती नहीं करनी चाहिए। समाज को किन्नरों को अधिकार दिलवाने की पैरवी करनी चाहिए। शिक्षा और संवेदनशीलता से किन्नर समाज को विकास के मुख्यधारा से जोड़ना चाहिए। किन्नर समाज को स्वयं अपने प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है।’’[1]

किन्नर भी संवेदनशील होते हैं। सामान्य मनुष्य की तरह उन्हें भी वही हृदय मिला है जो अन्य मनुष्यों को मिला है। वह भी संवेदनशील प्राणी हैं। उनकी संवेदना को समझना मनुष्य का कर्त्तव्य है। उन्हें शिक्षा के मार्ग पर लाना समाज का दायित्व है। उन्हें शिक्षा से बहिष्कार नहीं, उन्हें शिक्षा में शामिल करना समाज का धर्म है। किन्नरों में वह सभी गुण शामिल हैं जो अन्य सभी मनुष्यों में वह अन्य सामान्य मनुष्यों से कम नहीं है। उनमें गुणवत्ता की कमी तब आती है जब उन्हें समाज किनारे करता है, उनकी उपेक्षा होती है। उन पर उपेक्षा का गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वह नकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर हो जाते है। किन्नरों को सही दिशा में लाने के लिए उनके साथ सकारात्मक

व्यवहार करना अत्यंत आवश्यक है। उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से नहीं संवेदना की दृष्टि से देखना जरूरी है। स्वयं किन्नरों को भी संवेदनशील बनना चाहिए। जैसा कि कहा जा चुका है कि किन्नर संवेदनशील होते हैं परंतु समाज की नकारात्मक दृष्टि के कारण उनकी संवेदना कहीं दब सी जाती है, जिससे उन्हें भी कष्ट होता है। उन्हें अपनी संवेदना नष्ट नहीं करनी चाहिए बल्कि उसे बनाएँ रखना जरूरी है।

नीरजा माधव ने 'यमदीप'उपन्यास में समाज के उस रूप का चित्रण किया है, जहाँ परिवार यदि किन्नर बच्चों को पालन-पोषण शिक्षा देना चाहते भी है तो समाज ऐसा होने नहीं देना चाहता है। जबकि सामान्यतः घर में बच्चे जब जन्म लेते हैं तो उनके माता-पिता ही उनका लालन-पालन करते हैं। जब किन्नर घर में पैदा होते हैं तो उनसे वह हक क्यों छीन लिया जाता है? समाज उस बच्चे का जल्द से जल्द बहिष्कार कर देने में जुट जाते हैं। ऐसे कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। नन्दरानी के माता-पिता उसका लालन-पालन करना चाहते हैं उसे अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं ताकि उसे समाज की उपेक्षा का शिकार न होना पड़े। उसे पढ़ा लिखा कर अपने पैरों पर खड़ा करना परिवार की कल्पना है। उसके माता-पिता चाहते हैं की नन्दरानी पढ़-लिखकर नौकरी करे। उपन्यास में महताब गुरु नन्दरानी की माँ से एक प्रश्न करता है ''माता जी किसी स्कूल में आज तक हिजड़ा को पढ़ते-लिखते देखा है? किसी कुरसी पर हिजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में, कलक्टरी में... किसी में भी?... अरे, इसकी दुनिया यही है, माताजी... कोई आगे नहीं आयेगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ, लिखाओ, नौकरी दो, जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही।''$_2$

किन्नरों का जीवन सरल नहीं होता उन्हें मानसिक, सामाजिक, शारीरिक सभी प्रकार की उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। साथ ही उनके माता-पिता को भी इस यथार्थ का सामना करना पड़ता है। माता-पिता यदि सक्षम हो अच्छी शिक्षा, अच्छी परवरिश देने के लिए तो भी समाज उन्हें ताने मार-मार कर असहाय बना देते हैं। नन्दरानी के माता-पिता के सक्षम होने के बावजूद समाज उन्हें अपना दायित्व पूरा करने नहीं देना चाहता है।

महताब गुरु के माध्यम से नीरजा जी ने समाज में व्याप्त किन्नरों के प्रति अफवाहों को भी रेखांकित किया है। समाज किस प्रकार किन्नरों के प्रति अफवाह फैलाता है, और गढ़ता है। समाज के तरह-तरह के अफवाहों का सामना किन्नरों को करना पड़ता है। किन्नरों को केवल मुख्यधारा से दूर ही नहीं किया जाता है बल्कि उनके संबंध में अनेक प्रकार के मिथक गढ़े जाते हैं। जनता इन अफवाहों पर भरोसा कर लेती है। जनता के अन्दर इनके प्रति डर का माहौल बना दिया जाता है। कई बार लोग किन्नरों को देख अपने लिए असुरक्षा का भाव जगा लेते हैं। किन्नर से जुड़े अफवाहों पर उपन्यास की पात्र पत्रकार मानवी रहती है-''ऐसा सुना जाता है कि आप लोग युवकों को बहला-फुसलाकर जबरन उनका ऑपरेशन करके हिजड़ा बना देते हैं?''$_3$

इस अफवाह को नकारते हुए महताब गुरु उत्तर देते है ''हमारी बस्ती में जल्दी कोई इनसान का पूत घुसता है... किसी के आते ही हम उसे तुरंत ऑपरेशन कर देंगे पकड़कर डॉक्टरी खोल बैठे हैं इसी कोठरिया में क्या।... यह देखो हमारा अंग, कोई काटा है कि अल्ला-रसूले वैसा भेजा है? ''$_4$

'यमदीप'उपन्यास में पत्रकार मानवी द्वारा इस प्रश्न का पूछना पूरे समाज की मानसिकता को दर्शाता है। इसी अफवाहों और मिथकिये बातों के कारण किन्नरों को अमानवीय ठहरा दिया जाता है। यही कारण है कि किन्नर समाज, समाज के साथ ताल-मेल नहीं बना पाते। उन्हें स्वयं के प्रति असमानता का बोध होता है। वह समझ जाते है कि समाज उन्हें एक समान दृष्टि से नहीं देखा जिसका परिणाम यह हुआ कि किन्नरों ने अपना एक अलग ही समाज बना लिया है। आज किन्नरों का भी समाज है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज से पृथक होकर नहीं जी सकता। किन्नर भी मनुष्य है, भला वह समाज के बिना कैसे रह सकता है। शीला डागा का यह कथन इस संदर्भ में स्पष्ट है, ''आज इनका

एक पृथक समाज है। उसका अपना ढाँचा है। अपने नियम-कानून हैं। अपना वातावरण है। समूह में रहना मानव का स्वभाव है, उसकी आवश्यकता है अतः मानव जीवन की अनिवार्यता है-यही कहना उचित होगा।''[5]

उपन्यास 'यमदीप'में नीरजा माधव ने किन्नरों की सामाजिक भूमिका को महत्त्व देते हुए समाज का ध्यान आकृष्ट किया है।

किन्नरों को समाज भले ही सामान्य मनुष्य के श्रेणी में न रखा हो परंतु किन्नरों ने सामाजिक कर्त्तव्य को नहीं भुलाया है। उपन्यास में मुम्बई की एक कम्पनी की चर्चा की गई है। बकाया धन की वसूली के लिए किन्नरों की नियुक्ति की गई है। अधिक ऋण होने के कारण ऋण की वसूली कई वर्षों से चल रही थी। किन्नरों की नियुक्ति के कारण ऋण की वसूली कम ही समयों में कर ली गई। उपन्यास में नाजबीबी कहती है-''अगर सरकार हमें भी हथियार दे दे मैं तो लड़ूँगी। लड़ते-लड़ते हिन्दुस्तान के पीछे अपनी जान दे दूँगी।''[6]

किन्नरों में भरपूर संभावना है। वह चाहे तो देश की सेवा निश्छल भाव से कर सकती हैं। उनमें अपार संभावना भरी पड़ी है। जरूरत है उन्हें उनका हक देने का। उन्हें मुख्यधारा में लाने का। किन्नर किसी का बुरा नहीं सोचते बल्कि सबों का भला ही सोचते है। उनका महत्त्व उनके कर्मो के आधार पर आँका जाना चाहिए ना कि उनकी शारीरिक कमियों के कारण उनकी उपेक्षा की जानी चाहिए। इस संदर्भ में शरद द्विवेदी लिखते हैं-''किन्नरों के साथ भी उनके कर्म को प्रधानता देने की जरूरत है। जन्म से किन्नर होना कोई अपराध नहीं है, क्योंकि यह विधि का विधान है, उस पर किसी का वश नहीं है।''[7]

'यमदीप'उपन्यास में नारी सुधार गृह के सफेदपोश चेहरे को बेनकाब किया गया है। इसमें नेताओं के चरित्रों को दर्शाया गया है। किस प्रकार जनता के रक्षक, भक्षक बन जाते हैं। मनुष्यता और मानवता के प्रश्न को भी नीरजा माधव ने उठाया है। मानवता की बात करने वाला समाम क्यों किसी कमजोर का शोषण करता है। क्या यही मानवता है? ऐसे कई गंभीर प्रश्नों को लेखिका ने अपने इस उपन्यास में उठाया है। धर्म से संबंधित प्रश्नों को भी उद्घाटित किया गया है। सभी जातियों के खून को एक माना गया है। चाहे वह मुसलमान जाति का हो या हिन्दू जाति, चाहे सभ्य लोग हो या किन्नर लोग सभी एक हैं।

इस उपन्यास में किन्नरों को राजनीति के क्षेत्र में आने की बात कही गई है। उन्हें राजनीति में आकर अपने हक के लिए आवाज उठाने की बात की गई है। लेखिका ने राजनीति को किन्नर समाज के लिए एक विकल्प के रूप में रखा है।

अंत में कहा जा सकता है कि 'यमदीप'की लेखिका नीरजा माधव ने अपनी रचना के माध्यम से किन्नर जीवन के सामाजिक यथार्थ से संबंधित प्रायः सभी प्रमुख मुद्दों को उठाया है। उन्होंने केवल समस्याओं का उद्घाटन ही नहीं किया बल्कि उनके समाधान की संभावनाओं को भी उजागर किया है। सामाजिक जीवन के अत्यंत विरल प्रश्नों को इतने प्रशस्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि कहीं भी किन्नर जीवन से संबंधित कोई भी मुद्दा पाठकों की नजर से उझल नहीं रह पाया है।

संदर्भ सूचीः

1. हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन, संपादक: डॉ. दिलीप मेहरा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण : 2019 पृ. सं. 62
2. यमदीप, नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2023 पृ. सं. 94
3. यमदीप, नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2023 पृ. सं. 167
4. यमदीप, नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2023 पृ. सं. 167

5. किन्नर गाथा, शीला डागा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण: 2020 पृ. सं. 40
6. यमदीप, नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2023 पृ. सं. 163
7. किन्नर अबूझ रहस्यमय जीवन, शरद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण : 2022 पृ. सं. 62

ई-मेल ashupragya.htw@gmail.com
मोबाईल नं. 8210557272